ISSN 2321-4945
UGC CARE Research Journal

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 72 ● अंक : 9, 10 ● दिसंबर : 2022, जनवरी : 2023

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Research Journal

वर्ष : 72 अंक : 9/10 दिसंबर, 2022/जनवरी, 2023

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
कुलसचिव, उच्च शिक्षा शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
टी. नगर, चेन्नई (तमिलनाडु)

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32

फोन : 9101541395, 9101541380

ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

मूल्य : रु. 50/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

आवरण पृष्ठ : हेमंत ऋतु (सरसों के खेत का एक दृश्य)

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., इंडस्टियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

हिंदी विभाग

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संपादकीय		5
1.	राजभाषा कार्यान्वयन में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका	✍ डॉ. सी. जयशंकर बाबु	6
2.	स्वाधीन भारत में शिक्षा नीति : प्रथम	✍ डॉ. आकाश वर्मा	14
3.	असम के वसंतकालीन लोकोत्सव एवं लोकगीत	✍ डॉ. रीतामणि वैश्य	21
4.	हंसादीप की कहानियों में व्यक्त संवेदनाएँ	✍ डॉ. ई. विजय लक्ष्मी	29
5.	कबीर पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव	✍ डॉ. रवि कुमार गोंड़	35
6.	आचार्य महाप्रज्ञ का अहिंसा दर्शन : पर्यावरण संरक्षण के विशेष संदर्भ में	✍ डॉ. रवीन्द्र सिंह राठौड़	40
7.	मामूली विषयों के गैरमामूली कवि : ओम भारती	✍ डॉ. अनुशब्द	47
8.	मीरा की प्रेम-पीड़ा एवं प्रणय-प्रतिबद्धता	✍ उपदीप कौर	51
8.	अरुण कमल एवं समीर ताँती की कविताओं में चित्रित समाज के विविध पक्ष	✍ रूबी मणि दास	57
9.	झूठा सच : विभाजन की त्रासदी और स्त्री प्रश्न	✍ पंकज कुमार सहनी	66
10.	गोपाल दास 'नीरज' के काव्य में सामाजिक यथार्थ एवंरहस्यवादी दर्शन	✍ ब्रजेश उपाध्याय	72
11.	स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय राजनीति में महिलाओं की स्थिति का विश्लेष्णात्मक अध्ययन	✍ कु. निशा गौतम/ ✍ डॉ. तारिक अनवर	78
12.	मैत्रेयी पुष्पा के आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में चित्रित नारी समस्याएँ	✍ श्रीमती हिरण वैश्य	83
13.	'दोहरा अभिशाप' और 'शिकंजे का दर्द' में स्त्री मुक्ति का स्वर : एक अवलोकन	✍ नीतामणि बरदलै/ ✍ डॉ. नूरजहाँ रहमतुल्लाह	88
14.	परशुराम शुक्ल की बाल कविताओं में अभिव्यक्त बाल समस्याएँ	✍ सुरेखा संदीप जाधव/ ✍ डॉ. वर्षाराणी निवृतीराव सहदेव	93
15.	पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा : एक प्रतिरोधी स्वर	✍ लिलु कुमारी रजक	100
16.	महर्षि अरविंद चिंतन : वर्तमान में प्रासंगिकता	✍ प्रभाकर पाण्डेय/ ✍ डॉ. अंजू बाली पाण्डेय	105
17.	21वीं सदी के प्रथम दो दशकों के हिन्दी गीतकाव्य में आर्थिक जीवन-मूल्य	✍ कल्पना जैन	112
18.	अटल जी की कविताएँ		117

ক্রম	বিষয়	লেখক	পৃষ্ঠ

অসমীয়া বিভাগ

15.	অসমৰ সমাজ-সংস্কৃতিলৈ মহাপুৰুষ মাধৱদেৱৰ অৱদান	✍ ড° স্বপ্নালী দাস	119
16.	ধর্মশাস্ত্রৰ দৃষ্টিৰে নাৰীৰ সুৰক্ষা (অসমৰ প্রেক্ষাপটত এক বিশ্লেষণ)	✍ ড° বিভুতি লোচন শর্মা	126
17.	লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাস	✍ বনজিৎ শর্মা	132
18.	মানৱ অধিকাৰৰ বাগধাৰাত খিলঞ্জীয়াৰ সাংস্কৃতিক অধিকাৰ - এক পর্যালোচনা	✍ ড° প্রাণজিৎ শইকীয়া	138
19.	চর্যাপদত ব্যক্তিবাচক নির্দেশক শব্দৰ ব্যৱহা ঃ এক প্রসংগার্থবিজ্ঞানভিত্তিক আলোচনা	✍ ভায়োলিনা ডেকা	145
20.	দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ হিন্দু ইতিহাসৰ দস্তাবেজ ঃ এক ঐতিহাসিক তথা গ্রন্থাগাৰিকৰ অৱলোকন	✍ দুর্লভৰাজ টাইড/ ✍ দীপাঙ্কৰ শইকীয়া	151

संपादकीय

भाषा और संस्कृति

भाषा संस्कृति की वाहिका है। भाषा और संस्कृति एक-दूसरे से ओतप्रोत हैं। ये दोनों लोकतत्व से गुंथे हुए हैं। लोक का अर्थ समस्त लोक, केवल जनसाधारण नहीं है। जनसाधारण का समस्त परिवेश और उसकी समस्त आकांक्षाएं, उसके स्वप्न, उसके आचार-विचार और उसका देशकाल ये सब मिलकर लोक होता है। एक दार्शनिक का कथन है कि प्रत्येक संस्कृति का सार तत्व उसकी भाषा में अभिव्यक्ति पाता है। भाषा न केवल संस्कृति का अविभाज्य अंग है, अपितु उसकी कुंजी भी है। भाषा के बिना यदि संस्कृति पंगु है तो संस्कृति के अभाव में भाषा अंधी। यदि भाषा पर कहीं से कोई प्रभाव पड़ता है तो संस्कृति भी अप्रभावित नहीं रह सकती।

मुहम्मद इकबाल कहते हैं-

यूनान-ओ-मिश्र-ओ-रूमा सब मिट गये जहां से।
अब तक मगर है बाकी, नाम-ओ-निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों से रहा है दुश्मन, दौर-ए-जमां हमारा।

ये कुछ बात कुछ और नहीं बल्कि हमारी भाषा है। हमारी भाषा के संस्कार है जो सारे देश को एक सूत्र में पिरोए हुए हैं। असम के वैष्णव संत श्रीमंत शंकरदेव ने पूरे भारत में तीर्थाटन किया था, केरल में जन्मे आद्य शंकराचार्य जी ने देश भर का भ्रमण किया, मठों की स्थापना की, तो जरा सोचिए, उन्होंने किस भाषा में संवाद किया होगा? आज भी पूर्व में कामाख्या, दक्षिण में तिरुपति जैसे अनेक तीर्थस्थलों में विभिन्न भागों के लोग आते-जाते हैं तो वे किस भाषा में संवाद करते हैं? निश्चित रूप से सांस्कृतिक सेतु बनी यह भाषा न तो अंग्रेजी थी, न ही हो सकती है। गुजरात में जन्मे आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद ने देश में जनजारगण के अपने संकल्प को साकार करने के लिए *सत्यार्थ प्रकाश* लिखा तो देवभाषा में नहीं, देशभाषा में लिखा।

जब हम हिंदी की बात करते हैं तो हमें गर्व होता है कि वह किसी एक अंचल की बोली अथवा भाषा नहीं, बल्कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक, कच्छ से कामरूप तक की संवाद वाहिका है। ऐसी मजबूत भाषा में मिट्टी की सुगंध है। यह करोड़ों लोगों के होठों की मुस्कान है। ज्ञान-विज्ञान, कला-संस्कृति एवं मनोरंजन का अपार भंडार है यह। ऐसी महती भाषा पर हमें निश्चय ही गर्व होना चाहिए और इसके विकास के लिए यथासंभव प्रयास करना हमारा कर्तव्य है।

इसी हिंदी के विकास एवं प्रोन्नति में यह पत्रिका किंचित योगदान देती है, तो हमारा प्रयास सार्थक लगता है। यह अंक भी आपको पूर्ववत् अच्छा लगे, इसी अपेक्षा के साथ।

– संपादक

राजभाषा कार्यान्वयन में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका

डॉ. सी. जयशंकर बाबु

सदस्य, हिंदी सलाहकार समिति
गृह मंत्रालय, भारत सरकार
संस्थापक संपादक, युग मानस
प्रधान संपादक, आंतर भारती,
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पांडिच्चेरी
विश्वविद्यालय, पुडुच्चेरी-605014
मो. : 09442071407
ई-मेल : professorbabuji@gmail.com

भारत संघ की राजभाषा हिंदी है। 1950 से सरकारी काम-काज की भाषा के रूप में वैधानिक रूप से इसका प्रयोग जारी है। सरकारी काम-काज के स्वरूप को आज नई सूचना एवं संचार क्रांति ने प्रभावित किया है। सरकारी सेवा-कार्यों में आज सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (इन्फर्मेशन एंड कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी - आई.सी.टी.) का बढ़-चढ़कर प्रयोग हो रहा है। बदली हुई परिस्थितियों में राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग की स्थिति का जायजा लेते हुए नए परिवेश में हिंदी के प्रयोग की संभावनाओं और इसके लिए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की अनुकूलता संबंधी अध्ययन के साथ-साथ इस प्रौद्योगिकी की भूमिका का समग्र अनुशीलन करना इस प्रपत्र का मुख्य उद्देश्य है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने आज दुनिया को बदल दिया है। कंप्यूटर व अंतर्जाल (इंटरनेट) के आविष्कार ने दुनिया की गति बदल दी है। इनके प्रयोग से दुनिया की गतिविधियों में तेजी आई है। 'वैश्विक गाँव' की परिकल्पना भी इन्हीं की बदौलत साकार हो पाई है। कंप्यूटर तथा इंटरनेट के आविष्कार का ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, शैक्षिक, व्यावसायिक, औद्योगिक, वाणिज्यिक, आर्थिक आदि कई क्षेत्रों पर प्रभाव स्पष्ट नजर आ रहा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इस प्रौद्योगिकी से अछूता क्षेत्र विरले ही कोई रह गए हैं। कई क्षेत्रों के कार्यों में तेजी, गुणवत्ता, परिवर्तन आदि संभव हो पाए हैं।

कंप्यूटर व इंटरनेट के आविष्कार से भाषाओं के विकास के भी नए आयाम नजर आए हैं। कंप्यूटर व सूचना प्रौद्योगिकी के विकास का अधिकांश शुरुआती लाभ भले ही अंग्रेजी को मिला हो, आज दुनिया की कोई भी भाषा इस प्रौद्योगिकी का लाभ उठाने से वंचित नहीं रह गई है। भारतीय भाषाओं की भी लगभग यही स्थिति है। केवल कुछ ही भाषाएँ इस विकास से दूर रह गई हैं।

सूचना एवं संचार क्रांति : भारतीय भाषायी अस्मिता के मुद्दे

दुनिया औद्योगिक क्रांति से गुजरने के बाद आई नई क्रांति को सूचना एवं संचार क्रांति के नाम से अभिहित किया जा रहा है। इसमें कंप्यूटर से विकसित प्रौद्योगिकीय सुविधाओं एवं इंटरनेट से विकसित संचार की प्रणालियों से साकार क्रांति शामिल है। आरंभ में कंप्यूटर का प्रयोग गणितीय समस्याओं के हल करने के लिए होता था। भारत में कंप्यूटर के प्रवेश होने तक उसके सैकड़ों अनुप्रयोग शुरू हो चुके थे। आज कंप्यूटर व इंटरनेट अनुप्रयोग के दायरे असीमित हो चुके हैं। कंप्यूटर व इंटरनेट का प्रयोग आज जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गया है। एक समय ऐसा था, जब भारत सरकार को दो-तीन कंप्यूटर खरीदने में ही बड़ी मशक्कत करनी पड़ी थी। कंप्यूटर आज इतने सस्ते हो गए हैं और उनके इतने रूप विकसित हो चुके हैं कि इनकी पहुँच का दायरा काफी बढ़ चुका है। सूचना क्रांति के साथ संचार क्रांति के सुसंयोजन ने सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी को साकार बना पाया है। इसकी वजह से आज दुनिया की गतिविधियों में बड़ी क्रांति आई है। दुनिया के व्यवहार की शैली ही अभूतपूर्व ढंग से बदल चुकी है। लगभग सभी क्षेत्र इस क्रांति से किसी-न-किसी रूप में प्रभावित हैं अथवा इसके दायरे में आ चुके हैं।

भारत में कंप्यूटरों का प्रयोग आरंभ होने के साथ ही हिंदी प्रेमियों में यह हार्दिक इच्छा जागृत हुई कि हिंदी के लिए भी कंप्यूटर पर शब्द-संसाधन की सुविधा आरंभ हो जाए। इस संकल्पना के सुफल के रूप में शुरुआती प्रचालन प्रणाली डॉस (डिस्क प्रचालन प्रणाली) के लिए ही हिंदी का प्रयोग शुरू हो गया था। आगे चलकर जब विंडोज, मैक तथा लिनक्स जैसी प्रचालन प्रणालियों का प्रचलन हुआ, जो प्रयोगकर्ताओं के लिए आसान व बेहतरीन लगने लगे और शब्द-संसाधन के लिए उपयोगी कई पैकेजों का भी विकास हुआ, तब उनमें भी हिंदी प्रयोग की सुविधाओं का काफी विकास होने लगा। भारत में भाषायी कंप्यूटिंग के विकास के साथ ही भारतीय भाषाओं के विकास के लिए नए द्वार खुले हैं।

भारतीय उपखंड साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विरासत से सुसंपन्न भाषाओं का निलय है। किसी भी देश की संस्कृति का अस्तित्व वहाँ की भाषाओं के अस्तित्व पर भी किसी हद तक निर्भर करता है। अपनी (भारतीय) संस्कृति की विशिष्टता के आलोक में भारत सदा ही विश्व में आकर्षण का केंद्र रहा है। भारतीय वेद, उपनिषद, पुराण एवं वाङ्मय के प्रति आकर्षित कई विदेशी विद्वानों ने भारतीय संस्कृति की विराटता की स्तुति की है। विश्व वंदित भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग के रूप में जितनी भी भाषाएँ भारत के जनमानस के संपर्क, विचार-विमर्श के लिए आधार बनी हुई हैं, उनके विकास की चेतना भी सदा भारतीय समाज में देखने को मिलती है। इसी चेतना के फलस्वरूप इन भाषाओं के लिए व्याकरण का विकास, इन भाषाओं के माध्यम से धर्म, दर्शन, विज्ञान, सामाजिकी, प्रौद्योगिकी आदि कई ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों से संबद्ध साहित्य का विकास भी होता रहा है। अब सूचना तकनीकों के विकास से दुनिया में इन भाषाओं के फैलाव व विकास के कई नए आयाम खुल गए हैं। भारतीय भाषाओं के बहुआयामी विकास-कार्य में कंप्यूटर व इंटरनेट महत्वपूर्ण साधन साबित हो रहे हैं।

शासकीय सेवाओं में आई.सी.टी. के अनुप्रयोग :

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विकास की चेतना की वजह से ही प्रशासनिक कार्यों व सेवाओं के क्षेत्र में भी इसके अनुप्रयोग शुरू हो चुके हैं। 'ई-शासन', 'ई-अधिशासन' आदि ऐसी ही परिकल्पनाओं की संज्ञाएँ हैं। इनका साकार रूप व सेवाओं का फायदा हम कई रूपों में उठा रहे हैं। आरंभ में कंप्यूटर व इंटरनेट के माध्यम उपलब्ध कराई जा रही सरकारी सेवाओं की सूची सीमित थी। मगर वह सूची आज बढ़ती जा रही है। कंप्यूटर प्रयोग के विकास के बाद कागजरहित कार्यालय की संकल्पना की जा रही है और कई दृष्टियों से अधिकांश काम बगैर कागज के या सीमित प्रयोग से शुरू हो चुके हैं। वास्तव में कंप्यूटर व इंटरनेट ने काम के दायरे व स्वरूप को भी बदल दिया है। वर्तमान सरकार कागजरहित कार्यालयों की संकल्पना को सदृढ़तापूर्वक लागू करने के लिए संकल्पबद्ध नजर आ रही है। इस

दिशा में घोषणाएँ हो चुकी हैं और तदनुरूप वैधानिक व्यवस्थाओं की दिशा में भी कदम उठाए जा रहे हैं।

राजभाषा कार्यान्वयन का परिप्रेक्ष्य :

भारतीय संविधान में राजभाषा हिंदी के पक्ष में कई प्रावधान उल्लिखित हैं। ऐसे कुछ प्रावधानों के आधार पर संसद द्वारा 1963 में पारित राजभाषा अधिनियम, उसके आधार पर 1976 में घोषित राजभाषा नियमों के आधार पर भारत सरकार के सभी मंत्रालयों, संबद्ध विभागों, संगठनों आदि में हिंदी में काम-काज होना अपेक्षित है। 1963 के अधिनियम के प्रावधानों के आलोक में राजकाज में अंग्रेजी का प्रयोग बरकरार है। साथ ही हिंदी प्रयोग को कार्यान्वित करने के प्रयास भी विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूपों में लगातार जारी हैं। संविधान के अभिरक्षक के रूप में भारत के राष्ट्रपति महोदय द्वारा सरकारी काम-काज में राजभाषा कार्यान्वयन के संबंध में समय-समय पर कई आदेश जारी किए गए हैं। संसद के दोनों सदनों में हिंदी को बढ़ावा देने के पक्ष में संकल्प पारित किया चुका है। समय-समय पर विभिन्न आयोगों, समितियों द्वारा राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग, प्रचार-प्रसार को लेकर कई सिफारिशें की गई हैं। संसदीय राजभाषा समिति के नाम से संसद की एक स्थायी समिति सक्रिय है। देश-विदेश स्थित भारत सरकार के कार्यालयों के निरीक्षण, साक्ष्यों के आधार पर समिति के द्वारा अलग-अलग खंडों में राष्ट्रपति महोदय के समक्ष प्रस्तुत प्रतिवेदनों के आधार समय-समय पर आदेश जारी किए गए हैं। इन सभी प्रयासों का आशय यही है कि भारत की बहुप्रचलित एवं सक्षम संपर्क भाषा हिंदी को सरकारी काम-काज की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना। इस कार्य के सुनिश्चित प्रबंधन, नियंत्रण व मार्गदर्शन के लिए गृह मंत्रालय के तहत राजभाषा विभाग अपनी भूमिका अदा कर रही है।

राजभाषा विभाग के कार्य :

राजभाषा विभाग ने अपने वेबपोर्टल www.rajbhasha.nic.in में अपने कार्यों के दायरे के संबंध में निम्नसूचित जानकारी दी है -

''राजभाषा संबंधी सांविधानिक और कानूनी उपबंधों का अनुपालन सुनिश्चित करने और संघ के सरकारी काम-काज में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए गृह मंत्रालय के एक स्वतंत्र विभाग के रूप में जून, 1975 में राजभाषा विभाग की स्थापना की गई थी। उसी समय से यह विभाग संघ के सरकारी काम-काज में हिंदी का प्रगामी प्रयोग बढ़ाने के लिए प्रयासरत है। भारत सरकार (कार्य आवंटन) नियम, 1961 के अनुसार राजभाषा विभाग को निम्न कार्य सौंपे गए हैं -

1) संविधान में राजभाषा से संबंधित उपबंधों तथा राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) के उपबंधों का कार्यान्वयन, उन उपबंधों को छोड़कर जिनका कार्यान्वयन किसी अन्य विभाग को सौंपा गया है।

2) किसी राज्य के उच्च न्यायालय की कार्यवाही में अंग्रेजी भाषा से भिन्न किसी अन्य भाषा का सीमित प्रयोग प्राधिकृत करने के लिए राष्ट्रपति का पूर्व अनुमोदन।

3) केंद्र सरकार के कर्मचारियों के लिए हिंदी शिक्षण योजना और पत्र-पत्रिकाओं और उससे संबंधित अन्य साहित्य के प्रकाशन सहित संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित सभी मामलों के लिए केंद्रीय उत्तरदायित्व।

4) संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित सभी मामलों में समन्वय, जिनमें प्रशासनिक शब्दावली, पाठ्य विवरण, पाठ्य पुस्तकें, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और उनके लिए अपेक्षित उपस्कर (मानकीकृत लिपि सहित) शामिल हैं।

5) केंद्रीय सचिवालय राजभाषा सेवा का गठन और संवर्ग प्रबंधन।

6) केंद्रीय हिंदी समिति से संबंधित मामले।

7) विभिन्न मंत्रालयों/विभागों द्वारा स्थापित हिंदी सलाहकार समितियों से संबंधित कार्य का समन्वय।

8) केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो से संबंधित मामले।

9) हिंदी शिक्षण योजना सहित केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान से संबंधित मामले।

10) क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालयों से संबंधित मामले।

11) संसदीय राजभाषा समिति से संबंधित मामले।''

इन तमाम कार्यों को सुनिश्चित करने की दिशा में राजभाषा विभाग के कार्यों में मुख्यत: भारत सरकार के

सभी मंत्रालयों, विभागों तथा उनके अधीनस्थ कार्यालयों, संगठनों, उपक्रमों, बैंकों आदि में राजभाषा कार्यान्वयन के लिए समुचित मार्गदर्शन सहित हिंदी के कार्यान्वयन में उनके कार्य निष्पादन का निरीक्षण भी शामिल है।

कंप्यूटर व इंटरनेट में हिंदी :

कंप्यूटर के आगमन के बाद उसमें हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग के लिए कई प्रयास शुरू हुए हैं, जिनके परिणामस्वरूप कंप्यूटर में रोमन लिपि के लिए की गई ऑस्की (ASCII) एनकोडिंग व्यवस्था के अनुरूप ही इस्की (ISCII) एनकोडिंग मानक विकसित करने के सफल प्रयास नजर आए थे। कंप्यूटर में हिंदी के प्रयोग की सफलता राजभाषा कार्यान्वयन में कंप्यूटर के प्रयोग सुनिश्चित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

भाषायी कंप्यूटिंग संबंधी तमाम समस्याओं के निराकरण की दिशा में आशा की एक नई किरण के रूप में यूनिकोड एनकोडिंग मानक आज भारतीय व अन्य दुनिया की भाषाओं के विकास के लिए एक वरदान साबित हुए हैं। हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं में बनाए गए वेबपृष्ठों की पठनीयता की समस्याएँ विभिन्न फांटों की वजह जो उत्पन्न हुई थीं, उनका निराकरण का सहारा भी यूनिकोड से मिल गया। आरंभ में ऐसी समस्या के समाधान के लिए फॉन्ट डाउनलोड का विकल्प सुझाया जाता था। फॉन्ट डाउनलोड करके सामग्री को पढ़ने के उपाय की कई सीमाएँ थीं, जैसे हर कंप्यूटर के लिए विभिन्न (अलग-अलग भाषाओं के तथा अलग-अलग विषय-क्षेत्र के) वेबसाइटों के लिए विभिन्न फांटों को डाउनलोड करना व्यावहारिक उपाय नहीं था। इन तमाम चुनौतियों, समस्याओं के लिए कारगर जवाब के रूप में यूनिकोड मानकों के विकास ने भाषा-प्रेमियों के मानस पटल पर आशाओं के चित्र भर दिए हैं। अतीत की कई समस्याएँ भविष्य में सुलझने के आसार नजर आने लगे थे और आज कई समस्याएँ सुलझ भी गई हैं।

सूचना तकनीकी के विकास के तमाम सुफल हिंदी को भी शीघ्र गति से मिलने लगे हैं। आज के इस कंप्यूटर या सूचना प्रौद्योगिकी के युग में हिंदी विकास के कई आयाम हम देख सकते हैं। कंप्यूटर के शब्द-संसाधन, सामग्री को सहेज कर सुरक्षित रखने, जब चाहे प्राप्त करने, संपादित करने जैसी सामान्य सुविधाओं से लेकर कंप्यूटर डाटाबेस की भाषा के रूप में, ई-मेल व

चैटिंग के लिए भी सक्षम भाषा के रूप में, वेबसाइट बनाने के लिए व वेबसाइटों से सामग्री की खोज के लिए योग्य भाषा के रूप में हिंदी विकसित हो चुकी है। शब्द-कोश, वर्तनी-जाँच जैसी सुविधाओं के अलावा लिप्यंतरण, अनुवाद की सुविधाओं के रूप में हिंदी में विभिन्न आयामों में कंप्यूटिंग का विकास हो चुका है। सूचनाओं के प्रेषण व प्रसारण में गति, गुणवत्ता के अलावा सर्वसुलभता, मितव्ययिता जैसे कई लाभ भी हैं। सूचना तकनीकों के विकास के आलोक में ये तमाम लाभ हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी मिल चुके हैं। अब हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं की सामग्री की तीव्र गति से डिजिटीकरण की प्रक्रिया भी जारी है। अंतर्जाल में हिंदी की सामग्री भी बढ़ रही है। कई वेबसाइट व ब्लॉग हिंदी में विकसित हो गए हैं। आज हम वेबसाइट (डोमेन का नाम) हिंदी व देवनागरी में दे सकते हैं और ई-मेल पता भी हिंदी भाषा में देवनागरी लिपि में रख सकते हैं। विकास के इन तमाम तथ्यों के आलोक में राजभाषा के रूप में हिंदी की प्रगति को लेकर यदि हम बात शुरू करते हैं तो कहीं नकारात्मक या निराशाजनक बातें भी जरूर सुनाई पड़ती हैं। इन बातों में फिर वही निष्ठा के अभाव की बात को लेकर शुरू करके निष्कर्ष के तौर पर कहा जाता है कि मानसिक परिवर्तन की जरूरत है, तभी जाकर हिंदी के प्रगामी प्रयोग का विकास हो पाएगा। इन बातों को शत-प्रतिशत सही मानने के पक्ष में हर कोई हो, यह भी जरूरी नहीं है। इन पंडिक्तयों के लेखक तो बिल्कुल निन्यानवे प्रतिशत इस तर्क के पक्ष में नहीं हैं। नकारात्मक विचारधारा से नकारात्मक माहौल ही पैदा होता है। सकारात्मक रवैये से जिस हद तक संभव हो, मनसा-वाचा-कर्मणा हम सही दिशा में कार्य करते रहें तो जरूर अनुकूल परिणाम नजर आएँगे। विगत पच्चीस वर्षों से हिंदी के साथ आत्मीयता के संबंध के कारण प्रचार-प्रसार-प्रयोग की दृष्टि से जो भी सेवा इन पंडिक्तयों के लेखक ने की है, और विगत आधे दशक से डिजिटल साक्षरता के फैलाने की दिशा में अपने ढंग से जो भी प्रयास किया है, ऐसे प्रयासों के दौरान किए गए सर्वेक्षण व उससे प्राप्त अनुभव बहुत ही संतोषजनक हैं और परिणाम भी सकारात्मक हैं। विगत दो दशकों के दौरान एक हजार से अधिक कार्यशालाओं के माध्यम से लगभग कई हजार लोगों में हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की चेतना फैलाने की कोशिश के उपरांत यही अनुभव रहा है कि 'नई बोतल में पुरानी शराब परोसने' के कई फायदे हैं। हिंदी को लेकर जहाँ कहीं विपरीत या गैर-अनुकूल दृष्टि, विचार, माहौल का दर्शन हो रहा था, वहाँ कंप्यूटर पर हिंदी प्रयोग की कुशलता प्रदान करने से तथा भाषायी कंप्यूटिंग के लिए उपलब्ध साधनों, संसाधनों की जानकारी देने से कई अनुकूल परिणाम नजर आए हैं। अनुकूल विचारधारा व अनुकरणीय निष्ठा भी देख पाना संभव हो पाया है। इन तमाम प्रयासों से प्राप्त अनुभव का सार चंद बिंदुओं में प्रस्तुत करना असंभव है, फिर भी राजभाषा के रूप में हिंदी विकास के लिए चंद मुख्य बिंदुओं का यहाँ उल्लेख करना उचित प्रतीत हो रहा है -

- कार्यालयों में जिन्हें कंप्यूटर पर भारतीय भाषाओं में शब्द संसाधन का ज्ञान नहीं हैं, उन्हें उचित प्रशिक्षण देते हुए कुशल बनाने से उनमें हिंदी प्रगामी प्रयोग के लिए आवश्यक चेतना, प्रेरणा व निष्ठा भरने में सफल होना संभव है।
- भारतीय भाषाओं में कंप्यूटिंग के लिए उपलब्ध विभिन्न संसाधनों की जानकारी सभी को देना। स्कूलों, कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में इस ओर कोई बड़ा ध्यान नहीं दिया गया है, अब जरूरी है कि यह चेतना समूची आबादी में फैलाई जाए।
- हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के लिए मानक कुँजी-पटल के रूप में इन्स्क्रिप्ट के प्रयोग के लाभों से अवगत कराकर वैज्ञानिक व सरल रूप से उसके प्रयोग की क्षमता उन्हें प्रदान करना।
- कंप्यूटर पर कार्यालय के प्रयोग में आने वाले मानक दस्तावेजों, प्रपत्रों को तैयार करने वालों की उचित प्रशंसा करना, प्रोत्साहन व महत्व दिया जाना।
- कंप्यूटर व अंतर्जाल का लाभ उठाते हुए विज्ञान, प्रौद्योगिकी व साहित्य को जन भाषाओं के माध्यम से जन-सुलभ बनाने के लिए डिजिटीकरण की दिशा में तुरंत सकारात्मक प्रगति सुनिश्चित करना। (इस दिशा में

वीकिपीडिया एवं गूगल के योगदान की जानकारी भी सबके लिए प्रेरक हो सकती है।)

● लोग कई अवसरों पर बधाई संदेश आदि आज मोबाइल पर अपनी-अपनी भाषाओं में भेजने में रुचि ले रहे हैं, अत: कंप्यूटर में इन भाषाओं के प्रयोग का ज्ञान लोगों में विकसित करने पर निश्चय ही सकारात्मक परिणाम नजर आएँगे।

● उच्च अधिकारी वर्ग में जो इस प्रगति से अनभिज्ञ हैं, उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण और प्रेरणा देकर भारत सरकार की तमाम वेबसाइट हिंदी में भी बनवाना सुनिश्चित किया जा सकता है। (यह बड़ी विडंबना है कि ऑस्ट्रेलिया के कतिपय विश्वविद्यालय अपने वेबसाइट हिंदी में भी बना रहे हैं, भारत के विश्वविद्यालय इस चेतना से अछूते रह गए हैं और कई मंत्रालयों और विभागों की वेबसाइट अभी भी हिंदी में उपलब्ध नहीं हैं, कुछ उपलब्ध होने के बावजूद पठनीय नहीं हैं।

● यूनिकोड मानक के प्रयोग की चेतना सभी जनमाध्यमों द्वारा फैलाने से कई अनुकूल परिणाम उत्पन्न हो जाएँगे।

● कंप्यूटर के सही प्रयोग से हर क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाना संभव है, अत: इनके प्रयोग में सिर्फ अंग्रेजी के प्रयोग के पीछे पागल न होकर लोगों में अपनी भाषा के प्रयोग की चेतना पैदा करेंगे तो जरूर भारतीय भाषाओं का और हिंदी का बड़ा हित होगा।

कंप्यूटर में हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं में तमाम प्रकार के कार्य करने की सुविधाओं के विकास के क्रम में हम यदि निष्ठापूर्वक प्रयास करेंगे तो जरूर इन भाषाओं का कंप्यूटर पर प्रयोग के लिए आवश्यक जन चेतना विकसित होना संभव है। ऐसी ही चेतना निश्चय ही कंप्यूटर व अंतर्जाल पर इन भाषाओं के विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा। हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं के बहुआयामी विकास की दिशा में सूचना युग एक क्रांतिकारी युग साबित होगा।

कंप्यूटर व इंटरनेट के माध्यम से विकसित सुविधाएँ और राजभाषा कार्यान्वयन की वर्तमान समस्याएँ :

कंप्यूटर व इंटरनेट पर आधारित सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की वजह से विकसित तमाम अनुप्रयोग सरकार के तमाम प्रकार के काम-काज, सेवाओं के लिए उपयुडक्त साबित हो रहे हैं। इन अनुप्रयोगों से सेवाओं में गुणवत्ता, गति, पारदर्शिता सुनिश्चित करना संभव हो पा रहा है। वास्तव में यह प्रौद्योगिकी वर्तमान काल के स्वरूप और जरूरतों के लिए ही नहीं, मगर भविष्य की जरूरतों के लिए भी सक्षम साबित हो चुकी है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से विकसित सुविधाओं ने यह साबित कर दिया है कि मशीनी सुविधाएँ बिना किसी भेदभाव के समान रूप से बड़ी तीव्र गति से अपेक्षित सेवाओं में अपनी भूमिका निभाने में सक्षम हैं, मगर प्रयोगकर्ताओं एवं व्यवस्था की मानसिकता भर इसके अनुकूल हो, यह जरूरी है। हम राजभाषा कार्यान्वयन को ही क्यों न लें, विगत सड़सठ वर्षों से हिंदी का प्रयोग राजकाज में जिस रूप में जिस गति से होना था, उसको लेकर एक मत नहीं है। कुछ तर्क ऐसे निकलते हैं कि आज तक हमने राजभाषा कार्यान्वयन की दिशा में काफी प्रगति हासिल की है और कुछ तर्क ऐसे हैं कि राजभाषा कार्यान्वन में हम असफल हुए हैं। भविष्य के संबंध में यह बात स्पष्ट है कि सरकार के काम-काज व जनता के लिए उसके द्वारा दी जाने वाली सेवाओं में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग की मात्रा निश्चय ही बढ़ने वाली है और उस पर निर्भरता भी जरूर बढ़ेगी। इस संभावना के आलोक में ही हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि राजभाषा के रूप में हिंदी के कार्यान्वयन में भारत सरकार की राजभाषा नीति को सुनिश्चित करने की दिशा में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका निभा सकती है। कंप्यूटर में हिंदी के इस्तेमाल को लेकर जो भी चिंताएँ थीं, वे सब यूनिकोड मानकों के विकास के साथ ही लगभग समाप्ति के कगार पर हैं। हाँ, यह जरूर है कि कुछ निष्ठापूर्ण समन्वित प्रयासों से हम वर्तमान में विद्यमान छोटी-मोटी तकनीकी समस्याओं से मुडिक्त पा सकते हैं। प्रौद्योगिकीपरक तकनीकी समस्याओं के लिए हल निकालना आसान काम है, मगर अन्य दृष्टियों से समस्याओं की जड़ें जो गहरी होती जा रही हैं, उनकी ओर भी हमें ध्यान देने की जरूरत है। इन समस्याओं और उनके निराकरण के लिए सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की क्षमता और भूमिका की भी हम यहाँ चर्चा करेंगे।

हिंदी ज्ञान की समस्या : सरकारी कर्मियों में हिंदी भाषायी ज्ञान का अभाव एक बड़ी समस्या बन गई है। इसके लिए हिंदी शिक्षण योजना की सक्रियता के बावजूद समस्या का हल नहीं हो पाया है। बड़ी संख्या में हिंदी शिक्षण के लिए शेष कर्मचारियों को सफल एवं कारगर शिक्षण सुनिश्चित करने के लिए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की बड़ी मदद मिल सकती है। भारत सरकार के राजभाषा विभाग का प्रगत संगणन विकास केंद्र (सी-डैक) से समाझौता के फलस्वरूप लीला प्रबोध, लीला प्रवीण, लीला प्राज्ञ पाठ्यक्रमों का शिक्षण कंप्यूटर व इंटरनेट के माध्यम से विभिन्न भाषायी माध्यमों की सुविधा के साथ शुरू हो चुका है। इसके बावजूद कोई बड़ा उल्लेखनीय परिणाम नजर नहीं आया है। वास्तव में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की क्षमताओं का भरपूर प्रयोग न होने की वजह से इसका पूरा लाभ नहीं मिला है।

हिंदी अनुवाद की समस्या : सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से मशीनी अनुवाद की सुविधाओं का जन्म हुआ है, हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के संबंध में ये सुविधाएँ अभी आरंभिक अवस्था में हैं। मगर दुर्भाग्य से इन्हीं सुविधाओं के अनुवाद आज अधिकांश सरकारी दस्तावेजों और वेबसाइटों में दर्शन दे रहा है। मशीन अनुवाद को अनुवाद कार्य को आसान बनाने में कुछ हद तक प्रयोग किया जा सकता है, मगर इसमें सुशिक्षित अनुवादकों द्वारा मशीनी अनुवाद का पुनरीक्षण किया जाना अपेक्षित है। भविष्य में ये सुविधाएँ विकसित हो जाने से निश्चय ही राजभाषा कार्यान्वयन कार्य में सुगमता होगी।

वेबसाइटों में हिंदी में सामग्री का अभाव : कई सरकारी वेबसाइट, जिनमें सभी सूचनाएँ हिंदी व अन्य क्षेत्रीय राजभाषाओं में भी उपलब्ध होना अपेक्षित है, मगर इसकी बड़ी उपेक्षा नजर आ रही है। शीघ्र ही इस ओर प्रयास अपेक्षित है। निष्ठापूर्वक इस कार्य का संपादन अपेक्षित है।

जनसूचनाओं में हिंदी के प्रयोग का अभाव : जैसे कि उडक्त अनुच्छेद में स्पष्ट किया गया है सरकारी वेबसाइट, जिनमें जन-सूचनाएँ जनभाषाओं में होना अपेक्षित है। इसके अलावा अन्य किसी भी रूप में जन-सूचनाएँ उपलब्ध कराई जा रही हैं, उन्हें अपेक्षित भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत करने का प्रयास होना चाहिए।

सरकारी कार्यालयों का नेमी पत्राचार : सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से सरकारी कार्यालयों का नेमी पत्राचार आसानी से हिंदी में भी करना संभव है। मगर दुर्भाग्य से अधिकांश कंप्यूटरों का टंकण मशीन से बढ़कर (ज्यादा से ज्यादा इलेक्ट्रॉनिक टंकण मशीन के मुताबिक) अधिक गतिशीलता के साथ प्रयोग नहीं किया जा रहा है। इस ओर ध्यान देकर सभी संबंधितों को सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की क्षमताओं के संबंध में जागरूकता और सही प्रशिक्षण दिलाने की जरूरत है। राजभाषा विभाग तथा अन्य विभागों द्वारा वर्तमान समय में दिए जा रहे प्रशिक्षण इस दृष्टि से सक्षम व काफी नहीं हैं। भविष्य में इस मुद्दे की ओर ध्यान देकर पूरी निष्ठा के साथ जागरूकता और प्रशिक्षण सुविधाएँ विकसित करने की जरूरत है।

शब्दावली का विकास, प्रचलन व प्रयोग : पारिभाषिक व तकनीकी शब्दावली के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग विगत छह-सात दशकों से कार्यरत रहने के बावजूद इस दिशा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का सही रूप में प्रयोग नहीं हुआ है। इस कार्य में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का भरपूर फायदा उठाया जा सकता है। आयोग द्वारा विकसित शब्दवलियों का वेब पर ई-पुस्तकों / पीडीएफ पुस्तकों के रूप में उपलब्ध कराना वर्तमान दशक में सुनिश्चित हुआ है।

निरीक्षणों की रूपरेखा : राजभाषा कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए निरीक्षण सभी स्तरों पर आज भी परंपरागत रूप में हो रहे हैं। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का सही इस्तेमाल करते हुए निरीक्षण आसानी से किए जा सकते हैं। मार्गदर्शन भी आसान कार्य बन चुका है। नए माध्यमों का प्रयोग करते हुए राजकोषीय घाटे की स्थिति से बच सकते हैं। बड़ी संख्या में लोगों के आवागमन व अन्य मदों के खर्च पर रोक लगाकर निष्ठापूर्वक राजभाषा कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने में नवीन प्रौद्योगिकी के साधन और औजार सक्षम हैं।

नई सेवाओं में राजभाषा के प्रयोग के दायरे : राजकाज की भाषा के रूप में हिंदी प्रयोग की अपेक्षा शासकीय कार्यों में और सेवाओं के सभी रूपों से भी की जानी चाहिए। ई-शासन व ई-अधिशासन में भी हिंदी का प्रयोग अपेक्षित है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विकसित स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में सभी कार्यों का संपादन आसान हो चुका है। निष्ठापूर्वक हिंदी का प्रयोग सभी नई सेवाओं में अपनाने की जरूरत है। अब तक अपनाई गई तमाम सेवाओं में कई कमियाँ हैं, उन्हें सक्षम बनाने की जरूरत है। राजभाषा विभाग कार्यान्वयन संबंधी नियंत्रण में जिस प्रबंधन प्रणाली को अपनाई है, उसकी भी कई खामियाँ हैं, उन्हें ठीक करने की जरूरत है। ई-महाशब्दकोश महानता हासिल करने में अभी काफी पिछड़ा है।

राजभाषा विभाग सी-डैक द्वारा विकसित कराई गई सुविधाओं को जनसुलभ बनाकर राजभाषा के विकास को सुनिश्चित कर सकता है। सी-डैक के प्रयासों में व्यापारिक दृष्टि को समाप्त करने की जरूरत है, तभी जाकर हिंदी के कार्यावन्वयन के लिए उनके द्वारा उत्पादित, विकासरत सेवाओं के माध्यम से हिंदी का हित संभव हो सकता है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की वजह से इंटरनेट में हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं का प्रवेश हो चुका है, मगर वहाँ इनके सही विकास के लिए निष्ठापूर्ण प्रयासों की जरूरत है। भाषायी विकास के लिए अन्य कई संसाधनों का विकास किया जा सकता है। 'वर्धा हिंदी शब्दकोश' जैसे एकाध कोश ही हाल ही उपलब्ध हो पाए हैं। ऐसे संसाधनों का हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में तुरंत नि:शुल्क उपलब्ध हो जाना और जनसुलभ होना भारत की राजभाषा नीति के अनुकूल पहल के रूप में देखा जा सकता है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के तमाम अनुप्रयोगों का लाभ उठाते हुए राजभाषा कार्यान्वयन में सफलता एवं अभूतपूर्व प्रगति हासिल करना संभव है। ❑

संदर्भ :

1. डॉ. सी. जय शंकर बाबु, भाषा प्रौद्योगिकी, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय, 2016
2. 222.rajbhasha.gov.in
3. 222.rajbhasha.nic.in
4. 222.hindivishwa.org
5. 222.cdac.in
6. डॉ. सी. जय शंकर बाबु, हिंदी के विकास के लिए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी : हिंदी भाषा एवं साहित्य शिक्षण और अधिगम में आई.सी.टी. के प्रयोग का समग्र अध्ययन, पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय, 2015

दृष्टिकोण

स्वाधीन भारत में शिक्षा नीति : प्रथम

डॉ. आकाश वर्मा

आचार्य, हिंदी विभाग
असम विश्वविद्यालय
सिलचर, असम, 788011
मो. 09435173672
ई-मेल : hindiakash@gmail.com

जबकि प्रत्येक देश की सामाजिक, राजनीतिक, मानवीय एवं भौतिक संसाधनों की आवश्यकताएँ तथा उनकी दिशाएँ समयानुसार परिवर्तित हो रही हैं, इस दृष्टि से आज भारत की तीव्रता से बदलती हुई परिस्थितियों में शिक्षा व्यवस्था का भी समयानुकूल परिवर्तित होना अति आवश्यक था। वर्ष 2020 की नई शिक्षा नीति भी उसी सार्वभौमिक परिवर्तनशील प्रक्रिया का एक अंश है। निश्चित रूप से आज भारत की स्थिति वैश्विक परिप्रेक्ष्य में बदल रही है। आवश्यकताओं और उसके अनुरूप नीतियों का नियोजन किया जा रहा है, लेकिन यह स्थिति स्वाधीनता के समय नहीं थी। उस समय तो देश की बुनियादी आवश्यकताओं के लिए नीतियों को निर्धारित करना ही सबसे बड़ा लक्ष्य था। उसमें कई स्थानों पर सफलता मिली और कई जगहों पर आज भी प्रयास किए जा रहे हैं। हम जानते हैं कि स्वाधीनता प्राप्त करते ही भारत में अनेक अवस्थाएँ प्रकट होती हैं, जिनको भारतीय जनबोध तथा जनता के अनुसार व्यवस्थित और स्थापित करना था। इसके निरंतर प्रयास भी किए गए। उसमें से एक, देश की शिक्षा व्यवस्था भी थी।

हम जानते हैं कि स्वाधीनता से पूर्व ब्रिटिश शासन व्यवस्था ने यहाँ की शिक्षा नीतियों को अपनी आवश्यकता के अनुसार इस देश में लागू कर रखा था। इस अवस्था में निश्चय ही उनकी व्यवस्था को परिवर्तित करते हुए अपने देश की जनता के लिए, उसकी आवश्यकता के लिए तथा उसे शिक्षित करने के उद्देश्य निहित थे। वहाँ कोई स्वार्थ न था, बल्कि देश सेवा तथा लोक चरित्रोत्थान अथवा निर्माण होना था। कहने का अर्थ यह कि उस समय 1947 तक चली आ रही शिक्षा व्यवस्था तथा शिक्षा नीति का मूल्यांकन करके, उसको पुनर्स्थापित करना था, जिसकी नीतियाँ भारतीय परिप्रेक्ष्य के अनुसार बनाई गईं। हालाँकि 1921 से द्वैध शासन नीति के तहत शिक्षा की व्यवस्था का अधिकार देशी प्रांतों को दे दिया गया था तथा 1937 से कथित भारतीय स्वायत्तशासी नियंत्रण (शिक्षा का) भी अंग्रेजी प्रशासन के ही अधीन रहा। यह अंग्रेजी नीति की विशेष चाल थी। असल में बात यह थी कि प्रथम विश्व युद्ध के दबाव में अनेक देशों (उपनिवेश) के नियंत्रण और व्यवस्था में

समस्या आ रही थी और द्वितीय विश्व युद्ध की आशंका और उसके दबाव में 1937 में शिक्षा का पूरा नियंत्रण भारतीय जन प्रतिनिधियों को दे दिया गया था, लेकिन जैसे युद्ध में विजय के लक्षण हुए सार्जेंट शिक्षा योजना 1944 के साथ पुन: संचालन की नीतियाँ बनने लगीं।[1] इस बीच एक बात अवश्य हो गई कि प्रांतीय तथा स्वायत्त नियंत्रण ने भारतीय शिक्षा में भारतीय स्वरूप का खाका अवश्य खींचना आरंभ कर दिया। बेसिक शिक्षा की वर्धा योजना तथा जाकिर हुसैन समिति ने अनेक प्रस्ताव रखे, जिनके अनुसार कार्य चल रहा था। तब भी निश्चित रूप से 1947 से पूर्व कोई विशेष बदलाव नहीं हुथा था, क्योंकि आर्थिक नियंत्रण अंग्रेजों के ही हाथ में था। बहरहाल, स्वाधीनता के बाद जब बदलाव की आवश्यकता महसूस हुई, तब प्रथम प्रधानमंत्री ने जनवरी 1948 में अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में कहा था- भारत में शिक्षा के संबंध में योजना तैयार करने के लिए जब कभी सम्मेलनों का संयोजन किया गया, उसमें नियमत: प्रवृत्ति यह रही कि कुछ संशोधनों के साथ वर्तमान पद्धति को कायम रखा जाए। अब यह नहीं होना चाहिए... देश में भारी परिवर्तन हो चुके हैं और शिक्षा पद्धति भी अब उन्हीं के अनुरूप होनी चाहिए... शिक्षा के संपूर्ण आधार को अब आमूल परिवर्तित किया जाना चाहिए।[2] हालाँकि इस आधार का आमूल परिवर्तन ठीक से कभी नहीं हो सका। यह नहीं माना जा सकता कि इसके लिए प्रयास नहीं किए गए, किंतु यह भी कहा जा सकता है कि यह प्रयास मिश्रित शिक्षा व्यवस्था होने के कारण प्रयोगात्मक भर थे। मिश्रित का अर्थ अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था की पृष्ठभूमि में भारतीय परंपरा की शिक्षा को स्थापित करना। प्रयोगात्मक कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ एक ओर अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था केवल व्यावसायिक दृष्टि से संचालित थी तथा केवल सरकारी मुलाजिमों के निर्माण के आधारभूत उद्देश्य से क्रियाशील थी, वहीं पर प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था सामाजिक-सांस्कृतिक, नैतिकता-शिष्टाचार प्रधान चरित्रवान तथा शिल्पादि में निपुण नागरिकों के निर्माण के उद्देश्य से भी निर्देशित थी। ऐसे में चाह कर भी अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था भारतीय उद्देश्यों के अनुरूप कार्य नहीं कर सकती थी। स्वाधीनता के पश्चात एक प्रकार से भारतीय जनता के शिक्षा की आवश्यकता को निर्धारित कर तद्नुरूप मूल्यांकन करके शिक्षा की नीतियों का निर्माण करना था।

इस मूल्यांकन का कारण यह माना जा सकता है कि लगभग दो सौ वर्षों के पश्चात स्वाधीनता आने तक- प्राचीन शिक्षा व्यवस्था से संचालित समाज (उच्च और पढ़ा-लिखा) बदलकर आधुनिकतावादी हो चुका था। तकनीकी युग का प्रवेश हो चुका था। अत: नए भारत के लिए अंग्रेजी शासन द्वारा चलाई गई शिक्षा पद्धति स्वतंत्र भारत के अपनाने के लिए संपूर्ण रूप से भले ही अनुपयुडक्त थी, परंतु देश काल और परिस्थितियों पर ध्यान देते हुए प्राचीन शिक्षा पद्धति भी देश के तात्कालिक विकास में वांछित योग देने में पूर्णतया समर्थ नहीं थी। अत: दोनों का मध्य मार्ग अपनाकर देश और जनता के हितों के अनुसार शिक्षा में आवश्यक सुधार करना ही श्रेयस्कर समझा गया।[3] हम गहन विचार करें तो पाएँगे कि अंग्रेजी सत्ता के अंतर्गत भारतीय सांस्कृतिक शिक्षा का अधिक पतन हुआ। वैज्ञानिक तथा तकनीति पद्धतियों को आधुनिक विश्व के तकनीकी विकास के अनुसार स्वाभाविक ही परिवर्तित होना था, सो वह हो गई, लेकिन भारत की परंपरागत गुरुकुल शिक्षा प्रणाली तथा सामाजिक चारित्रिक अवयवों के निर्माणक संस्थान नष्ट कर दिए गए। मध्य काल में राजे-रजवाड़ों तथा रईसों के अधीन चलने वाले गीत- संगीत, नृत्य, कला आदि की परंपराओं का भी संस्थागत रूप से अंत हो जाता है। ऐसे में स्वतंत्र भारत की सरकार का यह दायित्व बना कि देश की इन सांस्कृतिक परंपराओं के न केवल संरक्षण की व्यवस्था करे, बल्कि इन्हें विकसित बनाए।[4] अत: स्वतंत्र भारत में, केवल पश्चिमी यूरोप तक सीमित सांस्कृतिक संबंधों को भारतीय दृष्टिकोण से विस्तारित करना था। इस लिहाज से ऐसी शिक्षा नीति का निर्माण करना था, जो प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक, साथ-ही-साथ व्यावसायिक से प्रौढ़ शिक्षा तक की व्यवस्था को रेखांकित कर सके। स्वतंत्र भारत की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति सर्वप्रथम 1968 में लागू की जाती है। विचार करें तो यह नीति अचानक से नहीं तैयार हो

जाती। इसके निर्माण में अनेक समीतियों की सिफारिशें, आयोगों के सुझाव तथा तत्कालिक आवश्यकताएँ भी महत्वपूर्ण रहीं, जो स्वाधीनता पूर्व से आ रही नीतियों और स्वाधीनता के पश्चात बनी नीतियों से संचालित होती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 :

स्वाधीन हुए भारत के सामने अन्य समस्याओं के साथ-साथ शिक्षा को लेकर भी बड़ी भारी और विकट समस्याएँ थीं। हम जानते हैं 1947 में भारत की जनसंख्या लगभग 36 करोड़ थी। इसमें लगभग 80 प्रतिशत से अधिक भारतीय अनपढ़ थे, 6 से 11 वर्ष के केवल 30 प्रतिशत बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ थीं[5], और 11 से 17 वर्ष की अवस्था के लिए यह अनुपात केवल 10 प्रतिशत था और 17 से 23 वर्ष के लिए केवल 1 प्रतिशत, इंजीनियरिंग तथा टेक्निकल शिक्षा में स्थिति और भी दयनीय थी, 1947-48 में भारत के इंजीनियरिंग तथा टेक्निकल कॉलेजों से क्रमश: 930 और 320 स्नातक उत्पन्न हुए थे।[6] इन कमजोरियों को दूर करने के साथ भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के निर्माण से पूर्व भारतीय जनता को सेवा देने के स्वरूप को भारतीय संविधान की 45वीं धारा में स्पष्ट रूप से यह प्रावधान किया गया कि संविधान के लागू होने पश्चात 10 वर्ष के भीतर 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था कर दी जाएगी।[7] यह अलग बात है कि यह पूर्णरूपेण संभव नहीं हो सका था। यह धारा स्वाधीन भारत के सरकार की भारतीय जनता के लिए पहली ऐसी व्यवस्था थी, जो प्राथमिक शिक्षा को मूल अधिकारों में शामिल करती है। हम जानते हैं कि 1921 से प्रांतीय सरकारों के अधीन कर दी गई शिक्षा व्यवस्था अथवा 1937 से शिक्षा का संचालन भारतीय स्वायत्त शासन के अंतर्गत हो चुका था। इससे शिक्षा का नियंत्रण भारतीयों के नेतृत्व में अवश्य आ जाता है, जिनका उद्देश्य भारतीय जनता को शिक्षित करना होता है, बजाय इसके कि उनसे केवल सरकारी सेवाएँ ही ली जाएँ, लेकिन संचालन एवं शर्तें अंग्रेजों की ही रहती थीं। इसके पूर्व नीतियाँ केवल शिक्षा के ढाँचे, उद्देश्य, पाठ्यक्रम आदि पर विचार करती रही हैं। एक प्रकार से भारतीय शिक्षा में बदलाव के अवसर पहले से ही दिखाई देते हैं। बहरहाल, इस शिक्षा नीति 1968 के आने से पूर्व तीन प्रकार की समितियाँ अपने-अपने क्षेत्र के अनुरूप कार्य कर रही थीं, जिनका संबंध अलग-अलग प्रकार से प्राथमिक या बेसिक शिक्षा के लिए, माध्यमिक शिक्षा के लिए तथा उच्च अथवा विश्वविद्यालयी शिक्षा से था। शिक्षा नीति

1968 की पृष्ठभूमि में कहीं-न-कहीं सार्जेंट कमेटी 1944 की रिपोर्ट भी कार्य करती है, जिसके मुख्य सुझाव इस प्रकार थे- 3 से 6 वर्ष के बच्चों के लिए शिशुशालाएँ, 6 से 14 वर्ष के बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा, इनमें से चुने हुए योग्य बालकों (11 से 17 वर्ष तक) को हाई स्कूल की शिक्षा, उच्च बेसिक शिक्षा (इंटरमीडिएट) के बाद तीन साल तक विश्वविद्यालय की शिक्षा, शिल्प-कला एवं व्यवसाय की शिक्षा व्यवस्था, वर्ष 1944 से अगले 20 साल में निरक्षरता निवारण एवं साधारण जनता के लिए पुस्तकालयों की व्यवस्था, शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था, बच्चों के लिए अनिवार्य शारीरिक शिक्षा की व्यवस्था, जिसमें चिकित्सा के साथ दोपहर के अल्पाहार की व्यवस्था, सलाहकार समितियों (इम्प्लायमेंट ब्यूरो) का निर्माण, विशेष रूप से शारीरिक एवं पीड़ित बच्चों की शिक्षा व्यवस्था, पर्याप्त मात्रा में मनोरंजन एवं सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।[8] सही अर्थों में देखें तो भारतीय शिक्षा की समस्याओं में सुधार करने के लिए यह पहली वह व्यवस्थित योजना थी, जिसका उद्देश्य अगले 40 वर्षों में भारत के भीतर भी उतना ही शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर देना था, जितना कि उस समय ब्रिटेन में था।[9] यह विचारणीय है कि द्वितीय विश्व युद्ध के अंतिम समय में ब्रिटेन के समान (जैसी) शिक्षा को भारत में लागू करने की योजना इसके बावजूद भारतीय परिप्रेक्ष्यों को नहीं पूरा करती थी। सार्जेंट समिति अनेक अन्य सुझाव भी देती है, जिसकी चर्चा करने का यहाँ औचित्य नहीं। भारत स्वाधीन होता है और नीतियों में फेरबदल होते हैं।

इस समिति के सुझावों को भारतीय मंत्रिमंडल के जन प्रतिनिधियों द्वारा लागू अवश्य किया जाता है, जिसमें इस दृष्टि से देखें तो स्वाधीनता के पूर्व से ही 1945 में केंद्रीय शिक्षा समिति, 1946 में विश्वविद्यालय अनुदान समिति स्थापित होती है। स्वाधीनता मिलने के कुछ समय बाद तक ये सुझाव और समितियाँ कार्य करते रहे। स्वाधीनता के पश्चात इनका मूल्यांकन और फेरबदल करके इनके भारतीयकरण पर विचार किया गया । वस्तुत: हुआ यह कि सन 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय नेताओं ने इस योजना को पुन: दोहराया और इसका राष्ट्रीयकरण किया।[10] लेकिन यह पूर्ण सत्य नहीं है। सार्जेंट समिति की सिफारिशें स्वाधीन भारत के शिक्षा नीति के निर्माण में पृष्ठभूमि की तरह कार्य करती हैं, बजाय इसके कि इसे पूरी तरह से अपना लिया गया था। स्वाधीनता के साथ ही केंद्रीय शिक्षा सलाहकार समिति बनती है, अलग से 1947 में भारत सरकार का शिक्षा मंत्रालय स्थापित होता है, जिसके अधीन केंद्रीय सरकार का शिक्षा विभाग भी निर्मित होता है।

इस क्रम में वर्ष 1948 में डॉ. राधाकृष्णन के नेतृत्व में दस सदस्यीय विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (डॉ. ताराचंद, डॉ. जेम्स डफ, डॉ. जाकिर हुसैन, डॉ. आर्थर मोर्गन, डॉ. लक्ष्मनस्वामी मुदालियर, डॉ. मेघनाद साहा, डॉ. कर्मनारायण बहल, डॉ. जान टिगर्ट, श्री निर्मल कुमार सिद्धांत) निर्मित होता है, जिसका उद्देश्य भारतीय विश्वविद्यालयों की शिक्षा पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना तथा उसके विस्तार एवं विकास के लिए सुझाव देना रहा, जो वर्तमान तथा भविष्य के भारत की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके।[11] यह समिति अपने 700 से अधिक पृष्ठों की विस्तृत शिक्षा संबंधी रिपोर्ट में वेद-वेदांगों से लेकर प्राचीन शिक्षा परंपराओं का हवाला देते हुए एक ऐसे प्रजातंत्र के निर्माण की बात करती है, जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा भाईचारे का विस्तार हो सके।[12] इसी के साथ बंबई के मुख्यमंत्री बी.जी. खेर की अध्यक्षता में 1948 में बेसिक शिक्षा के विकास के लिए समिति बनती है, जिसके सुझावों को भारत सरकार अपना लेती है। 1948 में ही माध्यमिक शिक्षा के अवलोकनार्थ ताराचंद समिति गठित होती है- इसमें पूर्व से चली आ रही माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था का अवलोकन करके स्कूली व्यवस्था का उद्धार, शिक्षकों की स्थिति, स्कूलों की स्थापना, आर्थिक व्यवस्था आदि के लिए नीति तथा दिशा-निर्देश तय करके भारत सरकार को सुझाव देना था।[13] इस समिति का कार्य भारत के माध्यमिक शिक्षा की स्थिति, सुधार तथा उच्च शिक्षा से जुड़ाव का मूल्यांकन करना और दिशा-निर्देश तय करना भी था । इसी ताराचंद समिति की सिफारिश पर 1952 में माध्यमिक शिक्षा के लिए मद्रास विश्वविद्यालय के कुलपति लक्ष्मणस्वामी

मुदालियार के नेतृत्व में समिति बनाई जाती है, जिसके सदस्य- जॉन क्रिस्टी, केनेथ रस्ट विलियम्स, हंस मेहता, जे.ए. तारापोरवाला, के.एल. श्रीमाली, एम.टी. व्यास, के.जी. सैयदेन, ए.एन. बासु, एस.एम.एस. चारी रहे। इस समिति में सभी राज्यों से भी सह-सदस्यों के रूप में अनेक लोगों को नियुक्त किया गया। यह समिति मानती है कि आरंभ से लेकर इस समिति के गठन तक अनेक शैक्षिक समितियों का निर्माण हुआ, उनकी नीतियों के पालन के लिए व्यवस्थाएँ की गईं, लेकिन कोई भी ऐसी समिति नहीं बनी, जो माध्यमिक शिक्षा का संपूर्ण रूप से सर्वेक्षण करके उसकी समस्याओं पर विचार करे तथा सुझाव दे।[14] यह बहुत विस्तार से पहले से चली आ रही माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था की कमियों, अभावों, जटिलताओं आदि की चर्चा करके उनमें बदलाव तथा सुधार के मार्गों का विश्लेषण करती है, जिसे तत्कालीन भारत सरकार अपना लेती है। इन सभी प्रयासों से पूर्व की स्थितियों में सुधार होता अवश्य है, किंतु कहीं-न-कहीं भारत सरकार को एक पूरे भारतवर्ष के लिए एकल शिक्षा नीति की आवश्यकता महसूस होती है, जो प्राथमिक से लेकर उच्चतर शिक्षा तक को नियोजित कर सके तथा भारतीय शिक्षा व्यवस्था को एकरूपता प्रदान कर सके।

पिछली समितियों की नीतियों से प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च और विश्वविद्यालयी शिक्षा में क्रमश: सुधार था, स्वाधीनता के बाद शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ती है, शिक्षा विभागों का निर्माण होता है, इसके साथ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (1954) भी कार्य करता है- लेकिन एकल शिक्षा नीति नहीं होती है। 1964 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डी.एस. कोठारी के नेतृत्व में एक शिक्षा आयोग गठित होता है, जिसका कार्य अब तक चली आ रही सभी कार्य प्रणालियों, समितियों, आयोगों की अनुशंसाओं, सुझावों तथा नीतियों का विश्लेषण करते हुए भारत की शिक्षा नीति का निर्माण करे। इस समिति में अन्य सदस्य रहे- ए.आर. दाऊद, एच.एल. एल्विन, आर.ए. गोपालस्वामी, सादातोषी इहारा, वी.एस. झा, पी.एन. किरपाल, एम.वी. माथुर, वी.पी. पाल, कुमारी एस. पनन्दीकर, रोजर रेवेल, के.जी. सैयदेन, टी. सेन, एस.ए. शुमोवस्की, एम. जीन थामस, जे.पी. नायक, जे.एफ. मैकडॉगल। यह 17 सदस्यीय आयोग की समिति दो वर्षों में सभी राज्यों तथा केंद्र शासित प्रदेशों में भ्रमण करती है। लगभग हर समूह तथा तबके के लोगों से प्रश्नावली विधि से साक्षात्कार करती है। इन सबके पीछे शैक्षिक विकास से लेकर उसमें गुणात्मक सुधार, शिक्षा में विज्ञान तथा तकनीकी का समावेश, लोकतंत्रीय समझ के लोक के निर्माण की शिक्षा एवं सबसे महत्वपूर्ण भारत की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के निर्माण का उद्देश्य निहित रहा। यह आयोग वर्ष 1966 में 940 पृष्ठों से अधिक की रिपोर्ट प्रस्तुत करता है, जिसके तीन हिस्से होते हैं- शिक्षा की समस्याएँ (खंड एक), स्कूली शिक्षा (प्राथमिक और माध्यमिक- खंड दो) तथा उच्च शिक्षा (खंड तीन)। इन तीनों विषयों पर समिति अपना अध्ययन, विश्लेषण, विचार तथा सुझाव रखती है। कोठारी आयोग रिपोर्ट 1966 की संरचना पर ही 1968 की शिक्षा नीति तय और लागू की जाती है। यह भारत की प्रथम शिक्षा नीति होती है।

इस राष्टीय नीति से भारतीय शिक्षा को एक केंद्रीय स्वरूप प्राप्त होता है। शिक्षा की राष्ट्रीय नीति पर भारत सरकार सत्रह शीर्षकों में व्याख्यायित संकल्प जारी करती है।[15] कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि पिछली सभी पंचवर्षीय (प्रथम से तीन तक) योजनाओं में चली आ रही शैक्षिक गतिविधियों पर पुनर्विचार कर उसके भावी विकास से संबंधित कोठारी शिक्षा आयोग की दी गई अनुशंसाओं को अपनाते हुए भारत सरकार 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू करती है, उसका विवरण प्रस्तुत करती है। जिस प्रकार आज वर्ष 2020 में प्रस्तुत की गई नई शिक्षा नीति पर लगातार चर्चा हो रही है, उसी प्रकार पहली बार भारत में शिक्षा को लेकर जितनी चर्चा की गई उतनी उसके पूर्व कभी नहीं हुई थी। संसद से लेकर विधान मंडलों, पत्र-पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों, सम्मेलनों, संगोष्ठियों, संस्थाओं, संगठनों एवं लोक में निरंतर चर्चा होती रही।

इस नीति के माध्यम से पूरे भारत में शिक्षा के स्वरूप प्राथमिक (5 वर्ष), उच्च प्राथमिक (तीन वर्ष), पूर्व माध्यमिक (हाईस्कूल-दो वर्ष), उत्तर माध्यमिक

(इंटरमीडिएट- दो वर्ष), स्नातक (तीन वर्ष), स्नातकोत्तर के विभाजन में 10+2+3 की पद्धति पर लागू किया गया, जिसे प्रत्येक राज्य ने अपना लिया था। शिक्षा आयोग अथवा कोठारी आयोग की रिपोर्ट 1968 की प्रमुख अनुशंसाओं[16] को हम संक्षेप में इस प्रकार देख सकते हैं-

● शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व का विषय मानते हुए एक राष्ट्रीय शिक्षा निति अपनाई जाए। प्रशासन स्तर पर एनसीईआरटी को विद्यालयी शिक्षा का तथा प्रत्येक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय नीति घोषित की जाए और नेशनल एजुकेशन एक्ट तथा स्टेट एजुकेशन एक्ट बनाया जाए।

● केंद्र तथा राज्य सरकारें अपने बजट का 6 प्रतिशत शिक्षा के निमित्त रखें। ग्राम पंचायतों तथा नगरपालिकाओं का निर्माण कर उस क्षेत्र की प्राथमिक शिक्षा का भार सौंपें । शैक्षिक नियोजन के लिए सरकारें अलग-अलग कार्य करें। विद्यालय के लिए स्थानिय निकाय और राज्य सरकार तथा उच्च शिक्षा के लिए राज्य तथा केंद्र सरकार मिलकर करें। शैक्षिक नियोजन वर्तमान तथा भविष्य की माँग के आधार पर हो।

● यह सुनिश्चित हो कि शिक्षा की उत्पादकता को बढ़ावा मिले इसलिए विज्ञान, कृषि तथा व्यावसायिक शिक्षा, जिसमें कृषि और औद्योगिक शिक्षा को महत्व दिया जाए। इसके साथ-साथ शिक्षा के आधुनिकीकरण को भी महत्व दिया जाए। सामाजिक नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के विकास के लिए वातावरण तैयार किया जाए। लोकतंत्र की सुदृढ़ता के लिए बिना भेदभाव के सभी बालकों को शिक्षा का अवसर मिले, चौदह वर्ष तक के बच्चों को अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा तथा वयस्क शिक्षा को भी प्रोत्साहित किया जाए।

● अध्यापकों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। इसके लिए भारत सरकार उनके वेतनक्रम को सुनिश्चित करे तथा उसमें बदलाव करते हुए वृद्धि भी करे। शिक्षकों को भी सरकारी कर्मचारियों की तरह महंगाई भत्ता दिया जाए एवं प्रत्येक पाँच वर्ष पर इसका विश्लेषण भी किया जाए। नियुक्ति तथा पदोन्नति की विधि में सुधार हो और योग्यतम एवं कुशलतम को महत्व दिया जाए। शिक्षकों की कार्य सेवा की दशाओं में समानता स्थापित की जाए। उनको न्यूनतम तथा आवासीय सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। प्रत्येक पाँच वर्ष पर देश भ्रमण के लिए रियायती टिकट तथा पेशन एवं जीपीएफ बीमा जैसी सुविधा भी मिले। आयोग ने माना कि सभी स्तरों पर महिला शिक्षकों के चयन के लिए प्रोत्साहित किया जाए। शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था निम्न कोटि की है। अध्यापकीय शिक्षा के अध्यापक अयोग्य हैं, साथ ही साथ उसके पाठ्यक्रम औचित्यपूर्ण नहीं हैं - मसलन उसमें नवीनता, सजीवता, एवं वास्तविकता का समावेश नहीं है। यह किसी भी प्रकार से चल रहा है। इसमें आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

● आयोग ने पाया कि उन्नत वर्ग, पिछड़े वर्ग, अछूत वर्ग एवं आदिवासियों की शिक्षा में व्यापक असमानता है। इसको दूर करने करने के लिए नि:शुल्क, कम खर्चीली एवं छात्रवृत्ति योजना वाली शिक्षा दी जाए। क्रमश: शिक्षा को नि:शुल्क किया जाए। छात्रों के खर्च में कमी के लिए प्राथमिक स्तर पर नि:शुल्क पुस्तकें वितरित हों, माध्यमिक तथा उच्च स्तर पर पुस्तकालय की व्यवस्था हो। निर्धन तथा योग्य छात्रों का विशेष ध्यान रखा जाए, इसके लिए विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्ति तथा ऋण की व्यवस्था भी हो।

● विद्यालयी शिक्षा का विस्तार करने के लिए पूर्व प्राथमिक शिशु केंद्र खोले जाएँ तथा उनको प्राथमिक विद्यालयों से जोड़ दिया जाए। राज्य के शिक्षा संस्थान इस हेतु केंद्र के सहयोग से इसका निर्माण करें। इसके साथ ही आयोग द्वारा सभी बच्चों के लिए शिक्षा व्यवस्था के विस्तार हेतु प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के विस्तार हेतु अनेक सुझाव देती है।

इसी के साथ यह समिति भाषा को लेकर अपने विचार प्रकट करती है[17] कि अब निचले स्तर से लेकर उच्च स्तर तक आधुनिक भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए, जिससे क्षेत्रीय महत्व तथा राष्ट्रीय एकता को महसूस किया जा सके। इसके लिए सभी वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा तथा ज्ञान को भी सभी प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाए। यह समिति हिंदी को भारत भर के लिए शिक्षा का माध्यम बनाने का सुझाव नहीं देती, किंतु उसे भारतीय

संवाद के माध्यम के रूप में विकसित करने की बात अवश्य स्वीकार करती है। हाँ, साथ ही साथ अंतर्राष्ट्रीय संवाद के लिए अंग्रेजी को पूरी तरह से समाप्त नहीं करने का भी सुझाव देती है। यह एक प्रकार से त्रिभाषा सूत्र की नीति मानी जा सकती है, जिसे राज्यों ने अपने अपने हिसाब से अपनाया और लागू किया। ❑

संदर्भ सूची :

1. प्यारेलाल रावत- प्राचीन से आधुनिक : भारतीय शिक्षा का इतिहास, पृष्ठ-269, नाथ पब्लिशिंग हाउस, आगरा, प्रथम संस्करण-1953, (यह पुस्तक भारत पब्लिकेशंस, आगरा से भी प्रकाशित हुई है)
2. जे.पी. नायक तथा सैयद नूरुल्ला- !भारतीय शिक्षा का इतिहास (1800-1973), पृष्ठ-373, मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1976 (हिंदी संस्करण)
3. सरयू प्रसाद चौबे-भारतीय शिक्षा का इतिहास, पृष्ठ-558, रामनारायण लाल प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1959
4. मुनेश्वर प्रसाद- भारतीय शिक्षा का इतिहास (द्वितीय भाग, आधुनिक काल), पृष्ठ- 393, श्री अजंता प्रेस (प्राइवेट) लिमिटेड, पटना-4, संस्करण-1957
5. श्रीधरनाथ मुखर्जी-भारत में शिक्षा, पृष्ठ-22, आचार्य बुक डिपो, बड़ौदा, प्रथम संस्करण-1960
6. मुनेश्वर प्रसाद-भारतीय शिक्षा का इतिहास (द्वितीय भाग, आधुनिक काल), पृष्ठ- 398-99
7. बी.पी जौहरी एवं पी.डी. पाठक-भारतीय शिक्षा का इतिहास, पृष्ठ- 355, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2, षष्ठम् संस्करण-1971
8. रमाकांत श्रीवास्तव-भारतीय शिक्षा (शिक्षण समस्याओं का ऐतिहासिक विश्लेषण), पृष्ठ-86, प्रकाशक-गर्ग ब्रदर्स, कटरा रोड, प्रयाग, प्रथम संस्करण-1959
9. तदेव, पृष्ठ : 85-86
10. तदेव, पृष्ठ : 87
11. दि रिपोर्ट ऑफ दि यूनिवर्सिटी एजूकेशन कमीशन (राधाकृष्णन समिति की रिपोर्ट) 1948-49, पृष्ठ-1, प्रथम संस्करण 1952 (पुनर्मुद्रित 1962), शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
12. तदेव, पृष्ठ-31
13. एनेक्जर-1 (एजेंडा), रिपोर्ट ऑफ दी कमेटी आन सेकेंडरी एजुकेशन इन इंडिया (ताराचंद समिति की रिपोर्ट) 1948, पृष्ठ-6, ब्यूरो ऑफ एजुकेशन, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
14. चैप्टर-1, रिपोर्ट आफ दी सेकेंडरी एजुकेशन कमीशन (मुदालियर समिति की रिपोर्ट) 1954, पृष्ठ- 6-7, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
15. रिपोर्ट ऑफ दी एजुकेशन कमीशन 1966 (कोठारी कमीशन 1964-66), पृष्ठ- XII- XVIII, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, प्रथम संस्करण-1966
16. समकालीन भारत और शिक्षा, पृष्ठ : 176-185, विशिष्ठ शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखंड मुडक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड, प्रकाशन वर्ष-2016
17. रिपोर्ट ऑफ दी एजुकेशन कमीशन 1966 (कोठारी कमीशन 1964-66), पैरा- 1.49 से पैरा 1.62, पृष्ठ-19-23, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, प्रथम संस्करण-1966

असम के वसंतकालीन लोकोत्सव एवं लोकगीत

डॉ. रीतामणि वैश्य

सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय
मो. 9435116133
ई-मेल : rita1@gauhati.ac.in

भारतवर्ष के पूर्वोत्तर में स्थित असम विविध भाषा एवं जाति-जनजातियों की संस्कृति के महामिलन की भूमि है। यहाँ कई संप्रदायों के उत्सव मनाए जाते हैं। इन उत्सवों में अधिकांश वसंतोत्सव हैं और इन लोकोत्सवों के अवसर पर सुंदर लोक गीत गाए जाते हैं। इन लोक गीतों में प्रकृति के सौंदर्य के साथ एकात्मबोध स्थापन करने वाले लोक जीवन में वसंत ऋतु के रूप एवं रस से समृद्ध आनंद की अभिव्यक्ति हुई है। कृषक जीवन के साथ रहे प्रकृति के साहचर्य से वसंत ऋतु को एक विशेष मर्यादा मिली है।

असम में मनाए जाने वाले लोकोत्सवों में प्रथम एवं प्रमुख है बिहु। बिहु के अलावा भी यहाँ कई जनजातियों के वसंतकालीन लोकोत्सव मनाए जाते हैं। इनमें से बड़ो, देउरी मिचिङ; राभा, तिवा, कार्बि, पाति राभा, कोच राभा के वसंकालीन उत्सव विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

असमीया का वसंतोत्सव 'बहाग बिहु' एवं बिहु गीत :

बिहु असमीया जातीय जीवन का प्रतीक है। असमीया जातीय जीवन को दुनिया के सामने पहचान देने वाला मूल सांस्कृतिक साधन है बिहु। बिहु वसंतकालीन कृषि पर आधारित उत्सव है। कृषिजीवी असमीया लोग कृषि के तीन रूपों-रङाली, भोगाली एवं कङाली का बिहु के जरिए पालन करते हैं। कृषि के प्रारंभ में असमीया नववर्ष तथा ऋतुराज वसंत में 'रङाली' या बहाग बिहु मनाया जाता है। अनाज के अभाव काल में कृषि की श्रीवृद्धि के लिए 'कङाली' या काति बिहु तथा अनाज की प्रचुरता के समय 'भोगाली' या माघ बिहु मनाया जाता है।

वसंतकालीन बहाग बिहु असमीया जाति के गले का हार है। यह बिहु सात दिनों तक चलता है। इनके नाम हैं- 'गरु बिहु' (बैल बिहु), 'बर बिहु (बड़ा बिहु)' या 'मानुह बिहु' (मनुष्य बिहु), 'गोसाईं बिहु'(गोसाईं बिहु) , 'ताँतर बिहु' (करघे का बिहु), 'नाङ्लर बिहु' (हल का बिहु), 'घरुवा जीव-जंतुर बिहु' (घरेलू पशुओं का बिहु)और 'चेरा बिहु' (छोड़कर जानेवाला बिहु यानी अंतिम बिहु)। चैत और वैशाख महीने की संक्रांति से शुरू होने वाले इस बिहु के पहले दिन को गरु बिहु के रूप में मनाया जाता

है। इस दिन गृहस्थ अपने भैंस-बैल को नदी या सामूहिक तालाब में ले जाकर उनके सुस्वास्थ्य की कामना से नहलाते हैं। कद्दू, लौकी, बैंगन आदि उन पर फेंककर गाया जाता है-

'लाओ खा, बेंगेना खा
बछरे बछरे बाढ़ि जा,
मारे सरु बापेर सरु
तइ हबि बर गरु।'[1]

अर्थात, कद्दू-लौकी खा, बेंगन खा,साल-साल बढ़ता जा। तू माँ-बाप की तरह नाटा मत होना। तुझे लंबे कद का होना पड़ेगा।

गरु बिहु का दूसरा दिन यानी असमीया नववर्ष के वैशाख महीने के पहले दिन को मानुह बिहु मनाया जाता है। इस दिन छोटे बड़ों को प्रणाम कर आशीर्वाद लेते हैं। एक-दूसरे को 'बिहुवान'(बिहु के उपहार में कपड़े की भेंट) के रूप में गामोछा (गमछा), नए कपड़े आदि देते हैं।

बहाग बिहु रंग का त्योहार है। इस बिहु में लोग पारंपरिक खेल - अंडों को भिड़ाना, भैंसों की लड़ाई आदि खेलते हैं। बिहु नृत्य और गीत इस बिहु के आकर्षण के केंद्र बिन्दु हैं। खोल, ताल, भैंसा के सींग की 'पेँपा' (तुरही), 'टका' (बाँस से बना एक असमीया वाद्य),'गगणा' (बाँस से बना एक असमीया वाद्य) आदि वाद्य बजाते युवक-युवतियाँ बिहु नाचते हैं। बहाग बिहु असमीया जनजीवन का अविच्छेद्य अंग है। निम्नलिखित बिहुगीत में यही भावना प्रस्फुटित हुई है-

'अतिकै चेनेहर मुगारे महुरा
तातोकै चेनेहर माको
तातोकै चेनेहर बहागर बिहुटि
नेपाति केनेकै थाकोँ।'[2]

अर्थात, सबसे प्यारा मूँगा का अटेरन उससे भी प्यारी ढरकी, उससे भी प्यारा वैशाख का बिहु न मनाकर कैसे रहूँ।

बहाग बिहु के गीतों में प्रेमी और प्रेमिका के हृदय की अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। निम्नलिखित गीत में प्रेमी प्रेमिका को भगा ले जाने की योजना बन रही है-

'आजि माजे निशा यामे ऐ मइना
पदूलिर जपना खुलि।
कुकुरे भुकिले ओलाइ मात लगाबि
कॅते कि देखिछ बुलि॥'[3]

अर्थात, हे प्यारी, आज आधी रात को जाऊँगा। तुम आँगन का फाटक खोलकर रखना। कुत्ते के भौंकने पर तुम कहना कि तुमने कहीं कुछ देखा और घर से निकलकर मुझे आवाज देना।

वैशाख के पूरे महीने भर असमीया लोग बिहु नाचते हैं। विवाहित महिलाएँ वापस में 'जेंङ बिहु' नाचती हैं। बुजुर्ग पुरुष भी घर-घर जाकर 'हुँचरि' नाचते हैं।

बोड़ो जनजाति का वसंतोत्सव 'बैशागु' एवं लोकगीत :

बोड़ो जनजाति का प्रधान लोकोत्सव है बैशागु। यह इनका वसंतकालीन उत्सव है। बैछागु सात दिनों तक मनाया जाता है। बैशागु यौवन का त्योहार होता है। इस त्योहार के दौरान नृत्य के ताल के साथ बैशागु मेथाइ (वैशाख का गीत) गाया जाता है। यह आनंद का त्योहार है। बैशागु के दो पर्व होते हैं -बैल और मनुष्य। चैत महीने की संक्रांति के दिन बैल बिहु मनाया जाता है। गाय-बैल को कद्दू-बैंगन की माला पहनाकर नदी या तालाब में ले जाकर नहलाया जाता है। उस दिन उन्हें नए पगहे दिए जाते हैं। गाय-बैल को नहाते समय उन्हें कद्दू, लौकी, बेंगन आदि खिलाकर दीघलती (एक प्रकार का औषधीय पौधा) और माखियती (एक प्रकार का औषधीय पौधा) से उन्हें झाड़ते हुए गाया जाता है -

'दीघलथि लाओथि मौछौनि मुलि
दुदालि जागौन गाइ खुलिलि
दीघलथि लाओथि ख्रि ख्रि गन्थि
जौंगनि मौछौआ जागौन बलद जाथि
जानाय नंगा गाइदे थेमफ्रा
मारखा जागौन फालौनि बेहेरा।'[4]

अर्थात, दीघलती औषधि पौधा है। गाय का दूध बढ़ेगा। दीघलती लाठी की गाँठ घनी होती है। हमारा बछड़ा बैल की जात का होगा। कोई गाय-बैल ठिगना न रह पाएगा, सब बैल मजबूत होंगे।

गाय-बैल के नहाने के बाद कद्दू, लौकी, बैंगन, हल्दी के टुकड़े गाय-बैल पर फेंककर गया जाता है-

'लाउ जा फानाथांत जा
बौछौर एर हानजा हानजा।
बमानि खिथेर बिफानि खिथेर
नौंगछौर जागौन हालुवा गेदेर।
बिमा गाइदे बादि दाजा
बिका बलद बादि जॉ।'[5]

अर्थात, कद्दू-लौकी खा, बैंगन खा, साल-साल बढ़ता जा। माँ की तरह नाटा मत होना। बाप की तरह लंबे कद का होना।

नए साल के पहले दिन की सुबह बाँसुरी बजाकर नए साल का स्वागत किया जाता है। मनुष्य बिहु के दिन आँगन में 'बाथौ' (बड़ो देवता) के स्थान में पूजा की जाती है। इस दिन मृतक को पूजा दी जाती है। फिर खुडखा (एक प्रकार का कड़वा साग) के साथ मुर्गी का मांस खाया जाता है। साथ ही शराब पीकर नए साल का स्वागत किया जाता है। फिर छोटे बड़ों को गामोछा का उपहार देकर प्रणाम करते हैं और बड़े आशीर्वाद देते हैं। दूसरे दिन से गाँव के युवक-युवती वंशी, ताल, थरखा (बाँस से बना हाथ से बजने वाला एक लोकवाद्य), गगणा से बिहु गाते और नाचते हैं। ये गीत मूलत: प्रणय के होते हैं। बैशागु के गीतों में प्रेम और यौवन की मनोरम छवि मिलती है। बोड़ो युवक-युवतियाँ बैशागु में अपने हृदय को उकेर देते हैं। एक उदाहरण देखिए -

'बैशागु ओइ बैशागु
बैशागु बैशागु
बौथौर जौगामा थांडलायबाय
बाथौर गौदाना फैलायबाय
बैशागु ओइ बैशागु
बाथौर गौदाननि बार मौननानै
दैमाँ-दैछा बिड़ाङ लाइफाङ दाओमा चाओछा
रडखाडबाय हनै
फैदौ दिनै फैदी बयबौ
बौराइ-बुरै छेंगरा-छिखला
गथॉ-गथाई रडजादिनि।'[6]

अर्थात, रंगाली बिहु, ओ रंगाली बिहु, पुराना साल चला गया, नया साल आया। नए साल में नाद-नदी,पेड़-पौधे,पशु-पक्षी सब आनंद में झूम उठते हैं। आओ, हम सब बूढ़ा-बूढ़ी,जवान-बूढ़े, लड़का-लड़की एक साथ बिहु का मजा लें।

देउरी जनजाति का वसंतोत्सव 'इबाकु बिचु' एवं लोकगीत :

देउरी लोगों के उत्सवों में से बिचु (बिहु) सबसे

महत्वपूर्ण त्योहार है। देउरी लोग वैशाख महीने के शुक्लपक्ष के पहले बुधवार को बिचु पूजा का आयोजन करते हैं। बिचु को देउरी लोग संपूर्ण नियम-नीति के साथ पालन करते हैं।

देउरी लोग इबाकु बिचु वैशाख महीने के प्रथम बुधवार और गुरुवार से आरंभ करते हुए सात दिन तक मनाते हैं। हफ्ते के बुधवार को देउरी लोग पवित्र तथा शुभदिन मानते हैं और उसी दिन से देवघर में बिचु पूजा से बिचु का शुभारंभ करते हैं। जैसा कि देउरी एक कृषि प्रधान जनजाति है, अत: वे लोग बिचु के पहले दिन कृषि कर्म के मुख्य आधार गाय-बैलों को देवता मानते हुए उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। हल्दी-उड़द से उन्हें नहलाया जाता है और शाम को गाय तथा बैलों को नए पगहों से बांधा जाता है।

देउरी लोगों में इबाकु बिचु के दिन बिचु पूजा करने का नियम है, जिसे वे लोग व्यक्तिगत रूप में अपने घर में और सामाजिक रूप में देवघर में करते हैं।

इबाकु बिचु के पहले दिन से ही देउरी युवक-युवतियाँ स्वतंत्र रूप से बिहु मनाते हैं। वे लोग गाँव के घर-घर जाकर बिहु नृत्य करते हैं। इस उत्सव में देउरी युवक-युवतियाँ 'बिचु' नृत्य करते हैं और गीत गाते हैं। इन गीतों को देउरी चाजक कहा जाता है। देउरी चाजक में युवक-युवतियों के प्रेम का मनोरम चित्रण मिलता है-

'चॉतय इयाव कुलिदुवा उमाग्त
बिचुना शुडरि कुइ
छाँ-को-कुरम्त: उग-दुकुनइ क्षीरम्त
ननाआ शुडरि कुइ।'[7]

अर्थात, चैत महीने की समाप्ति के साथ-साथ कोयल अपनी बोल से बिचु के आने की सूचना दे गयी। शाम ढलने के बाद जब सोने जाता हूँ, तुम्हारी बातें मन में लुका-छिपी खेलती हैं।

उनके द्वारा गाए गए बिहु गीत की कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं -

'मालती ए मले मलाइ
केटेकी ऐ बाँहे बलाइ
सेउती मालती तगर दुवामाली केटेकी ऐ।'[8]

अर्थात, मालती, केतेकी, सेउति, तगर, दुवामाली फूलों से सुगंधित है।

देउरी लोग जिस प्रकार इबाकु बिचु का प्रारंभ बिचु पूजा से करते हैं, ठीक उसी प्रकार उसका समापन भी देवघर में पूजा देकर करते हैं, जिसे बिचु उराबा कहते हैं। उसे गाँव के निचले भाग के किसी नदी में ले जाकर उसका समापन कार्य करते हैं। इस दिन गाँव के सभी जवान-बूढ़े, बहू-बेटियाँ इस बिहु उराबा में भाग लेते हैं और अंतिम बार के लिए बिहु नृत्य करते हुए बिहु को उड़ाते हैं अर्थात बिहु का अगले साल तक के लिए समापन करते हैं। यहाँ गाँव की 'देवध्वनि'(भगवान के शरीर पर आने का भाव कर नृत्य करने वाली महिला) भी भाग लेती हैं।

मिचिङ जनजाति का वसंतोत्सव 'आलि-आये-लृगाङ' एवं लोकगीत :

आलि-आये-लृगांग मिचिङ समाज के कृषि से संबंधित लोक उत्सव है। मिचिङ लोग यह उत्सव फाल्गुन महीने के प्रथम बुधवार को पालन करते हैं; क्योंकि वे लोग बुधवार को पवित्र दिन के रूप में मानते हैं। भूमि की उर्वरता की वृद्धि और इस जगत को फसल से हरियाली करने के उद्देश्य से आलि-आये-लृगाङ पालन किया जाता है। फाल्गुन में पृथ्वी को युवती के रूप में माना जाता है और वे बुधवार को पवित्र वार मानते हैं अथवा लक्ष्मी वार के रूप में मानते हैं। 'आलि-आये-लृगाङ' नाम में ही इस उत्सव का तात्पर्य छिपा है। 'आलि' का मतलब है-'आलू के जैसा पौधा, मिट्टी में ही होने वाला आलु व मूली'। 'आये' का मतलब है-पेड़ में होने वाले फल व बीज और 'लृगाङ' का मतलब है-फसल लगाने की शुरुआत करने का कार्य। अत: इस उत्सव को नए बीज लगाने के अनुष्ठान के रूप में मनाया जाता है। इस उत्सव के नृत्य को 'गुमराग नृत्य' कहा जाता है।

आलि-आये-लृगाङ में बृ:बृग नि:तम (मौसम का लोकगीत) गाने की प्रथा है। यह उत्सव गीत की अपेक्षा नृत्य प्रधान है। निम्नलिखित 'बृ:बृग नि:तम' में चित्रित मिचिङ जनजीवन की झाँकी देखी जा सकती है-

'य क:चे पा:म चुटका

अमुम् बुलुवा कःचे पाःम चुटका
य केकतेंङ बेरेङ चुटका
अमुम् बुलुवा बेबेङचुटका
य दुम्लाबौम लामम चुटका
य दौर्ऋपडक्रृर एलएलःजे।'[9]

अर्थात, हे युवतियो, सज-धजकर निकलो। पक्षी की तरह फुदक-फुदककर निकलो। लंबे बाल बांध लो। आओ, आनंद से हम आंगन को भर दें।

फाल्गुन का महीना वसंत के आने की सूचना देता है। पश्चिम से हवा बहती है। इसी महीने में आलि-आये-लृगाङ के आने से युवक-युवतियों का मन आनंद से भर जाता है। इसी भावना की अभिव्यक्ति इस 'बृःबृग निःतम' में हुई है-

'गनमू पःल आदाक्कुबङकाजे मिचिङा
ताकतग् औचार चारदाक्कुबङमिचिङा
दुःदांग आपपुन् पुन् पु नकुबङमिचिङा
चयउ पौत्तांग काबदुङकुबङमिचिङा
काजे काजे काजे काजे मिचिङा।'[10]

अर्थात, फाल्गुन का महीना आ चुका है। पश्चिम की हवा चलने लगी है, ऑर्किड फूलने लगे हैं, कोयल बोलने लगी है। मिचिङ लोगों, चलो आलि-आये बिहु नाचने चलें।

राभा जनजाति का वसंतोत्सव 'खोकचि' या 'बायखो' एवं लोकगीत :

बिहु की तरह ही कृषि के साथ जुड़े राभाओं का जातीय उत्सव है बायखो पूजा। कृषि कर्म के साथ-साथ यह उत्सव मनाया जाता है। समाज के बुजुर्ग बायखो पूजा में 'हयामारु' गीत गाते हैं। इस गीत में देवस्तुति तथा प्राचीन राभा वीरों की वीरता की सुंदर कहानी का चित्रण मिलता है। खोकचि या बायखो कृषि की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। इसे साल में एक बार आयोजित किया जाता है। पहले वैशाख और जेठ महीने में सात दिन सात रात तक यह पूजा आयोजित की जाती थी। आज-कल यह पूजा श्रावण और भादो महीने में आयोजित की जाती है। इस उत्सव में राभा युवक-युवतियाँ जी भरकर प्रेमगीत साथार गाते हैं। साथार गीत लोक कविता होते हैं। निम्नलिखित साथार में राभा युवती के प्रेमानुभूति की झलक मिलती है-

'युवतियों का दलः मय बबङ चाकायबे
चाक ररेङररेडरे चाक ररेङररेङ
चिंगि मुक बार बाकायबे साले (हरछै हरछै)।'[11]

अर्थात, हे बंधु,धान के उगने से पहले ही पत्ते सुंदर दिखने लगे। हमने जिसे पसंद किया है, उसका चेहरा भी सुंदर है... हाँ ...हाँ।

बायखौ उत्सव में बुजुर्ग भी गीत गाते हैं–

'फै फै हाचिछानि कुरि छाओरा टाडओ
कुरि छानि चिडबा टोबालाटि
कुरि आरे छाना लागिया
चिडबा टोखा गांडाछे पुइ खेरेछे
छाइ रेडया लागिया।'[12]

अर्थात, समाज के युवक–युवतियो ,आओ हम चकवा–चकवी की तरह हँसते हुए खाते चलें। आओ हम कौवे की तरह उड़ते हुए खाते चलें। शहर–नगर में मजे से खाते हुए चलें। आओ, आओ सब आओ।

तिवा जनजाति का वसंतोत्सव 'बिहु' या 'पिचु' एवं लोकगीत :

बिहु या पिचु तिवा लोगों का मुख्य कृषि उत्सव है। असमीया जाति की तरह तिवा लोग भी बिहु मनाते हैं। वे लोग बिहु को बिचु कहते हैं। पर तिवा लोगों के बिहु के नियम असमीया बिहु से भिन्न हैं। वे लोग बहाग बिहु और माघ बिहु सिर्फ बुधवार को ही मनाते हैं।

इन दोनों बिहुओं की संक्रांति अगर बुधवार को न हो तो वे उस दिन बिहु नहीं मनाते, बल्कि कुछ दिन बाद किसी बुधवार को ही मनाते हैं। बहाग बिहु में ये लोग अपने खेतों, करघों, रसोईघरों एवं नामघरों में दीपक जलाते हैं।

बुधवार को वे बहाख बिहु का मूल गरु बिहु मनाते हैं। कृषि के साधन एवं गाय–बैल की पूजा–सेवा से वैशाख बिहु शुरू होता है। लोग अपने–अपने गाय–बैलों को हल्दी–तेल आदि से नदी या पोखर में नहलाते हैं। इस समय लोग कद्दू, बैंगन आदि उन पर फेंककर उनकी श्रीवृद्धि के लिए यह गीत गाते हैं –

'अलाबु चाउ पाठाओ चाओ
पछरॉ पछरॉ बारे लिउ
मा चिपॉ फा चिपॉ
ना हंगदॉ पुलुदि माछु।'[13]

अर्थात, कद्दू–लौकी खा, बैंगन खा,साल–साल बढ़ता जा। माँ की तरह नाटा मत होना। बाप की तरह लंबे कद का होना।

कार्बि जनजाति का वसंतोत्सव 'दोमाही केकान' और 'देहाल' एवं लोकगीत :

असम की अन्य एक प्रमुख जनजाति है कार्बि। सोनापुर–क्षेत्री तथा मरीगाँव के मैदानी भाग के कार्बि लोग बहाग बिहु के समय उत्सव मानते हैं। कार्बियों में बिहु के समय 'दोमाही आलुन' (संक्रांति के गीत) गाने का रिवाज है। ये गीत असमीया के बहाग बिहु के गीतों की तरह होते हैं। वैशाख की संक्रांति के समय कार्बी युवक–युवतियाँ 'दोमाही केकान' (संक्रांति के नृत्य) करते हैं। तलवार–ढाल से युद्ध करते हुए दोमाही आलुन गाए जाते हैं। इन गीतों में कार्बि लोकजीवन की सहज छवि देखने को मिलती है–

'नेङकान आचेक दमाही
चिकान चिलुनब
आलाङआलाङवाङआप–आप–बि।'[14]

अर्थात, साल भर के बाद बिहु आया है। हम नाचने आए हैं। हमें अच्छी शराब देना।

देहाल या देवशाल कार्बि लोगों का एक प्रमुख उत्सव है। यह उत्सव फाल्गुन महीने के किसी भी सोमवार या मंगलवार को मनाया जाता है। इस उत्सव में एक हफ्ते तक पूजा की सामग्री का संग्रह करने का रिवाज है। सामग्री के संग्रह के बाद शनिवार को सामूहिक रूप से मछली पकड़ने का रिवाज है। देवध्वनि इस पूजा का अनिवार्य अंग है।

मंगलवार को पूजा का मूल कार्य संपादित होता है। फिर देवध्वनि के साथ युवक–युवतियाँ नृत्य करते हैं। यहाँ बलि–विधान की प्रथा है।

पातिराभा जनजाति का वसंतोत्सव 'लाङा पूजा' एवं लोकगीत :

दक्षिण कामरूप की पातिराभा जनजाति के लोग वैशाख महीने में लाङा पूजा मनाते हैं। लाङा पूजा के

बाद वे पहले बिहु से सातवें बिहु तक 'हानाघोंरा' नचाने का एक अनुष्ठान आयोजित करते हैं। वैशाख महीने से पहले बाँस से बने घोड़े की एक छोटी आकृति को कपड़े से लपेटकर उसे घर-घर नचाने ले जाया जाता है। इस आकृति को ही हानाघोंरा कहा जाता है। लोक विश्वास है कि पूजा के बाद हानाघोंरा में देव का वास होता है। यह विपत्ति भगाने का एक लोक प्रतीक है। हानाघोंरा को नचाते समय विविध गीत गाए जाते हैं। हानाघोंरा नचाने के अंतिम दिन में गाए जाने वाले गीतों में हर्ष एवं विषाद की भावना मिलती है-

'आजिर परा बतर याय
आजिर परा बतर याय
माही ऐ नाचोंग घूरि घूरि
माही ऐ बेला बहिल चाकत।'[15]

अर्थात, आज मौसम चला जाने वाला, हाँ, आज मौसम चला जाने वाला है। हम मस्ती में झूमेंगे, नाचेंगे। शाम ढलने वाली है।

कोच राभा जनजाति का वसंतोत्सव एवं लोकगीत:

नए साल के आगमन में ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट के कोच राभा अनेक प्रकार के लोक संगीत गाते हैं। निम्नलिखित गीत में वे नए साल में पुराने दर्द को भुलाने की कोशिश करते हैं-

'बाउचाउर पिदान सकफै जौ
शुन दोकान पुइजौ
नाइ लाउ-पाउ लाउ-गाउ नाओ
कउ साउन दिक सकफैजौ...'16

अर्थात, सुख से भरा नया साल आ गया है। मन चंचल हो रही है। आओ खुशी की लहर में समा जाएँ। अतीत की पीड़ा चुभ रही है।

असम अनेकानेक जाति-जनजातियों की मिलन-भूमि है। ये जाति और जनजातियाँ अपने रीति-रिवाज के साथ वसंतोत्सव मनाती हैं। वसंतोत्सव मनाने की पद्धति में कमोबेश अंतर हो सकता है, पर सबका मूल स्वर एक है-प्रकृति की अर्चना एवं आनंदोत्सव। ❑

टिप्पणी : असमीया और हिंदी भाषा के वर्णों में पर्याप्त समता है। अत: असमीया संज्ञा शब्दों का लिप्यांतरण किया गया है। असमीया भाषा के 'च' और 'छ' - स्वतंत्र रूप से आने से इन वर्णों का उच्चारण 'स' होता है; संयुडक्त अवस्था में 'च', 'छ' और 'स'-तीनों 'च' की तरह उच्चरित होते हैं। असमीया भाषा में 'स' का उच्चारण कोमल 'ह' या कोमल 'ख' की तरह होता है। हिंदी भाषा के 'य' वर्ण के लिए असमीया भाषा में दो वर्ण चलते हैं-एक का उच्चारण 'य' ही है और दूसरे का उच्चारण 'ज' होता है। असमीया 'य' के लिए हिंदी में भी 'य' रखा गया है। असमीया के 'य' वर्ण के 'ज' वाले उच्चारण के लिए लिप्यांतरण में 'य' रखा गया है।

संदर्भ-सूची :

1. असमर उत्सव-पार्वण बुटलि- अंशुमन दास, पृष्ठ संख्या- 4
2. वही, पृष्ठ संख्या-3
3. बिहुनामर बर्णाली, पृष्ठ संख्या-48
4. बड़ो संस्कृतित दृष्टिपात- सूर्य मजुमदार, पृष्ठ संख्या-37
5. वही, पृष्ठ संख्या-37
6. बसुमतारी, रत्नेश्वर, बड़ो जनजाति : समीक्षात्मक अध्ययन, संपा. मलिना देवी राभा, पृष्ठ संख्या-215
7. केतेकी फुलर घर- कैलेश भट्टाचार्य, पृष्ठ संख्या-24
8. देउरी भाषा साहित्य समाज, षड़ानन देउरी, पृष्ठ संख्या- 100
9. केतेकी फुलर घर- कैलेश भट्टाचार्य, पृष्ठ संख्या- 16
10. वही, पृष्ठ संख्या- 16-17
11. वही, पृष्ठ संख्या- 19

12. वही, पृष्ठ संख्या- 19
13. असमर उत्सव-पार्वण बुतलि- अंशुमन दास, पृष्ठ संख्या- 22
14. केतेकी फुलर घर- कैलेश भट्टाचार्य, पृष्ठ संख्या- 17
15. वही, पृष्ठ संख्या-20-21
16. वही, पृष्ठ संख्या-22

ग्रंथ-सूची :

दास, अंशुमन. असमर उत्सव-पार्वण बुतलि. द्वितीय. नगांव : जागरण साहित्य प्रकाशन, 2012

दास, अंशुमान, सम्पा. असमर जनगोष्ठीय उत्सव पार्वण, पानबाजार : आँक-बाँक प्रकाशन, 2013

दास, नारायण, राजबंशी, डॉ. परमानंद, सम्पा, असमर संस्कृति कोष, पान बाजार : ज्योति प्रकाशन, 2014

दास,लोंगकाम टेरण और करेन.(संकलक).कारबि कृष्टिर उत्स. प्रथम. गोवालपारा : रत्नपीठ प्रकाशन, 1998

दास, शैलने. संपा. हिंदी भाषा और संस्कृति. प्रथम. गुवाहाटी : असमी प्रिंटर्स, 1993

दास, सूर्य, संपा. बिहुनामर बर्णाली. प्रथम. गुवाहाटी : असम बुक ट्रस्ट, 2017

देउरी, पदेधर. देउरी संस्कृति इतिहास, प्रथम. धेमाजी : किरण प्रकाशन, 2011

देउरी, षड़ानन. देउरी भाषा साहित्य समाज, प्रथम. गुवाहाटी : बीणा लाइब्रेरी, 2007

पाटर, पदस. संपा. जनजाति समाज संस्कृति. तृतीय. गुवाहाटी : भवानी ऑफसेट प्राइवेट लिमिटेड, 2013

बरदलै, ज्योतिर्मय. असमर जनजाति आरु संस्कृति. संपा. परमानंद राजवंशी. द्वितीय . गुवाहाटी : असम साहित्य सभा, 2016

बरदलै, बी.एन. संपा. द डिमासा कछारिज्स ऑफ आसाम. द्वितीय . गुवाहाटी : ट्राइबल रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1984

बरुवा, शांतनु कौशिक, संक्षिप्त असमीया विश्वकोष, द्वितीय खंड, पानबाजार : ज्योति प्रकाशन, 2009

बरुवा, सुरेन्द्र.कारबि लोक समाज-साहित्य संस्कृतित एभूमुकि. प्रथम. गुवाहाटी : बह्मीमान प्रिंटर्स, 1998

भट्टाचार्य, कैलेश.केतेकी फुलर घर. गुवाहाटी : पांचजन्य प्रिंटिंग एंड पब्लिशिंग, 2017

भट्टाचार्य, प्रमोदचन्द्र. असमर जनजाति. द्वितीय. गुवाहाटी : विचित्रनारायन प्रिंटिंग प्रेस, 1991

भट्टाचार्य, प्रमोदचन्द्र, संपा. असमर जनजाति.तृतीय.धेमाजी : किरण प्रकाशन, 2008

भृगुमनि, सम्पा. मिचिङसंस्कृतिर आलेख्य, गुवाहाटी : लयार्स बुक स्टॉल, 1989

मजुमदार, सूर्य कुमार.बड़ो संस्कृतित दृष्टिपात. प्रथम.गुवाहाटी : जे.आई.पि. प्रिंट एसोसिएट्स, 2002

राजवंशी, परमानंद, सम्पा. असमर संस्कृति-कोष, द्वितीय. गुवाहाटी : ज्योति प्रकाशन, 2014

राभा, मलिना देवी, मुख्य संपा. असमर जनजाति आरु संस्कृति. द्वितीय. जोरहाट : असम साहित्य सभा, 2016

शर्मा, शशी. असमर लोकसाहित्य. प्रथम. कलकत्ता : नव गौरांग प्रेस, 1993

हाकाचाङ; उपेन राभा. राभा लोक-संस्कृति.द्वितीय. गुवाहाटी : असम प्रकाशन परिषद, 2016

आलेख :

बसुमतारी, रत्नेश्वर.बड़ो जनजाति : समीक्षात्मक अध्ययन.संपा.मलिना देवी राभा. द्वितीय. जोरहाट-असम साहित्य सभा, 2016

हंसादीप की कहानियों में व्यक्त संवेदनाएँ

डॉ. ई. विजय लक्ष्मी

उरिपोक, निडथौखोडजम लैकाइ
इंफाल-795001, मणिपुर-795001
मो : 7085057819
ई-मेल : vningthoukhongjam@gmail.com

हिंदी साहित्य निधि को समृद्ध करने में हिंदी के रचनाकार चाहे वह भारत देश में रह रहा हो या किसी विदेश में, सबकी भूमिका महत्वपूर्ण है। सबके प्रयासों से ही हिंदी साहित्य सागर का विस्तार हो रहा है। आज प्रवासी साहित्य पर अलग से विमर्श की आवश्यकता बताई जा रही है। विभिन्न देशों में रचे जा रहे हिंदी साहित्य से न केवल वहाँ की सामाजिक - सांस्कृतिक परिदृश्य को देखा जा सकता है, बल्कि मानवीय संवेदना को भी समझा जा सकता है, जो विश्व-मानवता को दृढ़ करने में सहायक है। हंसादीप की कहानियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं कि इनकी कहानियाँ समय और उसकी प्रवृत्तियों को समेटे गतिशील होती हैं। इनकी कहानियाँ भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों को तो उभारती ही हैं, अपने जातिगत संस्कारों के साथ-साथ व्यक्ति की वैचारिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियों से भी अवगत कराती हैं। कहानियों में संवेदना के स्तर पर अभिन्नता के चित्रण से पाठक-वर्ग के साथ तारतम्य स्थापित करने में भी सक्षम हैं। इनकी कहानियों में अपने देश के प्रति लगाव और सामाजिक सरोकार स्पष्ट दिखाई देता है। प्रवासी जीवन से जुड़े अनुभव, दिन प्रति दिन घटने वाली घटनाओं से कहानियों का ताना-बाना बुना गया है। पात्र प्रवासी भी हैं और विदेशी भी। उनका आंतरिक जगत, व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ परंपरागत और आधुनिक विचारों का संघर्ष जैसी प्रासंगिक विषय-वस्तु से कहानी रूपाकार ग्रहण करती हैं, साथ ही समाज विशेष की जानकारी भी देती हैं। उनका कहानी संग्रह 'अधजले ठुड्डे' में व्यक्ति अनुभवगत तथा विषयगत वैविध्य बरबस ही ध्यान आकर्षित करता है।

इसी संग्रह की 'अधजले ठुड्डे' शीर्षक कहानी एक ऐसी प्रवासी स्त्री की है, जो अकेली रहती है और अपने छोटे-बड़े अनेक तरह के कामों के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसे ही घर की साफ-सफाई के लिए लीवी नामक एक निग्रो को घर पर बुलाती है। देखने में हब्शी अक्सर डरावने ही होते हैं। लीवी भी अपवाद नहीं है। रंग गहरा होने के साथ-साथ ऊँचा कद काठी देख कोई भी भयभीत हो सकता है। वह स्त्री भी डरती है। अविश्वास और

असुरक्षा महसूस करती है। लीवी की हरकतों को जानने-समझने की कोशिश करती है। रंग आदि आवश्यक सामग्री खरीदने के लिए पैसे दे तो देती है, पर उसे बार-बार लगता रहता है कि पैसा लेकर अब वह वापस नहीं आएगा, पर उसकी शंकाओं को निराधार साबित करता हुआ लीवी उपस्थित हो जाता है। लीवी जिसका व्यक्तित्व 'कुशल कारीगर के तेवर, बेईमानी की मिठास नहीं, ईमानदारी की तल्ख ' से बना है, उसकी प्रतिक्रिया देख उसके मनोभावों को समझते हुए लीवी उसे आश्वस्त करने की कोशिश करता है। अपने कामों से अपने को अन्य से श्रेष्ठ साबित करने में भी सक्षम हो जाता है। इस बीच उस स्त्री की जो मनोदशा होती है उसे रचनाकार ने बहुत बारीकी के साथ यथार्थ ढंग से व्यक्त किया है, चाहे वह अपने और लीवी के गहरे रंग को लेकर आत्ममंथन की स्थिति हो या चाहे लीवी के प्रति अविश्वास की उधेड़बुन, स्त्री मनोविज्ञान और उससे प्रभावित क्रिया-प्रतिक्रिया सब बखूबी दिखाया गया है।

दूसरी कहानी 'एक बटे तीन' एक प्रवासी की अपनी जमीन से सदा के लिए अलग हो जाने यानी वसीयत में हिस्सा न मिलने की पीड़ा व्यक्त करती है। घर में सबसे बड़ा, सबसे लायक और सबसे लाड़ला होकर भी अपनी पुश्तैनी जमीन में हिस्सा न मिलने की पीड़ा पर केंद्रित है यह कहानी। हालाँकि वह स्वयं भी अपने हिस्से की संपत्ति न लेकर बाँट देने की योजना बनाता है, पर उसी संपत्ति को उसके तीन छोटे भाई आपस में बाँट लेते हैं और उसे बिना किसी सूचना के हिस्सा ही नहीं दिया जाता तो यह उसके लिए अत्यंत ही पीड़ादायक हो जाता है। इस कहानी में विदेश में बस जाने वाले उन लोगों के प्रति आम भारतीय लोगों की धारणा और उनके प्रति रवैये को भी स्पष्ट किया गया है। इसके साथ ही अपनी जमीन और जड़ों से कटकर जो विदेश में जाकर बस जाते हैं, उनकी जीवन शैली क्यों और कैसे भिन्न हो जाती है- इसे भी रचनाकार ने दिखाया है। विदेश में बस गए अपने बेटे की वापसी पर माँ की मनोदशा और अन्य बेटों की सोच को भी दर्शाया गया है। आम भारतीय का यह विश्वास होता है कि विदेश में बसने वाला उसका रिश्तेदार आर्थिक दृष्टि से मजबूत है। साथ ही विदेश में बस जाने के बाद उनकी जीवन शैली इतनी बदल जाती है, इसलिए कोई अपने देश भारत लौटने की नहीं सोचता। अक्सर ऐसा होता भी है, विदेश में रहने के बाद कदाचित ही लोग वापस अपने देश लौटने का सोचते हैं। यही इस कहानी का केंद्रीय विषय है।

'काठ की हांडी' कहानी वर्तमान में कोरोना के कहर और उससे जूझते जीवन की कथा है। पूरा विश्व कोरोना महामारी से पीड़ित है, ऐसे में सबसे ज्यादा अधिक आयु वर्ग के लोग प्रभावित हुए हैं। कहानी में दिखाया गया है कि ऐसे दो बुजुर्ग स्टीव और रोजा एलेक्जेंडर नर्सिंग होम में मिलते हैं और आपस में सुख-दुःख बाँटा करते हैं। ये बुजुर्ग अब अपने परिवार और बच्चों की प्रतीक्षा नहीं करते बल्कि इन्होंने अपने जीवन का आसरा खोज लिया है। कहानी एक बहुत बड़ा और ज्वलंत सवाल यह भी उठाती है कि जिस घर में सबसे महत्वपूर्ण स्थान हुआ करता था, वे जब उम्रदराज हो जाते हैं तो उसी घर में उनके लिए जगह की कमी कैसे हो जाती है? उन्हें अपने ही घर पर जगह क्यों नहीं मिलती? उन्हें बोझ समझ किसी होम में उनके हाल पर क्यों छोड़ देते हैं? स्टीव और रोजा भी उन्हीं में से एक हैं, पर ये दोनों आपस में एक-दूसरे का सहारा बन कुछ पल हँस-बोलकर जीने का रास्ता खोज लेते हैं। स्टीव की एलेग्जेंडर नर्सिंग होम में रह रहे अन्य साथियों के साथ कोरोना के चपेट में आकर मौत हो जाती है, तो 'रोजा के लिए यह सिर्फ एकाकीपन ही नहीं था, बहुत कुछ था जो तकलीफ दे रहा था।' स्वाभाविक है स्टीव ही था, जिसके सहारे वह जिंदगी के शेष पल सकून से गुजार रही थी। कोरोना के प्रहार से रोजा भी नहीं बच पाती और अंततः संक्रमित होकर अस्पताल पहुँचती है और वहाँ भी मरीजों की संख्या अधिक होने से मुश्किल से ही बिस्तर मिल पाता है। इलाज की सुविधाएँ सबको नहीं मिल पातीं। वेंटिलेटर की अनुपलब्धता इलाज में एक बड़ी चुनौती बन जाती है। रोजा को भी इसका सामना करना पड़ता है। एक और युवक डिरांग की बदतर होती हालत भी डॉक्टरों के लिए परेशानी का सबब बन जाता है। रोजा डिरांग को बचाने का निर्णय करती है और खुद वेंटिलेटर छोड़ देती है। जिंदगी जो दुबारा नहीं मिल सकती, उसे

अन्य के लिए त्यागने का निर्णय करती है। यह कहानी उस घटना की याद दिलाती है, जब कोरोना से पीड़ित एक बुजुर्ग ने एक युवा के लिए यह कहकर अपना बिस्तर छोड़ दिया था कि मैंने अपनी जिंदगी जी ली, परिवार के लिए उस आदमी का जीवित रहना ज्यादा जरूरी है। अंतर इतना है कि यह घटना भारत में घटी थी और कहानी में परिवेश विदेशी है, लेकिन संवेदना के स्तर पर कोई अंतर नहीं है।

'अम्मी और मम्मी' कहानी में दो मासूम लड़कियों के माध्यम से भारत और पाकिस्तान के चिर स्थायी वैमनस्य को और उसकी निर्रथकता को दिखाया गया है। सांप्रदायिक भावना के शिकार इस शत्रुता को भुला नहीं पाते, पर विदेश में बाहर से आने वाले सभी विदेशी ही हैं। भारत से या पाकिस्तान से कोई मायने नहीं रखता। इसलिए उन दोनों लड़कियों में भी स्वत: दोस्ती हो जाती है। वास्तव में दोनों ही एक जैसी समस्या- उस परिवेश में सामंजस्य की समस्या- से जूझ रही होती हैं। अपने समाज से बहुत भिन्न स्थिति होने के कारण दोनों सामान्य नहीं हो पातीं। न भाषा में और न खानपान में। ऐसे में दोनों की मानसिकता पलायन की हो जाती है। दोनों केवल एक-दूसरे के साथ ही सहज हो पाती हैं। यह स्थिति किसी के भी साथ हो सकती है। गोली चलने की घटना के परिणामस्वरूप सांप्रदायिकता के कलुष पर मानवता, सदाशयता और प्रेम की जीत होती है।

'घुसपैठ' के पात्र विदेशी हैं, पर यह किसी भी घर की कहानी हो सकती है, जहाँ एक ही छत के नीचे रह रहे लोग एक-दूसरे के लिए इज्जत और मान-सम्मान का भाव नहीं रखते। ऐसे घर का टूटना निश्चित है। रेने और रुबिन की शादी के बाद रेने की माँ मार्शलीन भी उन लोगों के साथ रहने लगती है। आज के उत्तराधुनिक युग में व्यक्ति संवेदनाहीन, आत्मकेंद्रित और असहिष्णु होता जा रहा है। ऐसे में संबंधों में टकराव और बिखराव सामान्य होता जा रहा है। यही मार्शलीन, रेने और रुबिन के घर की भी हालत होती है। आर्थिक रूप से कोई समस्या यहाँ नहीं है, क्योंकि तीनों ही कमाते हैं, पर इतनी कमाई के बावजूद परिवार सुखी नहीं है। सुख मानसिक स्थिति है, उसे रुपए-पैसों से नहीं खरीदा जा सकता। इस घर की स्थिति यह है कि 'राई जैसी छोटी-छोटी बातें देखते ही देखते पहाड़ में बदल जातीं और उससे टकराता रहता तीनों का अहं।' यह सही है कि आज स्त्रियों की पुरुष पर निर्भरता खत्म ही नहीं हो रही बल्कि कई मायनों में पुरुषों से आगे भी निकल रही हैं। स्त्रियाँ स्वावलंबी हो रही हैं, पर कहीं-कहीं वह असहिष्णु भी होती जा रही हैं। घर को घर बनाए रखने के लिए स्त्री-पुरुष दोनों को ही अपनी-अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए आपसी प्रेम, विश्वास और सामंजस्य से काम करना होगा अन्यथा घुसपैठ की इस कहानी की तरह घर का बिखरना निश्चित है।

'भर दोपहर' कहानी में भी पति-पत्नी के बीच स्थित विश्वास की नाजुक डोर को टूटते-बिखरते देखा जा सकता है। अक्सर स्त्रियों की पहचान पुरुष के माध्यम से होती है, पर जब कोई स्त्री समाज में अपना एक मुकाम हासिल कर लेती है तो उसके माध्यम से पुरुष को पहचाना जाने लगता है। सपना स्वामी के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है। उसके माध्यम से पति का परिचय होता देख वह प्रफुल्लित होती है और इसे परंपरा पर स्त्री की जीत की तरह महसूस करती है, पर वहीं

जब पति अश्लील कारोबार के चलते पकड़ा जाता है, तब भी सपना स्वामी का पति ही कहा जाता है। सब उसे ही दोष देने लगते हैं कि पति के काम को वह कैसे न देख पाई। दूसरी तरफ प्रेम और विश्वास का डोर टूटता है, वहीं समाज में उसकी पहचान मटियामेट हो जाती है। यह कहानी हिंदी सिनेमा की अभिनेत्री शिल्पा शेट्टी की याद दिलाती है। शिल्पा शेट्टी के पति राज कुंदरा के अश्लील वीडियो के सिलसिले में हुई गिरफ्तारी के बाद शिल्पा ने जो अनुभव किया होगा, उसी का चित्रण सपना स्वामी के माध्यम से किया गया लगता है।

'लाइलाज' कहानी भारतीय चिकित्सा पद्धति पर सवाल उठाने वाली कहानी है। दिल्ली का रहने वाला एक भारतीय दंपति अपनी बच्ची मिनी के इलाज के लिए कनाडा पहुँचता है। मिनी को डेयरी प्रोडक्ट से एलर्जी होती है। इस बात की जानकारी के अभाव में माता-पिता अपनी बेटी के इलाज के लिए जगह-जगह घूमते हैं। इस बीच परेशान माता-पिता चिंता में घुले रहते हैं। तमाम टेस्ट करवाने के बाद अंतत: कनाडा का एक डॉक्टर अपने तरीके से जल्द ही बच्ची को ठीक कर देता है।

'मैटरनिटी लीव करियर ऑरियंटेड' शीजू नामक एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो कॉर्पोरेट वर्ल्ड में सफलतापूर्वक अपना स्थान बना चुकी है। गर्भ के दैरान और प्रसव से पहले तक पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ अपनी जिम्मेदारी निभाती है। काम के प्रति इतना ज्यादा गंभीर है कि प्रसव के लिए अस्पताल जाने से पूर्व सारा काम निबटाती है। समस्या तब शुरू होती है, जब इतने व्यस्त रहने की आदी स्त्री को अपनी बच्ची की देखभाल करने के लिए पूरा-पूरा दिन लगना पड़ता है। शुरुआत में बच्चे की देखरेख पूरे मन से करती है, पर एक जैसी दिनचर्या की धुरी में घूम-घूमकर जल्दी ही उसे ऊब होने लगती है। परिणामस्वरूप वह चिड़चिड़ी हो जाती है। इधर बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, उसकी माँगें भी बढ़ने लगती हैं। दूसरी तरफ शिजू घर के कामों से इस कदर ऊब महसूस करने लगती है कि मैटरनिटी की छुट्टियाँ तक अखरने लगती हैं। स्थिति समझकर पति कीथ हवाई आइलैंड घूम आने की योजना बना डालता है। पासपोर्ट के लिए आवेदन करने के लिए अपने पति का हस्ताक्षर कर देती है, जो कानून की दृष्टि में अपराध है। बड़े-बड़े निर्णय लेने वाली शीजू, अपना काम सावधानी से निबटाने वाली शिजू लंबी छुट्टी से ऐसे ऊब जाती है कि लापरवाही के साथ पति का हस्ताक्षर कर देती है, जिसका परिणाम उसे भुगतना पड़ता है। पढ़े-लिखे समझदार लोग भी असावधानी के चलते ऐसी गलती कर बैठते हैं कि जीवन भर पछताने के सिवाय कुछ नहीं कर पाते। यही शीजू के माध्यम से बताया गया है।

लेखिका ने इस संग्रह में अपने प्रवास के अनुभवों को रूपाकार देकर उस भू-भाग से जुड़े लोगों की स्थिति, उनकी संस्कृति, संस्कार और संघर्षशील जीवन के आधार पर कहानियों का ताना-बाना बुना है। इस संग्रह में संकलित कहानियों में प्रवासियों के मनोविज्ञान, उनके सुख-दु:ख की संवेदनाओं और अपने देश के संस्कारों से जुड़ाव की ललक दिखाई देती है। उसके साथ उसमें व्याप्त विषमताओं को भी व्यक्त किया गया है। ऐसा लगता है जैसे कहीं-कहीं लेखिका ने स्वयं अपने अनुभव लिख दिए हों। हालाँकि यह सच है कि रचनाकार अपनी रचना के लिए खाद-पानी समाज से ही ग्रहण करता है। उसे कल्पना के रंगों से सजा-सँवारकर समाज को ही वापस कर देता है, पर अगर उसमें अनुभूति की सच्चाई नहीं होती या फिर पाठकों को इसका अहसास नहीं हो पाता तो रचना बेमानी लगने लगती है।

'बैटरी' कहानी इंसान को इंसानियत पर भरोसा दिलाने वाली है। इसमें सोफी नाम की एक ऐसी स्त्री का चित्रण है, जो बर्फीली तूफानी रात में टोरंटो से न्यूयार्क तक अपनी कार से जाने का निश्चय करती है, पर उसका निर्णय गलत होने का अहसास उसे तब होने लगता है, जब तूफान जोर पकड़ने लगता है और उसकी गाड़ी रुक जाती है, पर मानवता और ईश्वर के अस्तित्व को दृढ़ करता हुआ देवदूत समान एक आदमी उसे उस विपत्ति से बचा लेता है। संकट की उस घड़ी में एक स्त्री की जैसी मनोदशा हो सकती है, उसे लेखिका ने बहुत बारीकी से व्यक्त किया है। इसमें दिखाया गया है कि स्त्री चाहे वह भारत की हो या विदेश की, स्त्री होने के अहसास के चलते और भावी संकट की आशंका से मदद माँगने की जगह मृत्यु को वरण करने के लिए तैयार हो जाती है। आज व्यक्ति का किसी पर भरोसा करना मुश्किल हो गया है, पर हमारे साथ ऐसी घटनाएँ भी घट जाती हैं, जो विश्वास के परे होती हैं। सोफी के साथ भी ऐसा ही कुछ होता है।

'पहाड़ के नीचे पहाड़' गेरुवा वस्त्र धारणकर संन्यासी बने भोगी योगियों का सच उद्घाटित करने वाली कहानी है। लाडो जैसी स्त्री, जो बचपन से अपने मन का ही करती आई, वह भी मान-सम्मान और इज्जत का ध्यान कर सारी बातें मन में ही दबा लेती है और चाहकर भी उसकी भनक तक बाहर नहीं लगने देती है। 'उसी आवेश में जवाब तो देना चाहती थी, मगर खरी-खरी सुनाती भी किसे? वहाँ तो बहरों और गूँगों की कतार थी।' यही सोचकर आश्रम की सच्चाई चाहे वह त्यागी से संबंधित हो चाहे मिश्रा से दफन ही रह जाती है। अपनी अभिव्यक्ति का कोई वांछित परिणाम न मिलने की स्थिति का भान होने से ही लाडो बिना कुछ कहे मौन रहना बेहतर समझती है।

कोरिया से आई इवा और युगांडा से आया बाब के बीच पनपने वाली सहज दोस्ती को व्यडक्त करती है, 'कॉफी में क्रीम'। सांकेतिक रूप से यह शीर्षक दोनों के भिन्न रूप-रंग को भी दर्शाता है। दोनों प्रवासी भिन्न-भिन्न देशों से आकर मिलते हैं और दोनों में गहरी दोस्ती भी हो जाती है। व्यक्ति जीवन अनिश्चिताओं से भरा हुआ है और जीवन में कहीं भी किसी भी मोड़ पर अनहोनी हो सकती है। यही इस कहानी में दिखाया गया है।

'स्ट्राइक' बाल मनोविज्ञान को व्यक्त करने वाली कहानी है। बच्चे वही सीखते हैं, उसी का अनुकरण करते हैं, जो उनके सामने होता है, जो बड़े उन्हें बताते हैं और सिखाते हैं। बच्चों में सीखने की क्षमता बहुत होती है, इसलिए बच्चों को हमेशा नादान समझने की गलती नहीं करनी चाहिए। इस कहानी में भी माता-पिता को बच्चों की अनेक माँगे पूरी कर समझौता करना पड़ जाता है।

'शून्य के भीतर' कहानी में एक ऐसी स्त्री की व्यथा चित्रित है, जिसने अपनी जिम्मेदारी समझकर जीवन भर परिवार- माता-पिता और भाई-बहिनों की जरूरतें पूरी कीं, पर जब उसे किसी आसरे की जरूरत महसूस हुई तो उसका सुख-दुःख बाँटने वाला कोई नहीं होता। माता-पिता की मृत्यु के बाद भाई-बहिनों का घर बसाया, इनकी हर जरूरत बिना माँगे पूरी करती रही। सारी जिम्मेदारी अपने कंधों पर ढोती रही, वही अंत में अकेली ही रह गई। ऐसे में बेजुबान पशु-पक्षी के माध्यम से अपने अकेलेपन को दूर करने का प्रयास करती है। अपनी सारी संपत्ति पशु-पक्षियों के आश्रय के लिए छोड़ जाती है। अकेलेपन की इस कहानी में उन माता-पिता का चित्र भी है, जो अपनी कमाऊ बेटी की जिम्मेदारी से निष्क्रिय ही नहीं होते, बल्कि उस पर परिवार की जिम्मेदारी डालने से भी नहीं हिचकिचाते। साथ ही उन छोटे भाई-बहिनों की कृतघ्नता को भी व्यक्त किया गया है, जो बड़ों के दायित्वों को तो समझते हैं, पर उनके प्रति अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं मानते।

भारतीय मूल के अंग्रेज शान रावल के माध्यम से लेखिका ने हिंदी भाषा और उससे जुड़े लोगों का अंग्रेजी के सामने अपने को हीन समझने की ग्रंथि को व्यक्त किया है। अंग्रेजी भाषा को लेकर भारत में हिंदी बोलने वालों में जो मानसिक गुलामी देखने को मिलती है, उसकी अभिव्यक्ति 'उल्कापिंड' कहानी में हुई है। इसके साथ स्वच्छंद स्वभाव शान रावल को जो अपमान

का घूँट पीना पड़ा, उसका कारण भी उसके आधुनिकतापूर्ण रवैये को बताया गया है।

व्यक्ति चाहे वह उम्र के किसी भी अवस्था में क्यों न हो, उसके अंदर एक बच्चा हमेशा जीवित रहता है। अनेक बार व्यक्ति समय द्वारा पहनाए गए आवरण को उतार फेंकना चाहता है। संयम और लिहाज की बंदिशें तोड़ डालना चाहता है। इसलिए जब कभी बचपन के दोस्त मिलते हैं तो हम उस समय में लौट जाते है, जब बेफिक्र होकर खेला-कूदा करते थे। बड़े होने के बाद वे पल केवल यादों में कैद होकर रह जाते हैं। ऐसे में मन की गहराई में बसा वह बच्चा अनेक बार बाहर आने को आतुर हो उठता है। 'दो अलहदा छोर' कहानी में उसी आतुर मन की अभिव्यक्ति हुई है।

'कूच' कहानी में एक व्यक्ति की बेबसी को दिखाया है, जो अपने बेटे के प्रमोशन पर अपनी जमीन जायदाद बेचकर विदेश चला तो जाता है, पर विदेश जाकर उसे अकेलेपन के अलावा कुछ भी नहीं मिलता। अपने अतीत को, अपने सगे संबंधियों को केवल याद करके रह जाता है। बीमारी की अवस्था में स्मृति के अलावा उसके पास कुछ भी नहीं होता और अंतत: अस्पताल में पड़ा-पड़ा मर जाता है। अपनी जड़ों से उखड़ने के बाद जैसे कोई पौधा मुरझा जाता है और नई जगह के खाद-पानी के साथ सामंजस्य स्थापित कर फलने-फूलने में समय लगता है, वैसे ही इंसान के साथ भी होता है। अपनी जगह, अपना देश, अपनी भाषा-संस्कृति, अपने समाज के साथ व्यक्ति सहज रहता है।

आज आधुनिक तथा उत्तराधुनिक युग में अस्तित्व का सवाल व्यक्ति को परेशान करता है। किसी तरह का कोई बंधन व्यक्ति को स्वीकार्य नहीं है। समय के बदलने के साथ-साथ परंपराएँ, मान्यताएँ और सोच में भी बदलाव आना स्वाभाविक है, पर ये बदलाव विभिन्न पीढ़ियों के बीच खाई न बना दे, इस चिंता को व्यक्त करने वाली कहानी है- 'दो पटरियों के बीच'। पीढ़ी अंतराल आज की एक ज्वलंत समस्या है। हर माता-पिता की यही शिकायत रहती है कि बच्चे उनका कहना नहीं मानते। बच्चे अपने बड़ो का आदर नहीं करते आदि-आदि। आज की पीढ़ी को आदर्श, मूल्य या अनुशासन जैसे शब्द परेशान क्यों नहीं करते। या फिर उनकी परवरिश में ही कोई कमी रह गई है, यह सोचने का विषय है। इस कहानी में दो भिन्न व्यक्तित्व , भिन्न विचारधारा तथा भिन्न जीवन आदर्शों में टकराहट के माध्यम से पीढ़ी अंतराल की इस समस्या को उद्घाटित किया गया है।

लेखिका ने इस संग्रह में अपने प्रवास के अनुभवों को रूपाकार देकर उस भू-भाग से जुड़े लोगों की स्थिति, उनकी संस्कृति, संस्कार और संघर्षशील जीवन के आधार पर कहानियों का ताना-बाना बुना है। इस संग्रह में संकलित कहानियों में प्रवासियों के मनोविज्ञान, उनके सुख-दु:ख की संवेदनाओं और अपने देश के संस्कारों से जुड़ाव की ललक दिखाई देती है उसके साथ उसमें व्याप्त विषमताओं को भी व्यडक्त किया गया है।

ऐसा लगता है जैसे कहीं-कहीं लेखिका ने स्वयं अपने अनुभव लिख दिए हों। हालाँकि यह सच है कि रचनाकार अपनी रचना के लिए खाद-पानी समाज से ही ग्रहण करता है। उसे कल्पना के रंगों से सजा-सँवारकर समाज को ही वापस कर देता है, पर अगर उसमें अनुभूति की सच्चाई नहीं होती या फिर पाठकों को इसका अहसास नहीं हो पाता तो रचना बेमानी लगने लगती है। हंसादीप की कहानियों के साथ ऐसा नहीं है, बल्कि इन कहानियों को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे वह अपना अनुभव हमसे साझा कर रही हों और यही रचनाकार की सफलता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय 2009
2. अस्तित्ववाद से गाँदीवाद तक : मस्तराम कपूर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,1995, ISSN : 81-7055-400-4
3. आधुनिकतावाद : दुर्गा प्रसाद गुप्ता, आकाशदीप पूलिकेशंस, नई दिल्ली-1998
4. आधुनिकतावाद और साहित्य- दुर्गा प्रसाद गुप्त,सामयिक बुक्स, नई दिल्ल-2011 ISSN: 978-93-80458-20-5
5. हिन्दी साहित्य का विवचनपरक इतिहास- मोहन अवस्थी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-2008, ISSN:978-81-8143-727-3
6. अधजले ठुड्डे-हंसादीप

कबीर पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

डॉ. रवि कुमार गोंड़

पोस्ट डॉक्टोरल फैलो (ICSSR)
हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश
केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
टैब शाहपुर, छतरी, जिला :
कांगड़ा (हि.प्र.) 176206
मो : 7807111737
ई-मेल : ravigoan86@gmail.com

सारांश :

कबीर का जीवन दर्शन भारतीय संस्कृति पर आधारित है। समाज में फैली बुराइयों के खिलाफ लड़ने वाले वह पहले ऐसे क्रांतिकारी कवि थे, जिन्होंने समाज को डाँटा-फटकारा और कड़वे व्यंग्य बोले। उसके बावजूद लोगों ने उन्हें मान-सम्मान दिया। कबीर के बीजक में इतना अधिक गुरुत्वाकर्षण है कि उसका रसपान करने के बाद व्यक्ति के अंदर ऐसा उथल-पुथल मच जाती है कि वह किंकर्तव्यविमूढ़ से परे होकर जग की रीति, नीति और प्रीति का सही मूल्यांकन करना सीख जाता है। इतना ही नहीं, उसकी हठ्बुद्धि सद्बुद्धि में परिवर्तित हो जाती है। उनका ज्ञान न नीरस है और न साधुओं की बतकही की चीज है, बल्कि वह ब्रह्मज्ञान है, जो भारतीय संस्कृति को सही अर्थों में परिभाषित करता है और पुराणों की निष्ठा को और प्राणवान बनाता है।

बीज शब्द :

भारतीय संस्कृति, निर्गुणवाद, कुंडलिनी जागरण, इंगला-पिंगला, दर्शन, योग, भडिक्त, गाँव, ग्रामीण अंचल, पतिव्रता, ज्ञान, गुरु महिमा, अद्वैतवाद राम की महत्ता, राम महिमा, ग्रामीण संस्कृति, ऋतु वर्णन, होली, फाग, प्रणय चित्रण, मंगला चरण।

मूल आलेख :

कबीर एक ऐसे कवि थे, जिनके हृदय में निर्गुण राम का वास था। जीवन सार संग्रह 'बीजक' में भारतीय संस्कृति की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उनके जन्म के संदर्भ में विद्वानों के बीच कई मतभेद हैं। 'कबीर कसौटी' में इनका जन्म संवत 1455, 'भडिक्त-सुधा-बिंदु-स्वाद' में संवत 1451-1452 के बीच और 'कबीर-चरित्र-बांध' में संवत 1455 बताया गया है। कबीर पंथियों के मध्य कबीर के जन्म से संबंधित यह दोहा प्रसिद्ध है-

''चौदह सौ पचपन साल गए, चंदवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रकट भए।।
घन गरजे दामिनि दमके दमके बुँदे बरषे झर लग गए।
लहर तलाब में कमल खिलें तहँ कबीर भानु प्रगट हुए ।।[1]

कबीर के गुरु स्वामी रामानंद थे, जो भारतीय संस्कृति के प्रकांड विद्वान थे। इसलिए कबीर का झुकाव भारतीय संस्कृति के प्रति स्वाभाविक था। वह हिंदू समाज में पूजनीय माने जाने वाले राम के भक्त थे। उनको यह पता था कि

उनके काल में राम की छवि प्रत्येक हिंदू समाज के हृदय में बसी हुई है और सब राममय हैं। कबीर ने राम को अपने अनुसार प्रस्तुत किया और अपने निर्गुणवादी दर्शन में राम को शामिल करते हुए उनका गुणगान किया। कबीर कहते हैं –

''भलै नींदौ भलै नींदौ भलै नींदौ लोग
तन मन राम पियारे जोग
मैं बौरी मेरे राम भतार
ता कारनि रचि करों सिंगार
जैसे धुबिया रज मल धोवै
हर तप रत सब निंदक खोवै
निन्दक मेरे माई बाप
जन्म जन्म के काटे पाप
निन्दक मेरे प्रान अधार
बिन बेगारि चलावै भार
कहै कबीर निन्दक बलिहारी
आप रहै जन पार उतारी।''[2]

कबीर जी ने भारतीय संस्कृति में निहित राष्ट्रवादी भावना को स्वीकार किया और राम की महिमा का गुणगान करते हुए राम नाम के रस का पान करने की बात कही। हिंदू धर्म में राम आस्था के केंद्र माने गए हैं। समाज में उनकी पहचान एक आदर्श पुरुष, दयावान, वीरता के प्रतीक, करुणावान और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में स्थापित है। कबीर कहते हैं –

''कोई पीवै रे रस राम नाम का जो पीवै सो जोगी रे
संतों सेवा करो राम की और न दूजा भोगी रे
यहु रस तौ सब फीका भया
ब्रह्म अगनि पर जारी रे
ईश्वर गौरी पीवन लागे राम तनी मतवारी रे
चन्द्र सूर दोई भाठी कीन्ही सुपमनि त्रिगवा लागी रे
अमृत कूं पी सांचा पुरया मेरी त्रिष्णा भागी रे
यहु रस पीबै गूंगा गहिला ताकी कोई बूझै सार रे
कह कबीर महा रस महँगा कोई पीवैगा पीवनिहार रे।[3]

भारतीय संस्कृति में गुरु को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यहाँ गुरु को भगवान के समतुल्य माना गया है। गुरु सच्चा दृष्टा होता है। वह लोगों को सद्मार्ग दिखाता है। उसके दिव्य रूपी ज्ञान से अंधकार की कालिमा छँट जाती है। विद्वानों का मानना है कि गुरु के ज्ञान बिना कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। भारतीय ग्रंथों, वेदों, और पुराणों में गुरु का स्मरण किया गया है। कबीर भी अपनी वाणियों में गुरु की महत्ता को दर्शाते हैं। वह कहते हैं –

''देखो भाई ज्ञान की आई आँधी ।
सबै उडानी भ्रम की टाटी रहै न माइया बाँधी।
दुचिते की दुई थूनि गिरानी मोह बलेड़ा टूटा।
तिसना छानि परी घर उपरि दुरमति भौड़ा फुटा।।
आँधी पाछै जो जलु वरखै तिहि तेरा जनु मीना ।
कहि कबीर मन भाइआ प्रगासा उदै भानु जब चीना॥''[4]

कबीर ने भारतीय संस्कृति में निहित योग विद्या की बात की है। वह पंचतत्व की तरफ संकेत करते हैं। भारतीय संस्कृति में अग्नि, जल, आकाश, हवा और पृथ्वी को पूजनीय माना गया है। कुंडलिनी जागरण विद्या की मान्यता वर्षों से भारतीय संस्कृति में रही है। कबीर इंगला-पिंगला के माध्यम से समाज को रहस्यवादी भावना से परिचित करवाते हैं। कबीर प्रेम भगति हिंडोलना की बात करते हुए कहते हैं –

''हिडोलना तहँ झूले आतमराम ।
प्रेम भगति हिंडोलना सब सतनि को विश्राम।।
चन्द सूर दोइ खम्भवा वक नालि की डोरि।
झूलै पच पियारियां तहँ झूलै जिय मोर॥
द्वादस राम के अन्तरा तहँ अमृत को वास ।
जिनि यह अमृत चाखिया सो टाकुर हम दास॥
सहज सुनि को नेहरो गगन-मण्डल सिरमौर।
दोऊ कुल हम आगरी जो हम भूले हिंडोल॥''[5]

भारतीय संस्कृति में विवाह का प्रमुख स्थान है। जीवन में विवाह करना अच्छा माना गया है। दांपत्य प्रेम जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। भारतीय संस्कृति में प्रणय संबंध को मर्यादा से जोड़ा गया है। विवाह के बाद पति-पत्नी का संबंध पवित्र माना जाता है। कबीर भारतीय संस्कृति के संरक्षक थे। उन्होंने अपने दोहों और कवितावलियों में आत्मा-परमात्मा के मिलन की बात कही है। वह राम को भरतार के रूप में अभिव्यक्त करते

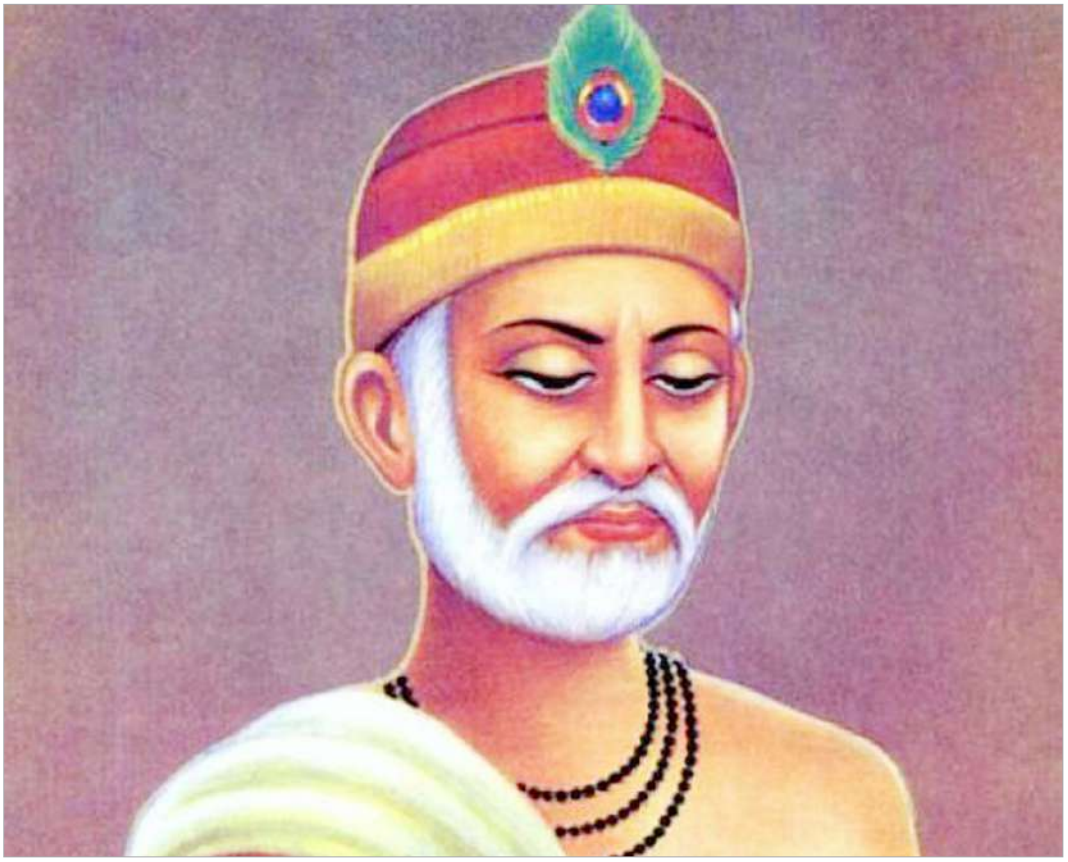

हैं और भारतीय संस्कृति के अनुरूप मंगलाचार की बात करते हैं तथा देवताओं को बाराती के रूप में चित्रित करते हैं। वह कहते हैं–

''दुलहिन गावहु मंगलचार
हम घर आए हो राजा राम भरतार॥
तन रति करि मैं मन रत करहुँ पच तत्त बराती।
रामदेव मोरे णहुन आये, मैं जोवन मदमाती॥
सरीर सरोवर वेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार।
रामदेव संगि भावरि लेहूँ धनि धनि भाग हमार॥
सुर तैतीस कौतिग आए मुनिवर सहस अठासी।
कहै कबीर हम व्याहि चले है पुरुष एक अविनासी॥''[6]

भारतीय संस्कृति में ऋतुओं की अपनी अलग ही महत्ता है। शरद, शिशिर, वसंत आदि ऋतुओं के आगमन से लोग आनंदित हो जाते हैं। विशेषकर तब, जब फागुन की याद लोगों आती है और चारों तरफ हर्षोल्लास का माहौल बन उठता है। होली के रंग में सब इस कदर से रंग जाते हैं कि लोग भेदभाव की भावना को भूल एकता के सूत्र में बँधते नजर आते हैं। इस फागुन की ऋतु में पत्नी अपने पति के साथ और प्रिया अपने प्रियतम के साथ फाग का आनंद उठाते हुए अपने मन की विरह वेदना को शांत करती है। कबीर ने फाग ऋतु का भारतीय संस्कृति के अनुसार वर्णन किया है। वह कहते हैं कि –

''रितु फागुन नियरानी हो,
कोइ पियासे मिलावे ॥
सोई सुंदर जाको पियाको ध्यान है,
सोइ पियाकी मनमानी ।
खेलत फाग अग नहि मोडे,
सतगुरु से लिपटानी ।
इक इक सखियाँ खेल पर पहुँची,
इक इक कुल अरुझानी।
इक इक नाम बिना बहकानी,

हो रही ऐचातानी ।।
पिय को रूप कहाँ लगि बरनौं,
रूपहि माहि समानी।
जो रंग रंगे सकल छबि छाके,
तन-मन सबहि भुलानी ॥
या मन जाने यहि रे फाग है,
यह कछु अकथ कहानी।
कह कबीर सुनो भाई साधो,
यह गति विरल जानी॥''[7]

भारतीय संस्कृति में पतिव्रता स्त्री को महत्व दिया गया है । एक पतिव्रता स्त्री कभी पराये पति पर बुरी नजर नहीं डालती और अपनी मान-मर्यादा को सँजोकर रखती है। वह मनसा, वाचा, कर्मणा से अपनी जिम्मेदारी को निभाती है। भारतीय संस्कृति में ऐसा माना गया है कि जो स्त्री पतिव्रता नहीं होती वह परिवार के बिखरने का कारण बनती है। पत्नी के लिए उसका पति ही मूल्यवान वस्तु है। पतिव्रता नारी का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं -

''जौ पै पिय के मन नहीं भाए ।
तौ का परोसिन के हुलराय ॥
का चूरा पायल झमकाए ।
कहा भयो विछुआ ठमकाए ॥
का काजल सिंदूर के दियै ।
सोलह सिंगार कहा भयो कियै ॥
अंजन मन्जन करै ठगौरी ।
का पाँच मरे निगौडी बौरी ॥
जौ पै पतिव्रता ह्वै नारी ।
कैसे ही वह रहै पियाही पियारी॥''[8]

कबीर भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ के विद्वान थे । उन्होंने भारतीय समाज में उन सभी बातों पर अपनी बात रखी, जो व्यक्ति और समाज से संबंधित थे। दर्शन, योग, भडिक्त, गाँव, ऋतु आदि से लेकर ग्रामीण अंचल की संस्कृति तक की बातों का चित्रण अपनी वाणी में किया। कबीर की चिंतन दृष्टि इतनी विराट है कि निराकार राम के माध्यम से वह गन्ने से बने गुड़ की बात तक कह देते हैं। वह कहते हैं -

''बहुत मोलि महगे गुड़ पावा, लै कसाव रस राम चुवावा।।
तटन पाटन मैं कीन्ह पसारा माँगि-माँगि रस पीवै विचारा।
कहै कबीर फावी पीवत सब राम रस लगी खुमारी॥''[9]

कबीर की दृष्टि बड़ी पैनी थी। उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति का अवलोकन बहुत ही गहनतापूर्वक किया था। जीवन के रहस्य से वह भलीभाँति परिचित थे। वास्तव में कबीर को समझना इतना आसान नहीं है। उन्होंने कभी एक विषय को लेकर अपनी बातों को बयाँ नहीं किया, बल्कि उनके चिंतन में समाज, देश और संपूर्ण विश्व समाहित है। श्री रामकुमार वर्मा एम.ए. लिखते हैं कि ''काव्य के अनुसार जितने विभाग हो सकते हैं उतने विभाग कबीर के सामने रखिये, किसी विभाग में भी कबीर नहीं आ सकते। बात यह नहीं है कि कबीर में उन विभागों में आने की क्षमता ही नहीं है, पर बात यह है कि उन्होंने उसमें आना स्वीकार ही नहीं किया। उन्होंने साहित्य के लिए नहीं गाया, किसी कवि की हैसियत से नहीं लिखा, चित्रकार की हैसियत से चित्र नहीं खींचे। जो कुछ भी उस रहस्यवादी के हृदय से निकला है वह इस विचार से कि अनंत शडिक्त एक सत्पुरुष का संदेश लोगों को किस प्रकार दिया जाय। उस सत्पुरुष का व्यक्तित्व किस प्रकार प्रकट किया जाय, ईश्वर की प्राप्ति के लिए किस प्रकार लोगों से भेद-भाव हटाया जाय, 'एक बिंदु ते विश्व रचो है को बाम्हन को सूद्रा' का प्रतिपादन किस प्रकार किया जाय, सत्य की मीमांसा का क्या रूप हो सकता है, माया किस प्रकार सारहीन चित्रित की जा सकती है, यही उसका विचार था जिस पर उसने अपने विश्वास की मजबूत दीवाल उठाई थी।

कबीर की प्रतिभा का परिचय न पा सकने का एक कारण और है। वह यह कि लोग उसे अभी तक समझ ही नहीं सके हैं। 'रमैनी' और 'शब्दों' में उसने ईश्वर और माया की जो मीमांसा की है, वह लोगों की बुद्धि के बाहर की बात है।''[10]

निष्कर्ष :

इस प्रकार से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि कबीर पर भारतीय संस्कृति की छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित

है। उनके दोहों में जहाँ एक तरफ ज्ञान, गुरु महिमा, निर्गुणवाद, अद्वैतवाद का समावेश है तो वहीं दूसरी ओर राम की महत्ता, राम महिमा, ग्रामीण संस्कृति, ऋतु वर्णन, होली, फाग, प्रणय चित्रण, मंगलाचरण आदि का भी चित्रण देखने को मिलता है। कबीर की भारतीय संस्कृति की भावना भारतीय एकता की परिचायक है। इसलिए आज भी कबीर की वाणी उनकी प्रासंगिकता को सिद्ध करती है। ❑

संदर्भ सूची :

1. Ignca.nic.inkabir051
2. वर्मा, श्री रामकुमार एम.ए., कबीर का रहस्यवाद, साहित्य-भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, 1938, पृष्ठ 13
3. वर्मा, श्री रामकुमार एम.ए., कबीर का रहस्यवाद, साहित्य-भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, 1938, पृष्ठ-27
4. त्रिगुणायत, डॉ. गोविंद, कबीर और जायसी का रहस्यवाद तुलनात्मक विवेचन, साहित्य सदन, देहरादून, 1960, पृष्ठ-109
5. त्रिगुणायत, डॉ. गोविंद, कबीर और जायसी का रहस्यवाद तुलनात्मक विवेचन, साहित्य सदन, देहरादून, 1960, पृष्ठ-114
6. त्रिगुणायत, डॉ. गोविंद, कबीर और जायसी का रहस्यवाद तुलनात्मक विवेचन, साहित्य सदन, देहरादून, 1960, पृष्ठ-47
7. द्विवेदी, पं. हजारी प्रसाद, कबीर, नाथूराम प्रेमी हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई नं. 4, 1942, पृष्ठ-179
8. त्रिगुणायत, डॉ. गोविंद, कबीर और जायसी का रहस्यवाद तुलनात्मक विवेचन, साहित्य सदन, देहरादून, 1960, पृष्ठ-76
9. त्रिगुणायत, डॉ. गोविंद, कबीर और जायसी का रहस्यवाद तुलनात्मक विवेचन, साहित्य सदन, देहरादून, 1960, पृष्ठ-4
10. वर्मा, श्री रामकुमार एम.ए., कबीर का रहस्यवाद, साहित्य-भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, 1938, पृष्ठ-2, 3

आचार्य महाप्रज्ञ का अहिंसा दर्शन : पर्यावरण संरक्षण के विशेष संदर्भ में

डॉ. रवीन्द्र सिंह राठौड़

सहायक आचार्य
अहिंसा व शांति विभाग
जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय
लाडनूं (राजस्थान) 341306
मो. 9829740007
ई-मेल : ravindrachhapara@gmail.com

सारांशिका :

वर्तमान वैज्ञानिक घोषणाओं के बावजूद मनुष्य निरंतर प्रकृति का अति दोहन करता जा रहा है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। इससे केवल विज्ञान ही नहीं, आम जन भी बहुत प्रभावित हो रहा है। इसी संदर्भ में भगवान महावीर ने भी पर्यावरण दोहन के संयम की बात कही थी। उन्होंने कहा था कि प्रकृति में सूक्ष्म-से-सूक्ष्म जीव के बारे में हमें सोचना चाहिए और उसके अस्तित्व को लेकर चिंता करनी चाहिए। हिंसा असंयम, लालच, तृष्णा आदि से बचना चाहिए, जिससे पर्यावरण को कम क्षति हो। परस्परोपग्रहो जीवानाम् की बात जैन दर्शन ने कही है और एक-दूसरे जीव पर निर्भयता भी पर्यावरण को बचाने का एक साधन रही है। तभी जीवों का कल्याण हो सकता है। अणुव्रत, अहिंसा, संयम, दया, करुणा से पर्यावरण संरक्षण किया जा सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने भी पर्यावरण संरक्षण के लिए अहिंसक साधनों के विकास पर जोर दिया।

मुख्य शब्द :

अकरणीय, प्रदूषण, अहिंसा, महापाप, असंख्य, असंयम, करुणा, प्रकृति।

भूमिका :

भगवान महावीर ने कहा है- मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति इन सब में जीव है। उनके अस्तित्व को अस्वीकार मत करो। दृश्य और अदृश्य सभी जीवों का अस्तित्व स्वीकारने वाला ही पर्यावरण के साथ न्याय कर सकता है। महावीर अहिंसा के महान प्रवडक्ता थे। उनके अहिंसा विज्ञान को पर्यावरण विज्ञान भी कहा जा सकता है। पानी का आवश्यक व्यय, पेड़ पौधों का आवश्यक उपभोग - ये सब महावीर की अहिंसा में अकरणीय काम हैं। ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण और जल प्रदूषण की समस्या का समाधान केवल वनस्थली का निर्माण नहीं है। उसका समाधान है व्यावसायिकरण की अंधी प्रकृति पर नियंत्रण। अधिक आवश्यकता, अधिक माँग, अधिक खपत और अधिक उपभोग पर्यावरण प्रदूषण के कारण तत्व हैं। तभी जैन धर्म में संयम की बात कही गई थी। जैन आचार्यों ने पंच महाव्रतों के द्वारा अपनी

इंद्रियों को संयमित कर अपने लोभ व लालच को कम किया जा सकता है। व्यक्ति की इच्छाएँ असिमित हैं और पर्यावरण प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण ही इच्छाओं का बढ़ना है। इच्छाओं के बढ़ने से मनुष्य असंयमित हो जाता है तथा और ज्यादा की चाह में निरंतर पर्यावरण को नष्ट करता चला जाता है। इच्छा और भोग ने हिंसा को बढ़ाया है, जिससे पर्यावरण में असंतुलन और ज्यादा बढ़ता चला गया है।

आचार्य तुलसी का मानना था कि वह उपभोग तो कभी भी स्वीकार्य नहीं हो सकता, जो दूसरों के शोषण एवं पर्यावरण को नष्ट करने के लिए उत्तरदायी हो। आचार्य तुलसी सीमांकन को पर्यावरण का महत्वपूर्ण सूत्र मानते थे। उनके अनुसार उपभोग का संयम करके ही हम पर्यावरण को बचा सकते है। उनका संदेश था– 'संयम: खलु जीवनम्' संयम ही जीवन है।[1]

आज आवश्यकता है कि हम पर्यावरण, अहिंसा और संयम का मूल्य आँकें। यह केवल आर्थिक जगत का नहीं, पूरी मानव जाति और प्राणी जगत का प्रश्न है। इस पर गंभीर चिंतन–मंथन, अनुशीलन और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को समाहित किया जा सकता है। जैन आगमों में छठे आरे का वर्णन मिलता है। यह कालखंड है। छठा आरा प्रलयकाल होगा। उस समय ओजोन की छतरी छिद्र युक्त ही नहीं, पूरी ध्वस्त हो जाएगी और पराबैंगनी किरणें सीधे पृथ्वी पर वार करेगी। पृथ्वी इतनी गर्म हो जाएगी कि इस पर किसी प्राणी का जीवित बचना संभव नही होगा। प्राणी ही नहीं, वनस्पति तक जल कर राख हो जाएगी। छठे कालखंड का जो लोमहर्षक वर्णन मिलता है और वैज्ञानिकों द्वारा ओजोन छतरी के टूटने के जो दुष्परिणाम बताए जा रहे हैं, उसमें काफी समानताएँ हैं।[2]

आज इस पृथ्वी पर यदि कोई ज्वलंत मुद्दा है तो वह है पर्यावरण प्रदूषण। पर्यावरण को प्रदूषित करने में मनुष्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिंसा का सहारा लेता है। जाने–अनजाने में निरंतर वह पर्यावरणीय हिंसा करता रहता है। अहिंसा के सिद्धांत की उपेक्षा कर पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या को सुलझाया नहीं जा सकता। जैन धर्म में द्रव्य एवं भाव रूप में हिंसा त्याग की इतनी सूक्ष्म

हम इस सच्चाई को समझें-जितने पेड़ काटेंगे उतना ही मनुष्य का जीवन असुरक्षित बनेगा। पेड़ काटने का अर्थ है- हिंसा और अपने सहयोगी का विनाश। पेड़ काटने में हिंसा तो होती है, लेकिन उसके साथ-साथ जीवन को भी खतरा पैदा हो जाता है। वनस्पति और मनुष्य दोनों का अस्तित्व इतना जुड़ा हुआ है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। आज मनुष्य इस सच्चाई की अनदेखी कर रहा है। वह लोभ के कारण बिना सोचे-समझे वनस्पति जगत के साथ घोर अन्याय और क्रूरता का व्यवहार करता चला जा रहा है और यही उसके लिए समस्या का कारण बन रहा है।

व्याख्या की गई हो, उस अहिंसा धर्म का अनुयायी निश्चित ही पर्यावरण के समस्त घटकों के प्रति कृतज्ञता की भावना रखने तथा पर्यावरण को संतुलित और सुरक्षित रखने का प्रयत्न करेगा। इसी पर जैन धर्म का सिद्धांत परस्परोपग्रही जीवानाम् टिका है।

आचार का मुख्य तत्व है अहिंसा – किसी को मत सताओ, किसी को उत्पीड़ित मत करो, किसी को मत मारो। अहिंसा से पहले ज्ञान की बात आती है। जब तक जीव और अजीव का सम्यक ज्ञान नहीं होता, तब तक अहिंसा की चर्चा ही नहीं की जा सकती। मनुष्य और पशु को मत मारो, यह एक स्थूल बात है। इस विषय में कहा जा सकता है – पूरे तात्विक जगत में भगवान महावीर ने सबसे अधिक सूक्ष्मता से जीवों का प्रतिपादन किया। षड् जीवनिकाय एक दुर्लभ विषय है। इसे आलौकिक भी कहा जा सकता है। यह किसी भी दूसरे दर्शन में प्राप्त नहीं है। मनुष्य, पशु तथा कीड़े जैसे छोटे जीवों तक बहुत तत्वज्ञ पहुँचे हैं और कुछ तत्वज्ञ वनस्पति तक भी पहुँचे हैं। उन्होंने वनस्पति को भी जीव माना है। हो सकता है – महावीर की अवधारणा

के बाद ही इस तथ्य को स्वीकारा गया हो।[3]

महावीर ने कहा – तुम देखो। वनस्पति आदि में अव्यक्त चेतना है। उनकी चेतना व्यक्त नही है। उन्हें कष्ट कैसे होता है? सुख की अनुभूति कैसे होती है? भगवान ने कहा है – इसी प्रकार सूक्ष्म जीवों को चोट पहुँचाने पर कष्ट होता है, किंतु उनके पास न कान है न आँख है और न जीभ है। उनके पास ऐसा कोई साधन नहीं है, जिससे वे अपनी वेदना को अभिव्यक्ति दे सकें। उनमें भी निरंतर प्राणधारा बह रही है, इसलिए वेदना तो होगी ही। आज के वैज्ञानिकों ने प्राणधारा का नाम दिया है – कॉस्मिक रे जागतिक प्राणशक्ति। उसे सब प्राणी भोग रहे हैं। [4]

पर्यावरण विज्ञान: अहिंसा – असंयम के कारण ही खनिज का अतिरिक्त दोहन हो रहा है। क्या खनिज का अतिरिक्त दोहन कर के भावी पीढ़ियों को दरिद्र नहीं बना रहे? जो खनिज संपदा हजारों वर्षों तक काम आ सके, वह कुछ सौ वर्षों में ही समाप्ति के कगार पर है। पर्यावरण विज्ञान का एक सूत्र है – लिमिटेशन। पदार्थ की सीमा है। कोई भी पदार्थ असीम नहीं है। पर्यावरण का दूसरा सूत्र है – पदार्थ सीमित है, इसलिए उपभोग कम करो। पदार्थों का उपभोग कम हो, पानी का व्यय कम किया जाए, उपभोग का संयम किया जाए, यह सूत्र धर्म का नही पर्यावरण विज्ञान का है, किंतु सच्चाई दोनों में एक है। महावीर ने भोगोपभोग के संयम का जो व्रत दिया, वह पर्यावरण विज्ञान का महत्वपूर्ण सूत्र है। संयम और इसी का नाम अहिंसा है, पर्यावरण विज्ञान है।[5]

आज पर्यावरण विज्ञान सारे विश्व को प्रभावित कर रहा है। उसका मूल सिद्धांत यह है– जीव और पदार्थ एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अहिंसा का भी यह सिद्धांत है– अकेला कोई भी जी नहीं सकता। यह सृष्टि–संतुलन की बात है, इसे हम अहिंसा विज्ञान की दृष्टि से भी स्वीकार करते हैं। पर्यावरण विज्ञान में इसकी विस्तार से व्यवस्था हुई है। पर्यावरण विज्ञान का अध्ययन अहिंसा विज्ञान का अध्ययन है। यदि हम केवल प्राचीन ग्रंथों के आधार पर ही अहिंसा की व्याख्या करें तो आज का आदमी समझ नहीं पाएगा। पारलौकिक दृष्टि से जुड़ी यह व्याख्या वर्तमान मनुष्य के सहज बुद्धिगम नहीं होती– हिंसा करोगे तो नरक में जाओगे, कर्म का बंध होगा। यह बात आदमी जल्दी समझ लेता है– हिंसा करोगे तो पर्यावरण संतुलन गड़बड़ा जाएगा, फिर आदमी का जीना कठिन हो जाएगा। यह भाषा समझाना आसान है– दूसरों को प्रदूषित कर तुम कैसे बच पाओगे? इस आतंक को देखने वाला हिंसा से बच सकता है। आज प्रतिमान और प्रतीक बदलने की जरूरत है।[6]

जैन काल गणना के अनुसार अभी पाँचवाँ आरा चल रहा है। जब पाँचवाँ आरा (कालखंड) पूरा होने वाला होगा, छठा आरा प्रारंभ होगा तब इस विश्व में विचित्र स्थितियाँ बनेंगी। इतनी प्रलयकारी होगी कि पहाड़ भी प्रकंपित हो जाएँगे। समवर्तक वायु इतना भयंकर होगा कि पहाड़ और गाँव नष्ट हो जाएँगे, उनका अस्तित्व ही विलुप्त हो जाएगा। तीव्र आँधियाँ चलेंगी, जिससे सारा आकाश और सारी धरती धूल से भर जाएगी। चंद्रमा इतना ठंडा हो जाएगा कि रात को भी आदमी बाहर निकल नहीं पाएगा। सूर्य इतना गर्म होगा कि आदमी झुलस जाएगा। बारिश होगी, लेकिन पानी की नहीं, अपितु अग्नि की वर्षा होगी। आज कहा जा रहा – जब परमाणु विस्फोट होगा, नाभिकीय युद्ध होगा तब आकाश अग्नि की लपटों से भर जाएगा, जीवजगत प्राय: समाप्त हो जाएगा। जो बचेंगे वो अंधे, बहरे और बीमार रहेंगे। भगवती सूत्र में कहा गया है कि जो मेघ बरसेंगे वे रोग बढ़ाने वाले होंगे। उसका परिणाम होगा मनुष्य, पशु–पक्षी, वनस्पति, कीड़े–मकोड़े नष्ट हो जाएँगे। भगवती सूत्र का यह वर्णन क्या परमाणु युद्ध से पैदा होने की स्थिति का वर्णन नहीं है? उन्होंने पहले कैसे देखा कि ऐसा कुछ होने वाला है? आज जो चल रहा है, उससे ऐसा लगता है – आदमी ठीक उसी दिशा में जा रहा है। आज का वैज्ञानिक और राजनेता हिंसा की दिशा में जा रहा है, इसका अर्थ है – वह मौत की दिशा में जा रहा है और जानबूझकर आँख–मिचौली खेल रहा है, अपने आपको धोखा दे रहा है।[7]

ऋषभदेव जिस प्रकार जैन परंपरा के आद्य प्रवर्तक माने जाते हैं, उसी प्रकार उन्हें जैन दर्शन में पर्यावरण विज्ञान का पितामह कहा जाता है। वे पर्यावरण के प्रथम

संवाहक महापुरुष थे, जिन्होंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में जीव के अस्तित्व की धारणा दी और उनकी रक्षा के लिए अहिंसा को व्यापक बनाया। पर्यावरण का संबंध पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक एकेंद्रिय स्थावर जीवों तथा द्विइंद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय त्रस कायिक जीवों से रहा है। ऋषभदेव ने इन जीवों के प्रति अहिंसा और समता का पाठ देकर परस्परोग्रहो का संदेश दिया। इन जीवों का वातावरण के साथ कितना संबंध है, यह स्पष्ट करते हुए उनके पारस्परिक सहयोगत्मक संबंधों को स्थापित करने का आग्रह किया। सभी जीवों का कल्याण एक-दूसरे से अनुस्यूत रहने में ही है, यह मानकर उन्होंने एकात्मकता और समता अहिंसात्मकता को ही धर्म का प्राण माना। उनके चिंतन में अंतर्जगत और बाह्य जगत के बीच अहिंसामूलक संबंध प्रस्थापित करना मुख्य ध्येय था। उन्होंने बदलते हुए पर्यावरण की पृष्ठभूमि में पर्यावरण को सुरक्षित और संतुलित बनाए रखने के लिए धर्म की व्याख्या दी और उसे समाज से संबद्ध कर दिया।[8] यह एक ऐसा प्रश्नचिन्ह है, जिसे मिटाना आसान नहीं है, पर अणुव्रत एक ऐसा दीप है, जो घने अंधकार में भी सबको सत्पथ की राह दिखा सकता है और इस ओर जन-जन को उन्मुख कर सकता है। अणुव्रत आंदोलन अनेक समस्याओं का समाधान के लिए पथ प्रदर्शन करता है। अणुव्रत संयम का मार्ग है लालसाओं का सीमांकन पर्यावरण का महत्वपूर्ण सूत्र है। उपभोग का संयम करने वाला ही पर्यावरण की समस्या को सुलझा सकता है। अखिल विश्व उपभोडक्ता अधिक है और पदार्थ सीमित है। पदार्थों की कमी के कारण ही प्रकृति का अतिमात्रा में दोहन होता है, प्रकृति के इस अत्यधिक दोहन से ही भूकंप, बाढ़ अथवा दूसरी समस्याएँ उतरोत्तर बढ़ रही हैं। प्रकृति के असीमित दोहन से पदार्थ तो सिकुड़ते ही हैं, भावी पीढ़ी के लिए भी इसमें संकट पैदा होता है। अणुव्रत के छोटे-छोटे सूत्र संकट से बचने का सरल उपाय हैं।[9]

परस्परोपग्रहो जीवानाम अर्थात् जीवों को परस्पर उपकार ही करना चाहिए। जैन दर्शन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में प्राणों का अस्तित्व स्वीकार करता है। अत: इनके अस्तित्व को हिंसा करने वाला केवल इनकी ही हिंसा नहीं करता, अपितु इनके आश्रित अनेक त्रस जीवों की भी हिंसा करता है। इन षड्जीवनिकायों की हिंसा नहीं करने के संदर्भ में जैन दर्शन के जो निर्देश हैं, वे पर्यावरण को प्रदूषण से मुडक्त रखने की दृष्टि से अधिक मूल्यवान हैं।[10] हम इस सच्चाई को समझें- जितने पेड़ काटेंगे उतना ही मनुष्य का जीवन असुरक्षित

बनेगा। पेड़ काटने का अर्थ है – हिंसा और अपने सहयोगी का विनाश। पेड़ काटने में हिंसा तो होती है, किंतु उसके साथ-साथ जीवन को भी खतरा पैदा हो जाता है। वनस्पति और मनुष्य-दोनों का अस्तित्व इतना जुड़ा हुआ है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। आज मनुष्य इस सच्चाई को अनदेखी कर रहा है। वह लोभ के कारण बिना सोचे-समझे वनस्पति जगत के साथ अन्याय और क्रूरता का व्यवहार करता चला जा रहा है। वह लोभ के कारण बिना सोचे-समझे वनस्पति के साथ घोर अन्याय और क्रूरता का व्यवहार करता चला जा रहा है और उसके लिए समस्या का कारण बन रहा है।

अर्थशास्त्र का सूत्र- आज के समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों ने कृतिम भूख को बढ़ाकर पूरे मानव समाज को संकट में डाल दिया है। अर्थशास्त्र का सूत्र है-इच्छा को बढ़ाते चले जाओ। आज इस गलत सूत्र के परिणामस्वरूप हिंसा बढ़ रही है, पर्यावरण का संतुलन विनष्ट हो रहा है। आवश्यकता की पूर्ति करना जरूरी है, इस बात को उचित माना जा सकता है, किंतु कृतिम आवश्यकाताओं को पैदा करना और उनकी पूर्ति करते चले जाना युक्तिसंगत नहीं है। आवश्यकता की उत्पत्ति और उसकी पूर्ति का एक चक्र है। उस चक्र का कहीं अन्त नहीं होता। इस सच्चाई से साधारण लोग भी परिचित रहे हैं।

राजस्थानी का प्रसिद्ध दोहा है –

तन की तृष्णा तनिक है, तीन पाव के सेर।
मन की तृष्णा अनन्त है, गिलै मेर का मेर।।

यदि आधुनिक संदर्भ में महावीर वाणी को प्रस्तुत किया जए, आचारांग सूत्र का विश्लेषण किया जाए तो लगेगा-वर्तमान समस्याओं के अद्भुत समाधान पहली बार हमारे सामने आए हैं। आज महावीर की वाणी और उनका अहिंसा-दर्शन विश्व को लुभावना लग रहा है। लोग चाहते हैं – उफनते हुए दूध पर कोई ठंडे पानी का छींटा देने वाला मिले। आज आकांक्षा की आग प्रबल बन रही है। उसे शांत करने के लिए अहिंसा की बात, जो वनस्पति जगत के साथ जुड़ी हुई है, ठंडे पानी का छींटा डालने वाली बात है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा है पारंपरिक अर्थव्यवस्थाओं के दोषों को दूर करना सापेक्ष अर्थशास्त्र का एकमात्र उद्देश्य नहीं है। उसका एक और महत्वपूर्ण उद्देश्य है-हिंसा, तनाव, अशांति, पर्यावरणीय असंतुलन जैसी समस्याओं का समाधान भी करना। अब एक जागतिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकता है। शक्तिशाली एवं समृद्ध राष्ट्रों ने संसाधनों पर कब्जा किया, मानव कल्याण के नाम पर पर्यावरणीय असंतुलन सौगात में दिया। अतीत के सत्ता विस्तार और साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का नवीन संस्करण बाजार पर अधिकार के द्वारा आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करना है। ऐसी अर्थव्यवस्था की आवश्यकता है, जिससे शक्तिशाली राष्ट्र छोटे राष्ट्रों का शोषण न कर सकें, उनकी स्वतंत्रता न छीन सकें, उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित न कर सकें और पर्यावरण को प्रदूषित भी न कर सकें। अनेक विचारक इस ओर अग्रसर है। टु हेव एण्ड टु बी, थर्ड वेव, द न्यू वर्ल्ड ऑर्डर, अर्थ इन बैलेंस आदि-आदि पुस्तकों के लेखक इस बात से चिंतित हैं कि अगर जागतिक अर्थ नीति का विकास नहीं किया गया तो भविष्य की भयावह स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। केनिज ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि जो संसाधन सीमित हैं, उनका उपभोग असीमित कैसे हो सकता है? इस दृष्टि से उपभोग के संयम पर चिंतन आवश्यक है।

अहिंसा और पर्यावरण – भारतीय परंपरा में जैन धर्म में भगवान महावीर ने ''अहिंसा परमो धर्म'' का दृष्टिकोण दिया, जिससे साफ प्रतीत होता है कि अहिंसा से बड़ा कोई धर्म नहीं होता है। इसलिए मनुष्य को अपने विकास में अहिंसा के रूपों को कभी नकारना नहीं चाहिए। जैन परंपरा में अहिंसा, महाव्रतों में प्रमुख है। बौद्ध परंपरा में करुणा रूप में अहिंसा प्रचलित है। वेदों में तो पृथ्वी, अंतरिक्ष शांति की बात कही गयी है। पर्यावरण संरक्षण के लिए सभी भारतीय परंपराओं ने अहिंसा को प्रमुख माना है। वेदों में तो प्रकृति को अपने परिवार का सदस्य माना है। तो फिर हम अपने परिवार के सदस्यों के प्रति हिंसा कैसे कर सकते हैं। जैन परंपरा में तो प्राणियों और वनस्पति के अतिरिक्त जल, पृथ्वी, अग्नि आदि में भी जीव की बात कही गई है। अर्थात

जैन परंपरा तो सूक्ष्म दृष्टि से अहिंसा की बात करता है। जैन धर्म के अनुसार पृथ्वी के किसी भी अवयव का अत्यधिक दोहन हिंसा ही है।

जैन परंपरा में यहाँ तक कहा है कि जिसे तू मारना चाहता है, कष्ट देना चाहता है, वह तू ही है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सभी की आत्मा समान है। अत: कोई भी कष्ट का भागी नहीं हो सकता है। यह चिंतन सदैव बना रहे कि उपयोग-उपभोग में आने वाली वस्तुओं का सीमाकरण हो तभी पर्यावरण जैसी समस्याओं का समाधान होगा। जैन दर्शन में पृथ्वी, पानी आदि की हिंसा करने वाला केवल इनकी ही हिंसा नहीं करता, अपितु उनके आश्रित त्रसकाय जीवों की भी हिंसा करता है। इन षड्जीवनिकाओं की हिंसा नहीं करने के संदर्भ में जैन दर्शन के जो निर्देश हैं, वे पर्यावरण को संरक्षित रखने की दृष्टि से सर्वाधिक मूल्यवान हैं। पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति आदि की हिंसा आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं, पर्यावरणीय दृष्टि से भी अवांछनीय है। जैन धर्म के साधु न तो हरे पेड़ को काटते हैं न ही उसे जलाते हैं, इसे महापाप माना गया है। इससे वनस्पति की तो हिंसा होती है, साथ ही जीवों की भी हिंसा होती है।

अहिंसा की प्रस्तावना में एक महत्वपूर्ण आयाम है - मनुष्य अपना सुविधावादी दृष्टिकोण बदले। इससे प्रदूषण बढ़ रहा है, उस पर हमारा ध्यान नहीं जा रहा है। मैं जानता हूँ समाज सुविधा को छोड़ नहीं सकता, किंतु वह असीम न हो। यह विवेक आवश्यक है यदि सुविधाओं का विस्तार निरंतर जारी रहा तो अहिंसा का स्वप्न यथार्थ में परिणित नहीं होगा। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं केवल सिद्धांत में हमारा विश्वास नहीं है। सिद्धांत और प्रयोग - दोनों का योग मिले तो परिर्वतन की संभावना की जा सकती है। अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति अहिंसा की प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति अहिंसा की चर्चा ही न करें, उसके प्रशिक्षण की प्रायोगिक पद्धति भी सीखें, यह आवश्यक है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार मानवीय मूल्य और पर्यावरण ये दोनों तटबंध टूट गए हैं। अब जल-प्रवाह की रोकथाम करना संभव नहीं है। मानवीय मूल्यों के विकास और पर्यावरण की सुरक्षा के साथ-साथ जो विकास होता है, वह संतुलित विकास है। उससे मानवीय अस्तित्व को कोई खतरा पैदा नहीं होता। आर्थिक महत्वाकांक्षा अथवा आर्थिक स्पर्धा ने मानवीय मूल्यों और पर्यावरण दोनों की उपेक्षा की है। फलत: सृष्टि संतुलन (इकोलॉजी) की समस्या उत्पन्न हुई है। लोभ के संवेग को नियंत्रित करने का शडिक्तशाली अस्त्र करुणा, अहिंसा या मैत्री है।[11]

आज सारे वैज्ञानिक भविष्य के प्रति चिंतित हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के लोग अनेक बार यह घोषणा करते हैं - वनों की कटाई कम करें, पदार्थ और जल का सीमित प्रयोग करें। वैज्ञानिक स्तर पर आने वाली इन चेतावनियों के बावजूद सब कुछ वैसा ही चल रहा है। आज के दौर में सभी व्यक्ति लोग और लालच के चक्कर में फँसे हुए हैं। पर्यावरण प्रदूषण के प्रति बहुत चिंता दर्शाया जा रहा है, किंतु इसकी क्रियान्वयन की चिंता नहीं है। जब तक अहिंसा और संयम का मार्ग समझ में नहीं आएगा, तब तक पर्यावरण की बात समझ में नहीं आएगी, पर्यावरण की समस्या सुलझेगी नहीं। इस समस्या के जो भी समधान सूत्र हैं, वे बहुत महत्वपूर्ण हैं। पुराने लोग कहा करते थे - जल को घी की तरह बरतो। यह अवधारण थी - असंख्य जीव मरते हैं तो जल की एक बूंद काम आती है। जल की एक बूंद में असंख्य जीव होते हैं। क्या यह असंयम नहीं है? बिजली जले तो दिन-रात जले और पानी बहे तो दिन रात बहे। कितना प्रबल है असंयम। इस स्थिति में ओजोन की छतरी कैसे नहीं टूटेगी? कार्बन की मात्रा कैसे नहीं बढ़ेगी? ऑक्सीजन में कमी क्यों नहीं आएगी? पर्यावरण का संतुलन क्यों नही बिगड़ेगा? भगवान महावीर ने कहा इस सच्चाई को जानकर मेधावी पुरुष यह संकल्प लें - मैंने हिंसा और असंयम बहुत किया है, मैं वह अब नहीं करूँगा। मैं अब अहिंसा और संयम की साधना करूँगा। यदि आज सचमुच विश्व पर्यावरण संतुलन की चिंता है, उससे होने वाले परिणामों की चिंता है तो उसके लिए धर्म का पाठ, अहिंसा और संयम का पाठ समझना सबसे ज्यादा जरूरी है। धार्मिक लोग भी प्राय: संयम और अहिंसा की बात मोक्ष के संदर्भ में करते हैं।

धर्म का संकल्प लें, मैंने अब तक जो भूलें की हैं, उन्हें पुन: नहीं करूँगा, जो प्रमादवश किया है उसकी पुनरावृत्ति नहीं होगी। यह संकल्प समस्या के सघन तिमिर में समाधान का दीप बन सकता है।

हम इस सच्चाई को समझें-जितने पेड़ काटेंगे उतना ही मनुष्य का जीवन असुरक्षित बनेगा। पेड़ काटने का अर्थ है - हिंसा और अपने सहयोगी का विनाश। पेड़ काटने में हिंसा तो होती है, लेकिन उसके साथ-साथ जीवन को भी खतरा पैदा हो जाता है। वनस्पति और मनुष्य दोनों का अस्तित्व इतना जुड़ा हुआ है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। आज मनुष्य इस सच्चाई की अनदेखी कर रहा है। वह लोभ के कारण बिना सोचे-समझे वनस्पति जगत के साथ घोर अन्याय और क्रूरता का व्यवहार करता चला जा रहा है और यही उसके लिए समस्या का कारण बन रहा है।[12]

सृष्टि संतुलन के लिए पर्यावरण के लिए अर्थशास्त्र की वर्तमान अवधारणाओं को बदलना होगा। ''इच्छा बढ़ओ, उत्पादन बढ़ाओ'' इस गलत अवधारणा के कारण ही वनस्पति जगत के साथ अन्याय हो रहा है। आज विकास के कृत्रिम साधनों नें प्रकृति के साथ अन्यापूर्ण और क्रूर बर्ताव शुरू किया है। इसका विराम कहाँ होगा, कहा नहीं जा सकता।

निष्कर्षत: इस पर्यावरणीय हिंसा से बचने के लिए इच्छाओं का संयम, भोगोपभोग का संयम, यातायात का संयम, शस्त्रों का संयम रख कर ही पर्यावरण को बचाया जा सकता है। जैन धर्म में सभी तीर्थक्षेत्र पहाड़ों में, जंगल में अथवा नदी किनारे पर स्थित हैं। इसका मुख्य कारण अहिंसा एवं पर्यावरण को संरक्षण प्रदान करना है। जैन धर्म मे पर्यावरण संरक्षण के प्रति सजगता एवं संरक्षण के प्रति आत्मीय भावना को बताते हैं। साथ ही जैन धर्म के सभी तीर्थंकरों के प्रतीक चिन्ह भी पर्यावरण संरक्षण की ओर इशारा करते हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1. आचार्य महाप्रज्ञ, अस्तित्व और अहिंसा, प्रकाशक-जैन विश्व भारती, लाडनूं, संस्करण द्वितीय, 1994
2. आचार्य महाप्रज्ञ, कैसी हो इस्कीसवीं शताब्दी ? प्रकाशक-जैन विश्व भारती, लाडनूं, संस्करण, 1999
3. डॉ. समणी हिमप्रज्ञा, आचार्य तुलसी का समाज दर्शन, प्रकाशक-आदर्श साहित्य संघ नई दिल्ली, संस्करण 2006
4. मुनि सुखलाल, डॉ. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, अहिंसा और अणुव्रत सिद्धान्त और प्रयोग, प्रकाशक-जैन विश्व भारती, लाडनूं, संस्करण, 1991
5. आचार्य महाप्रज्ञ, नया व्यक्ति नया समाज, प्रकाशक-जैन विश्व भारती, लाडनूं, चतुर्थ संस्करण, 2001
6. आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा और शांति, प्रकाशन- आदर्श साहित्य संघ, दिल्ली, संस्करण- 2001
7. आचार्य महाप्रज्ञ, महावीर का अर्थशास्त्र, प्रकाशन- आदर्श साहित्य संघ, दिल्ली, संस्करण- 2006

अन्य स्त्रोत -

1. प्रो. अनिल धर, जीवन शैली और पर्यावरण संरक्षण (शोध लेख)

मामूली विषयों के गैरमामूली कवि - ओम भारती

डॉ. अनुशब्द

वरिष्ठ सहायक आचार्य
हिंदी विभाग,
तेजपुर विश्वविद्यालय
तेजपुर, असम-784028
मो. 8876049200
ई-मेल : anushabda@gmail.com

आदमी की आँख में
कितने कितने आसमान
कितने कितने समंदर
कितने कितने आदमी
कविता की आँख में।[1]

ओम भारती की कविताएँ एक ऐसे संवेदनशील 'आदमी' की कविताएँ हैं, जो जीवन के बेहद सामान्य से दिखने वाले पक्षों को बहुत ही संजीदगी और कोमलता से शब्दबद्ध करता है। अपनी कविताओं में कवि कई सारी भूमिकाएं निभाते हैं - कभी वह एक शर्मीले से प्रेमी बन जाते हैं तो कभी गायक तलत महमूद के प्रशंसक। कभी वह एक ऐसे प्रवासी की भूमिका में आ जाते हैं, जो अपने शहर को अपने असबाब का जरूरी हिस्सा मानता है तो कभी एक पिता जो अपनी बेटी के हाथों में सौप देता है ग्लोब-सी दुनिया।

मजीद अहमद के संपादन में आयी। ओम भारती की कविताएँ एक संग्रहणीय काव्य-संग्रह है। इसमें कुल एक सौ तेईस कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ पाँच अलग-अलग शीर्षक खंडों में विभाजित हैं और इनका रचना काल भी पाँच दशकों में फैला हुआ है। कविताओं में विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से प्रचुर विविधता दिखाई देती है। कई बेहद सामान्य विषयों पर कवि बहुत ही दिलचस्प और संजीदा कविता लिखते हैं। जैसे - थाली, शंख, मुख दर्पण, साड़ियाँ, जूते, चूल्हे, राख आदि पर कविता।

छोर में बंधी रहती हैं चाभियाँ, चार-आठ आने या
रूपये-दो रुपये के नोट वो मुड़े-तुड़े...
अमिट हैं अभी मेल, गंध और धब्बे/ चूल्हे की आँच
और/दाल- साग- रसोई के सखरौंधे निशानात
शिशुओं के मुंह से गिरा दूध, जूठन
तकरारें- तकलीफें, पसीना - बुखार
पूर्वरंग, इच्छित-अनिश्चित रति-प्रसंग, प्रसव और मासिक भी
उजागर कर रही हैं सूखती साड़ियाँ।[2]

यहाँ तार पर सूखती साड़ियाँ नारी जीवन का और नारी जीवन के विभिन्न पड़ावों का पर्याय बन जाती हैं। नारी सौंदर्य से इतर उनके जीवन संघर्ष का ऐसा चित्रण, वो भी किसी वस्तु के माध्यम से, दुर्लभ नहीं तो आसानी से सुगम भी नहीं है।

वस्तुओं के माध्यम से व्यक्तियों को याद करना भी कवि की कविताओं की एक विशिष्टता है। 'चूल्हा' कविता निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में रिश्तों के ताने-बाने को चित्रित करता है। 'शंख' कविता में बंद घर के पूजाघर में बंद शंख कवि को उनके पिता और माँ की याद दिलाता है। दर्पण कवि को उनके प्रेम की याद दिलाता है। घर की पुरानी दरी कवि के लिए उनके पिता का प्रतीक है, जिनके बिना कवि खुद को बिल्कुल व्यर्थ या अकारथ पाता है।

कवि ने प्रेम पर भी कई कविताएँ लिखी हैं। प्रेम कवि के लिए नुमाइश की चीज नहीं है। वह उसके लिए इतना सहज और अनायास है कि उसकी अभिव्यक्ति की आवश्यकता भी नहीं है। कवि अपनी कविताओं में प्रेम को जीता है, उसे ओढ़ता-बिछाता है। प्रेम कवि के जीने की वजह है, उसके जीवन का संबल है। कई दफा तो लगता है जैसे कवि जब कुछ लिखता है तो वास्तव में वह प्रेम ही लिखना चाहता है।

चाहता था कहना कि मैं तुम्हें
बहुत प्यार करता हूँ
मैंने कहा तबियत अब ठीक है न तुम्हारी ?
चाहता था, कहूँ, कितना व्याकुल था तुमसे दूर
कहा मैंने-धूप अब तेज पड़ने लगी है!
तुमने भी तो चाहा था कहना
कि मत जाओ
लेकिन कह दिया-विदा![3]
मानता हूँ अब तक नहीं कह सका
कि तुम्हें प्यार करता हूँ!
मेरी आँखें हर-हमेश कहती रहीं
तुम्हारी अंगुलियाँ- हथेलियाँ छू।[4]

एक स्वप्न तुम्हारी थाप पर स्वकीया प्रेम पर लिखी गयी बेहद खूबसूरत कविता है, जिसमें कवि अपनी पत्नी की दिनचर्या में स्वयं शामिल हो जाता है और वो उनके जीवन में।

तुम ही तो हो ये/कानों को मुझमे और
कुकर की सीटी में बांटे हुए बराबर
रसोई-बैठक-रसोई में दोलती
बजती हो बेआवाज/ पग-पग मेरे भीतर।[5]

कवि का जन्म मध्य प्रदेश 'इटारसी' में हुआ है। इटारसी, उनकी कविताओं में बार-बार आया है। कभी कवि की कोई याद बनकर, कभी स्वयं विषय बनकर, कभी परिप्रेक्ष्य बनकर। इटारसी से कवि का भावनात्मक लगाव हर जगह लक्षित किया जा सकता है।

'पैंसठ के साल में
इटारसी के मिशन स्कूल की
ग्यारहवीं 'अ' से
निकले हम सैंतालीस'[6]
'कभी-कभार अब भी
आ ही तो जाती हैं
चिट्ठियां, इटारसी।'[7]
'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
तार बाबू रहे थें मेरे इटारसी में'[8]

कवि ने कुछ एकदम नवीन विषयों पर भी कविताएँ लिखी हैं जैसे- ग्लोबल वार्मिंग, वैश्वीकरण, पूंजीवाद, अमेरिका की तानाशाही प्रवृति आदि पर। इन कविताओं में कवि उस इंसान की आवाज बन कर खड़ा होता है जो स्वयं अपनी आवाज दर्ज नहीं कर पाता है। 'आपका सफेद घर', 'फायदे समूचे फायदे के', 'उनके हैरत के आईने में', 'नर्मदा विस्थापितों की कुछ कविताएँ', 'सामना' आदि ऐसी ही कुछ कविताएँ हैं। 'आपका सफेद घर' अमेरिका की विदेश नीति की आलोचना करती कविता है तो फायदे समूचे फायदे के' वर्तमान इंसान के बढ़ते लोभ को दर्शाती कविता है। 'उनके हैरत के आईने में' एक अच्छी और सच्ची दुनिया की मांग करती कविता है।

'क्या बचे होंगे कुछ फूल अछूते
ग्रीन हाउस असर से
एक नीची झुकी डाल पर
बच्चों की आसान पहुँच में'[9]

'सामना' कविता भी संग्रह में शामिल कुछ बेहद उम्दा किस्म की कविताओं में से एक है। कविता में वैश्वीकरण के खिलाफ मटके बेचने वाली का उठा हुआ स्वर जैसे उम्मीद का वह स्वर है, जो अब भी जिंदा है। कविता के पहले हिस्से में कवि बाजार के उन सारे तिकड़मों और हथकंडों को बतलाता है, जो उपभोडक्ता वर्ग को छलते हैं, लेकिन दूसरे हिस्से तक पहुँचते ही हमें अनायास ही गोदान की धनिया याद आती है, जो किसी पंचायत, किसी दरोगा से नहीं डरती और अपने वाजिब हक की बात करती है।

'आइसक्रीम खरीद पर
मुफ्त थे 'स्टीकर'
कोल्ड-ड्रिंक का ढक्कन
इनामों में खुलता था
पंखों और कूलरों पर छूट बहुत भारी थी
रेफ्रिजरेटरों के दाम
पानी के मुकाबले घटा दिए गए थे
.....
ऐसे में
सुना मैंने शहर में प्रत्यक्ष
सिर्फ एक
साहस का स्वर-
' लो मटके.....'[10]

मध्य प्रदेश कवि की जन्मभूमि रही है और नर्मदा नदी, इस जन्मभूमि की जीवन रेखा। ऐसे में इस संग्रह में नर्मदा नदी पर कविता न हो यह संभव ही नहीं, लेकिन जिस तरह से अपनी कविताओं में नर्मदा नदी से विस्थापित हुए लोगों की पीड़ा को कवि दर्ज करते हैं, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नर्मदा-विस्थापितों पर कुल पांच कविताएँ इस संग्रह में शामिल हैं।

एक और खास बात जो इस संग्रह को विशेष बनाती है, वह यह कि कवि कई दफा शब्दों को ही कविता का विषय बना लेता है। इनके यहाँ भाषा कविता में अभिव्यक्ति एक माध्यम भर नहीं है बल्कि खुद कविता का विषय है। 'न', 'खानदानी तालीम', 'जो साहस का अंत है', 'नहीं', 'शब्द' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं।

'नहीं कोई दीर्घ स्वर न में
किन्तु काँप उठता है
क्रूरतम अधिनायक
एक बेआवाज़ न से'[11]

इसी तरह 'खानदानी तालीम' में प्रथम वर्षगांठ में शब्दों के मार्फत से कैसे हिंसा का पाठ पढ़ाया जाता है और दया तथा खैरात का खानदानी ठाठ सिखाया जाता है, इसका जिक्र कवि करते हैं।

संग्रह की कुछ और विशिष्ट और उल्लेखनीय कविताएँ हैं- 'आप स्त्री को जानते ही कितना हैं', 'इतिहास के पर्चे से', 'कामता बाबू', 'जूते जो आपके हैं श्रीमान्' आदि।

इतना कुछ होते हुए भी संग्रह की कविताएँ कई बार कुछ बोझिल-सी प्रतीत होती हैं। हालाँकि यह मेरी व्यक्तिगत पसंद-नापसंद की बात हो सकती है, लेकिन इतिवृतात्मकता कविताओं के शीर्षकों तक पर हावी है।

शीर्षक काफी लम्बे रखते हैं कवि। जैसे-तुम्हारे झुलसने से पकती है पृथ्वी, टीवी पर जूतों के दर्शन से कृतकृत्य, एक अपना शहर नहीं छोड़ते हुए, अपने ठोस कणों में अभ्रक-सा, एक चोट अपनी भी होगी' आदि।

एक और बात जो इस संग्रह की कविताओं को पढ़ते समय अखड़ती है, वह यह कि अधिकांश कविताओं में 'मैं' की प्रधानता है। टी.एस. इलियट ने लिखा है कि 'कविता व्यक्तित्व की अभिव्यंजना नहीं है, व्यक्तित्व से पलायन है।' वे यह भी मानते हैं कि 'रचना के लिए तो कवि का होना आवश्यक है, रचना में नहीं,' लेकिन ओम भारती की कविताओं में उनका व्यक्तित्व, उनका स्व बार-बार नजर आ जाता है। कई बार यह एहसास होता है, जैसे कवि ने विभिन्न कविताओं में स्वयं को और स्वयं के जीवन को ही उकेरा है। कविताओं की शुरुआत ही 'मैं' से होती है -

1. सोचा मैंने कि मैं गत जीवन में नहीं था मनुष्य
2. नौजवान अतिथि को बताया था मैंने
3. यहाँ खोता हूँ उसे मैं
4. डाकिया डाल कर गया है लिफाफा
   पता उस पर अंग्रेजी में दर्ज है मेरा
5. समय के कई सफ़े मेरी किताब से निकल पड़े
6. मुझे सख्त अमरुद पसंद हैं और सेब
7. फैसले जैसी नहीं थी यह बात
   पर किया मैंने फैसला
8. हमने जितनी चोटें झेली
9. भावुक होने की सीमा थी
   पर मैंने तै किया.....
10. रेल का बड़ा भारी जंक्शन था
    इटारसी, जहाँ मैं पैदा हुआ

बहरहाल, ऐसे और भी बहुत उदहारण हैं। कुछ और सीमाएं भी हैं। बावजूद इसके यह काव्य-संग्रह कई कारणों से पठनीय और संग्रहणीय है। यह संग्रह पांच दशकों में विन्यस्त एक इतिहास का साक्षी है। कुछ बेहद मार्मिक तथा संवेदनशील कविताओं के लिहाज से यह संग्रह सहृदय समाज के बीच विचार-मीमांसा के योग्य भी है और उल्लेखनीय-प्रशंसनीय भी। ❑

संदर्भ-सूची :

1. ओम भारती की कविताएँ, चयन और संपादन : मजीद अहमद, 'कविता की आँख', पृष्ठ संख्या-81.
2. वही, 'साड़ियाँ', पृष्ठ संख्या-49.
3. वही, 'फिर भी', पृष्ठ संख्या-142.
4. वही, 'कितनी बार', पृष्ठ संख्या-100.
5. वही, 'एक स्वप्न तुम्हारी थाप पर', पृष्ठ संख्या-23.
6. वही, 'पचास में सैंतालीस', पृष्ठ संख्या-58.
7. वही, 'यह हुआ इतने बरस में', पृष्ठ संख्या-60.
8. वही, 'तार पर कविता', पृष्ठ संख्या-11.
9. वही, 'उनके हैरत के आईने में', पृष्ठ संख्या-27.
10. वही, 'सामना', पृष्ठ संख्या-33.
11. वही, 'न', पृष्ठ संख्या-70.

मीरा की प्रेम-पीड़ा एवं प्रणय-प्रतिबद्धता

उपदीप कौर

शोध सार :

मीरा ने नवरसों में से श्रृंगार एवं शांत का ही मुख्यत: प्रतिपादन किया है। प्रबंध काव्य के प्रणेता न होने के कारण उनके काव्य जगत में प्रसंगों के वैविध्य का अभाव-सा था। अत: समस्त रसों के विस्तारयुक्त प्रतिपादन का अवसर उन्हें नहीं मिलता था। श्रृंगार रस के माध्यम से मीरा ने यदि श्रीकृष्ण प्रेम की अभिव्यक्ति की है तो शांत रस पाठकों को भक्ति के अघाधतलों तक ले जाने वाला है।[1] इसका मतलब यह नहीं है कि मीरा ने अन्य रसों का प्रतिपादन नहीं किया है। श्रृंगार के वियोग पक्ष का प्रतिपादन करते समय यत्र-तत्र करुण रस का समावेश किया गया है। बोभत्त, अद्भुत आदि रसों के सुंदर उदाहरण भी मीरा काव्य में उपलब्ध हैं। यह विशेषता है कि यह रस प्रतिपादन पांडित्य प्रकटन के लिए कदापि नहीं हुआ है। मीरा की भक्ति परायणता के कारण उनसे प्रतिपादित समस्त रस भक्ति रसात्मक एवं आध्यात्मिक महत्व के बन गए हैं।[2] असल में मीरा के रस एक नया परिवेश धारण करते हैं। यही उनके रस प्रतिपादन की श्रेष्ठता का आधार है। चित्त और देह का घनिष्ठतम संबंध है। देह की सारी गतिविधि का नियंत्रण चित्त वृत्तियों के ही हाथ है।

मूल शब्द :

विस्तारयुक्त प्रतिपादन, पांडित्य प्रकटन, रसात्मक, आध्यात्मिक, घनिष्ठतम।

आत्मा और देह के बीच चित्त गंथि-स्वरूप है। वह उन दोनों का योजक भी है और विभाजक भी। चित्त पर उतरा हुआ आत्म प्रकाश आगे बढ़कर इंद्रियों के द्वारा व्यक्त होगा। यह तभी होगा जब इंद्रियाँ चित्तानुरूप आचरण करेंगी। यदि चित्त देह के साथ अपना तादात्म्य टिका रहेगा तथा तत्काल आत्मा में ही लौट जाएगा, क्योंकि बिना धारण किए उसकी बहिर्गति नहीं। यदि चित्त नहीं रहेगा तो देह भी नहीं रहेगी। (हां, विक्षिप्तावस्था में वृत्तियों के विपर्यय से स्थिति कुछ और ही होगी, जिसका संबंध मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से ही है। देह के अक्षुण्ण रहते हुए भी चित्त की कृतकार्यता नहीं रहती।) केवल आत्मा से तो काम चलेगा नहीं। योगी जब चित्त में प्रकाशित रहता है, सविकल्प अवस्था में चित्त को आलोकित करके वह चित्त से अभिन्न होकर

पत्नी श्री मनप्रीत सिंह
गाँव वैदवाला, जिला-सिरसा
हरियाणा, पिन-125055
ई-मेल : updeep81@gmail.com

रहता है, बाहर इंद्रियों के माध्यम से प्रकाशित नहीं होता। समाधि की सविकल्प अवस्था भी अज्ञात रूप ही कही गई है, क्योंकि इस (उच्च अवस्था) में भी पुरुष प्रकृति के बंधनों से सर्वथा मुक्त नहीं कहा जाता है।[3] उसमें पुरुष और प्रकृति अभी अभिन्न या मिले हुए से रहते हैं। इस ग्रंथि को खोल देने का ही नाम है निर्विकल्प समाधि, निर्बीज समाधि, या कैवल्य। उस समय प्रकाश चित्त को छोड़ देता है और लौटकर आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। उधर चित्त भी प्रकाश से अलग होकर मूल प्रकृति में लीन हो जाता है और यही कैवल्य या मोक्ष है। [4]

संयोग श्रृंगार का स्थायी भाव 'रति' है। मीरा का कृष्ण विषयक दांपत्य संबंध अलौकिक भगवद्-रति पर आधारित है। इसके आलंबन हैं भगवान कृष्ण। उनके संबंध में मीरा ने जिस संयोग श्रृंगार का वर्णन किया है। उदाहरण :

म्हा मोहण रो रूप लुभाणी।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन बाँका चितवन णेणा समाणी।
जमना किनारे कान्हा धेनु, चरावां बंशी बजावा मीठांवाणी।
तन मन धन गिरधर पर वारा चरण कंवल मीरां विलवाणी। [5]

यहाँ तक तो हुआ आत्मा को ही मूल आधार मान कर प्रेम-तत्व का विवेचन अव चित्त व इंद्रियों के आधार पर प्रेम-तत्व पर विचार किया जाए। ऊपर कहा जा चुका है कि आत्मा स्वरूपत: निर्गुण ही है, सगुण नहीं। अत: आत्मा की निष्क्रियता को ध्यान में रखते हुए यह तर्क भी माना जा सकता है और मानना पड़ेगा कि प्रेम चित्त का गुण है, क्योंकि वह चित्त के ही द्वारा देह के माध्यम से अभिव्यक्त होता है।

मीरा के संयोग श्रृंगार के पार्थिव एवं अपार्थिव पक्षों पर प्रकाश डालने के लिए और एक उदाहरण भी देखिए :-

जोसीडा णे लाख वधाया रे आस्यां म्हारो स्याम
म्हारे आणद उमंग भ्यारी जीव लहवां मुखधाम
पाँच सख्यां मिल पोव रिझांवा, आणंद ठांम-ठांमा।
बिसरो जावां दु:ख निरख पियारी सुफल मनोरथ काम।
मीरां रे सुखसा-र स्वामी भवण पधारया स्याम।[6]

डॉ. ज्ञानी देवी गुप्ता ने 'मीराँबाई के काव्य में चित्रित राजनीतिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि' शोध पत्र में लिखा है- राजपूत राजाओं में हमेशा झगड़े होते रहते थे। अपने छोटे-छोटे कारणों से बड़े-बड़े संघर्ष होने के बहुत सारे उदाहरण हैं। भारत के बाहर से आए मुसलमानी राजसत्ताओं से भी राजपूतों को संघर्ष करना पड़ा। ऐसे राजनीतिक वातावरण में सामाजिक बदलाव थोड़ा बहुत तो बदल ही रहा था। इसी में मीरा राजघराने की होते हुए भी सामान्य जीवन व्यतीत कर रही थी। उसका एकमात्र उद्देश्य यह था कि कृष्ण भक्ति का गायन करे उसके गुणगान करें। अपने राज्यों की सीमा छोड़कर उसको देखने के लिए लोग दूर-दूर से आते थे। उनकी कृष्णभक्ति की चर्चा पूरे भारत देश में फैल गई। राजकीय परिस्थितियाँ और सत्ता संघर्ष मीरा के काम को रुकवा नहीं सके।[7]

बहुत से लोग आत्म-तत्व जैसी वस्तु में विश्वास करते भी नहीं, किंतु प्रेम में उनकी भी आस्था दिखाई देती है। (भगवान बुद्ध को ही लीजिए। वे पुर्नजन्म को मानते हैं, ईश्वर को नहीं। फिर भी वे अनंत प्रेम व करुणा के समुद्र हैं।) किंतु इन सब तर्कों के बावजूद यह नहीं समझा जा सकता कि प्रेम, आत्मा से सर्वथा निरपेक्ष चित्त का ही गुण है। यहाँ भी यद्यपि कार्य चित्त ही कर रहा है, किंतु आत्मा से ही प्रकाश पाकर या आत्मा के ही तत्वाधान में।[8] मानो तटस्थ साक्षीरूप है और चित्त सक्रिय है।

श्री कृष्ण के मोहन रूप पर आसक्त मीरा का हृदय निरंतर उसके प्रेम की ओर ही उन्मुख होता गया। मीरा कृष्ण की अनन्य प्रेमिका है।[9] कृष्ण प्रेम के कारण ही उनका इस संसार से उद्धार हो गया है। उनके पदों से यह स्पष्ट हो जाता है। मीरा कृष्ण प्रेम में अनुरक्त हो गई थी और मीरा सोलह श्रृंगार सजा कर पैरों में घुंघरू बाँधती है और लोक लाज त्यागकर उस के लिए नाचती है।[10] वृंदावन की कुंज गली में कृष्ण ने मीरा का हाथ पकड़ लिया, दहीखाली, मटकी तोड़ दी तथा मीरा को अपने आलिंगन में भर लिया।[11] इस प्रकार मीरा गोपी-रूप में

अपने को मानकर गिरधर नागर के साथ विभिन्न प्रेम विनोद करती है।

प्रेम मतवाली का हृदय मनमोहन के श्यामल रूप को चुभम पाकर गा उठता है।[12] यह प्रेम व्यापार मीरा की अनन्य प्रेम मुग्धता तथा कृष्ण सान्निध्य बोध का परिचायक है।

सान्निध्य बोध–निकट संपर्क का अनुभव करता है। मीरा यह दिखाना चाहती थी कि वृंदावन में कृष्ण ने जो प्रेमव्यापार किया है, उन सब में वे आज भी तत्पर एवं प्रवृत्त रहते हैं।[13] मीरा प्रेम व्यापार को आध्यात्मिक रति एवं मिलनानन्द को बढ़ाने एवं चिरस्थायी बनाने में सहायक समझती थी। अत: उनका स्मरण दिलाना और उनमें मुग्ध करना मीरा के अभीष्ट थे। तत्कालीन जनता को भय, आशंका तथा निराशा से मुक्त कराने तथा उन्हें आनंदमय जीवन की हाँकी दिलाने के लिए यह प्रेम व्यापार वर्णन उपयुक्त है।

भगवान में अनन्यता एवं प्रतिकूल विषय में उदासी का विरोध कहते हैं। फिर अनन्यता दूसरे के आश्रय का त्याग का नाम ही अनन्यता है। वास्तव में प्रेमी भक्त प्रियतम को छोड़कर किसी की कल्पना नहीं करता है। रहीम का दोहा–

प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आपु फिरि जाय।।

इस प्रकार सुंदरदास ने 'तर्क-समुद्र' में सेवा वाले में अध्याय में कहा है–

सुन न कान और की, द्रस न और अच्छना।
कह न बात और की, सुभक्ति प्रेम लछना।।

प्रह्लाद जब प्रभु से अविचल भक्ति माँगते हैं, इसी अनन्यता की ओर ही इशारा करते हैं।[14] श्री रूपगोस्वामी ने अपनी भक्ति की परिभाषा में यद्यपि अनन्यता का वर्णन नहीं किया है, परंतु परिभाषा का विचार करने पर हम अनन्यता वाले तत्व को निश्चित रूप से प्राप्त कर सकते हैं। जब कोई अन्य इच्छा नहीं है, ज्ञान-कर्मादि से मुक्त है और मात्र अनुकूलन मन से कृष्णानुशीलन है तो अनन्यता का अभिप्राय स्पष्ट होता है। प्रेम-भावना के बाद दूसरा महत्वपूर्ण तत्व अनन्यता है। श्री संप्रदाय में शामिल तीन विशेषण अनन्य शेष तत्व अनन्य साधनत्व एवं अनन्य भोगत्व भी इसी तथ्य की ओर इशारा करते हैं। पुष्टिमार्ग में भाव द्वारा पराभक्ति प्राप्त करना ध्येय माना है। निष्काम प्रेम ही उचित है। उस समय भक्त को भगवान के प्रेम के अतिरिक्त कोई अन्य काम्य पदार्थ-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नहीं चाहिए।

प्रेम-प्रेम ही पाइयै तौ करे प्रेम को अंग।
प्रेमहि प्रेम पिछान लै झूठो साचो संग।।[15]

इसे उपषिद में आए परमात्मा और आत्मा रूपी एक पेड़ के दो पक्षियों के पारस्परिक संबंध की तरह समझिए, जिनमें से एक (परमात्मा) तो साक्षी रूप में सब कुछ देखता रहता है और दूसरा (जीवात्मा) प्रारब्धानुसार सुख-दुख: रूप कर्मफल को भोगता रहता है। दोनों ही अवस्थाओं में प्रेम का प्रकाशन चित्त या देह के द्वारा

होगा, इसमें तो कोई संदेह नहीं। तो केवल इस अर्थ में प्रेम चित का ही धर्म हुआ। इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि देह से संबंद्ध होकर ही चित्त वृत्तियों को उपाजता है और चित्त से संबंद्ध देह ही उन वृत्तियों के अनुरूप आचरण करता है। तात्पर्य यह है कि देह-संबंध बिना किसी भी वृत्ति का उदय नहीं होगा।

'साँप पिटरा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय।
नहाय धोय जब देखन लागी, सालिग राम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अंचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यों मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी मानों फूल बिछाया।
मीरा के प्रभु सदा सुहाई, राखे विधन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय।[16]

हमारे चित में प्रेम, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या आदि नाना प्रकार की चित्त वृत्तियों का आविर्भाव और विकास मूल में देह होने पर ही संभव है। यदि देह नहीं तो न तो चित्त वृत्तियों के उदय का ही प्रश्न उठता है और न उनके लौटने का। देहात्मबोध में ही लौटने का प्रश्न उठता है।

मीरा काव्य में जोगी, निर्मोही, परदेशी आदि रूपों में प्रियतम को देखने का जो प्रयास है, वे सचमुच नायक-नायिका संबंध की गहराई एवं मिल कर एक हो जाने की चेष्टाओं के परिचायक हैं। कवयित्री का जोगी प्रेम जोगी जुड़ गया। इससे साधना का मंत्र लेकर चला गया है। वह निर्मोही परदेशी कहलाने योग्य बनता है। उसकी प्रतीक्षा, उसका ध्यान, उसके लिए आकूलता सब यह स्पष्ट करते हैं कि वह निस्संग विश्वात्मा ही है। ऐसे जोगी से प्रीति जोड़ना दु:ख के लिए ही है, क्योंकि वह किसी का मित्र नहीं हैं, वह समस्त मित्रताओं का समस्त छोटे संबंधों का दुश्मन है।[17] उस जैसा रूप नहीं देखा जाता। तब मीरा की साधना तीव्र हो जाती है। अत: उनके कई पद 'जोगी' को संबोधित है।[18] यह 'जोगी' कौन है इस योगी से प्रीति करने पर दु:ख होता है, वह किसी का मीत नहीं। उसकी प्रतीक्षा मीरा रात-दिन करती है। वह नगर में आया, मीरा उसे रोक कर रख नहीं पाई, उसे रोकने से कोई लाभ नहीं वह रुकेगा नहीं, बोलता मधुर है, लेकिन प्रीति नहीं जोड़ता। इससे जोगी को रुकने की प्रार्थना होती है ।

एक ही पंक्ति में न जाने की तीन बार कातर याचना मत जा, मत जा, मत जा पाँव पर मैं तेरे होती है।[19] अगर जाना ही है तो मीरा को भस्म कर दे उसी भस्म को अपने अंग लगा ले। निस्संदेह इस 'जोगी' का वर्णन और इसके प्रति आत्मा निवेदन आत्मीयता की पराकाष्ठा है।

मीरा ने जोगी के वियोग में जो कुछ कहा है, वह विरह वर्णन की परंपरा में होते भी किंचित असामान्य है। जोगी की राह देखते हुए बहुत दिन बीत गए, वह आज तक आया नहीं तब तो मीरा सोचती है या तो जोगी जग में नहीं या उसने मुझे भुला दिया।[20] अगर यह 'जोगी, निर्मोही या परदेशी' कृष्ण ही है तो आशंका है कि वो जीवित न हो, असंगत है।

जोगी के विषय में मीरा ने यह भी लिखा है- मैं तो जानती थी कि जोगी साथ चलेगी, साथ चलेगा, संग रहेगा, लेकिन वह अधबिच रास्ते में छोड़कर कहीं प्रदेश चला गया।[21] जब मीरा ने अपनी व्यथा कही, तब उन्होंने सिर्फ अपनी ही व्यथा नहीं अपने युग की असंख्य भक्तों के दुख की व्यथा ही कही। इस जगत में वे उन से नहीं मिले, वे मीरा के स्वप्न हैं। ये आदर्श पति, प्रियतम, प्रेमी, रक्षक, रंजक इस जीवन जगत में नहीं मिले, इसलिए वह पूर्व जन्म के प्रिय हैं, जन्म-जन्मांतर के हैं। ये प्रियतम मीरा को स्वपन में मिलते हैं। इधर -गोपीभाव की व्यंजना स्पष्ट है। विरह के प्रतिपादन के द्वारा भावातिरेक को बढ़ाने का प्रयास सफल होता है।

मीरों की भक्ति प्रेम-झूला है, माधुर्य भाव से परिपूर्ण।[22] माधुर्य भक्ति में प्रियतम की रूप माधुरी का वर्णन मिलन की कामना, विरह की तीव्रता, तन्मयता, सांसारिक आकर्षणों का त्याग और आत्मसमर्पण इत्यादि का वर्णन आवश्यक होता है। मीरा ने माधुर्य भावना के सभी आवश्यक तत्वों का निरूपण किया।[23] अपने जीवन और हृदय के समस्त माधुर्य को उसने कृष्णार्पित किया है। मीरा अपने प्रियतम से जन्म-जन्मांतर के संबंध की चर्चा करती है। उनको प्रेम की तीव्र अनुभूति है -

मीरां कूँ प्रभु दरसण दी ज्यौ पूरब जनम का कौल।[24]

प्रभु से संबंध स्थापित करने में जो मधुरता आ जाती है, वह श्रृंगार रस की संसृष्टि करती है। उनका मधुर रस निष्पादन एकदम अलौकिक और शाश्वत है। मीरा के माधुर्य भाव में कहीं भी अश्लीलता ना आ पाई है और न वह सांसारिक अर्थों में उलझा है। उससे आध्यात्मिक सौंदर्य की सहज अभिव्यक्ति हुई है। मीरा का माधुर्य भाव श्रृंगार रस के स्थायी भाव रति से नहीं, उस की आत्मा से संबंधित है। रति शारीरिक सीमाबद्ध है। आत्मा तो चिर अमर है, अजर है और सर्वव्याप्त है। मीरा काव्य में वह व्यापकता तथा गहनता अत्यंत तीव्र रूप में अनुभूत होती है।

उनका सहज समर्पण अपने आप में अद्वितीय है। उनका प्रेम निष्पाप है। वह चिरवियोगिनी है। उनका तन-मन कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मीरां कृष्णमयी है। उनका श्रृंगार अत्यंत मर्यादित तथ्य प्रभावोत्पादक है। मीरा की माधुर्य भक्ति कदापि लौकिक दोष संकुलन नहीं है। उनमें जो उत्कट प्रेमानुभूति है, वही सर्वस्वानुभूति है। सर्वस्व के अतिरिक्त मीरा में कुल भी नहीं हो सकता है। उन्होंने स्वकीय रूप में अपने को स्थापित कर अध्यात्म सुभम समग्र बातों को सहज अभिव्यक्ति प्रदान की है।[25] माधुर्य की यह धारा मीरा काव्य में आद्यंत प्रवाहित रहती है।

निष्कर्ष :

कहा जा सकता है कि पति भाव से ही मीरा ने अपने आराध्य की पूजा की। मीरा की रचना में भगवान कृष्ण की लीला संबंधी माधुर्य-भाव को अभिव्यक्ति वाले पद ही सर्वाधिक प्रामाणिक माने जा सकते हैं। कारण यह है कि मीरा के संबंध में जो प्राचीन उल्लेख प्राप्त होते हैं, उनमें कृष्ण लीला का गान और माधुर्य भाव की भक्ति का स्पष्ट उल्लेख है। मीरा के कंठ से नि:सृत पदों में रसिक शिरोमणि भगवान श्री कृष्ण की लीला का ही गान है और मीरा ने इन पदों में गोपी भाव अथवा कांता भाव या माधुर्य भाव की भक्ति और प्रेम की अभिव्यक्ति की है। ❑

संदर्भ सूची :

1. डॉ. कृष्णदेव शर्मा, मीरा की काव्यकला, प्र.सं - 1972, पृ. 181
2. भगवानदास तिवारी, मीरा की भक्ति और उनकी काव्यसाधना अनुशोलन, प्र.सं - 1974, पृ. 293
3. पातंजल योगसूत्र, समाधिपाद, 46
4. पातंजल योग सूत्र, कैवल्यपाद, 32, 34
5. डॉ. राजना-पाल, मीराबाई की पदावली, पद - 11
6. मीराबाई की पदावली, पद. 143
7. डॉ. ज्ञानी देवी गुप्ता का 'मीराँबाई के काव्य में चित्रित राजनीतिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि' शोध पत्र पृ. 2 issn 227-4632 vol. 2 august 2021.
8. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं पर्यिास्वजाते
   तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्यनष्नत्रन्यो अभिचाकषीति।
   -श्वेताश्वतरोपनिषद, अध्याय 4, मंत्र 6
9. डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल, हिन्दी काव्य में प्रेम भावना, सं - 1976 पृ. 280.
10. भाई सांवरे रंग राची
    साज सिगार बाँध पग घूँघरू, लोक-लाज तज नाची
    पद: 19.
11. बिन्द्रावन की कुंज द्वलिन में, द्वहे लीणो मेरो हाथ
    दध मेरो खायो, मट किया फेरी, लीणो भुज भर साथ
    वही - पद - 175.
12. प्रेमनी, प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी।
    जल जमुना मां भरवां गयांतां हती गागर माथे हेमनी रे।
    काचे ने तातणे हरिजीए बाँधी, जिम खेंचे तेम तेमनी रे।
    मीरा के प्रभु गिरधर नागर, शामली सूरत शुभ एमनी रे। वही - पद: 172

13. म्हारो ओ-लिया घर आज्यो जी।
    तणरी ताप मिदयां सुख पास्यां, हिमचल मंगल गा ज्यो जी।
    धणरी, धुण सुण मोर मगण भयां म्हारे आँगण आ ज्यो जी।
    चंदा देख कमोदण फूलां, हरख भयां म्हारे छा ज्यो जी।
    रोम रोम महारो सीसज सजणी, मोहन आंगण आज्यो जी।
    सब भंगतारां का रज साधां, म्हारा परण निभाज्यो जी।
    मीरा विरहिण गिरधर नागर, मिल दुःख दर्द छाज्यो जी।
    मीरा की पदावली, पद - 118
14. विष्णु पुराण: 1/20/19
15. स्वामी विहारिणी दास: सिद्धान्त के दोहे, ह.लि.प्रति
16. मीरा की पदावली, पद: 41
17. जोगिया से प्रीत कियां दुःख होइ।
    प्रीत कियां न मीरा सजनी, जोगी मित न कोई।
    रति दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियां बिनि मोइ।
    ऐसी सूरत या जग मांही फेरि न देखी सोइ।
    मीरा रे प्रभु कवरे मिलोगे, मिलियां आणंद होइ। पद: 53
18. स्वामी आनन्द स्वरूप, मीरा सुधासिन्धु , प्र-सं - 1956 पृ: 123.
19. जोगी मत जा, मत जा, पाइ परूं मैं तेरी चेरी हौ।
    प्रेम भगति करे पैडों न्यारा, हमकूँ गैल बता जा।
    अगर चंदण की चिता गणाऊं, ऊपणे हाथ जला जा।
    जल बल भई भसम की देरी, अपणे अंग लगा जा।
    मीरा कहें प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा।
    मीरा पदावली, पद - 46, 53, 54, 58.
20. कै तो जोगी जग में नहीं, कैर बिसारी सोइ
    कांइ करन कित जाऊंरी सजनी नैण गमायो रोइ।
    अराति तेरी अन्तरि मेरे, आवो अपनी जाणि।
    मीरा व्याकुल विरहिणी रे, तुम बिनि तत्फनि प्राणी।
    मीरा पदावली, पद: 44.
21. मैं तो जाणू संग चलेगा, छाडि गया अधबिच।
    आत न दीसे जान न दीसे जोगी किसका मीत।
    मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, चरण न आवे चीत।
    मीरा की पदावली, पद: 55
22. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, सं - 1907, पृ: 37
23. डॉ. माधुरी नाथ, मीरा काव्य का गीतिकाव्यात्मक विवेचन, सं - 1990, पृ: 127
24. डॉ. राजनाग पाल, मीरा पदावली, पद - 22
25. डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागर, मीराबाई, सं -1990, पृ: 48-48
26. पद्मावती शबनम, मीरा-बृहत् पद संग्रह, प्र. सं - 1952, पृ: 20

दृष्टिकोण

अरुण कमल एवं समीर ताँती की कविताओं में चित्रित समाज के विविध पक्ष

रूबी मणि दास

शोधार्थी, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय
मो. 7637856100
ई-मेल : rubimoni345@gmail.com

सारांश :

कविता हमारे मन के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए सबसे अच्छा साधन है। मन के भावों को कवि शब्दों के सहारे कागज पर उकेरता है। आजकल कविता सिर्फ मनोरंजन का ही साधन मात्र नहीं है। वर्तमान समय में कविता समकालीन जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं को सामने लाती है। समकालीन जीवन की विसंगतियों तथा विडंबनाओं को तो हर आदमी महसूस करता है, लेकिन उसे व्यक्त करने में आम आदमी असमर्थ है। कवि इन्हीं भावनाओं को शब्दों में पिरोकर लोगों तक पहुँचाता है। हिंदी साहित्य के समकालीन कवि अरुण कमल और असमीया साहित्य के समकालीन कवि समीर ताँती ऐसे दो कवि हैं, जिन्होंने सामाजिक विडंबनाओं को बहुत ही नजदीक से महसूस किया और उन्हें शब्दों के माध्यम से कविता का आकार दिया।

बीज शब्द : कविता, समकालीनता, विविध पक्ष।

1. प्रस्तावना :

जीवन की बिखरी अनुभूतियों को समेट कर जब कवि उन्हें शब्द और अर्थ के माध्यम से एक कलापूर्ण रूप देता है, तभी काव्य का जन्म होता है। कविता कवि के भाव-अनुभूति की संश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति होती है। समकालीन हिंदी कविता में कवियों को अपने परिवेश, समाज के प्रति यथेष्ट सजग देखा जाता है। परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न सामाजिक और आर्थिक विषम परिस्थितियों ने साधारण जनता की कमर तोड़ दी है, जिसकी यथार्थता की कटुता का चित्रण समकालीन कवियों ने अपनी कविता में की है। समकालीन कवियों ने अपनी वाणी से समाज में फैले अराजकता पर तीखा प्रहार कर एक नवीन समाज के निर्माण की चेष्टा की है।

2. अध्ययन का महत्व :

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी एवं असमीया काव्य के क्षेत्र में समय-समय पर विचारों में अनेक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के कारण कविता का विषय भी

बदलता गया और कवि की जीवन दृष्टि भी बदलती गई। कवि देश, समाज को लेकर अधिक सचेत होते गए। कवि अपनी कविता और रचनाओं के माध्यम से लोगों को समाज में फैले सामाजिक, राजनीतिक अराजकता और विशृंखलता के प्रति जागरूक करना चाहते थे। अरुण कमल और समीर ताँती ऐसे ही दो समकालीन कवि हैं, जो अपने समाज के प्रति जागरूक हैं, जो आम जनता के सुख-दुख से परिचित हैं; क्योंकि कवि भी आज के समाज में ही वास करता है।

3. अध्ययन का शीर्षक :

प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक है 'अरुण कमल एवं समीर ताँती की कविताओं में चित्रित समाज के विविध पक्ष।'

4. अध्ययन का उद्देश्य :

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य हिंदी तथा असमीया साहित्य जगत के इन दोनों श्रेष्ठ कवियों की कविताओं में चित्रित समाज के विविध पक्षों का अध्ययन करना रहा है। दोनों ही कविओं ने अपने-अपने समय से जुड़ी समाज की विविध समस्याओं का चित्रण अपनी कविताओं में किया है।

5. अध्ययन का सीमांकन :

प्रस्तुत अध्ययन के लिए समीर ताँती द्वारा लिखित काव्य संग्रह 'कदम फुलार राति', 'सेउजीया उत्सव' और अरुण कमल द्वारा लिखित काव्य संग्रह 'सबूत' तथा 'अपनी केवल धार' को लिया गया है।

6. अध्ययन में व्यवहृत पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है। यह लेख MLA (Modern Language Association) शोध पद्धति के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन की प्रस्तुति में अरुण कमल और समीर ताँती से जुड़े विभिन्न प्रकार के संकलन ग्रंथ तथा पत्रिकाओं की सहायता ली गई है।

7. विश्लेषण एवं निर्वचन :

समय अपनी एक विशेष पहचान रखती है। साहित्य में समय की यही पहचान प्रतिफलित हुई दिखाई देती है। किसी भी समय से जुड़ी विशेष परिस्थिति, चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक हो या आर्थिक-इन परिस्थितियों का ज्ञान उस समय के साहित्य से प्राप्त होता है। स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी साहित्य की कविता के क्षेत्र में कई नए आयामों का विकास हुआ और इन आयामों को कई नामों से अभिहित किया गया।

समकालीन कविता, आधुनिक हिंदी कविता की एक ऐसी धारा है, जिसका संबंध जनजीवन से है। समकालीन कविता जनसाधारण के दैनिक जीवन से जुड़ी अनुभूतिओं

और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करती है। समकालीन कविता के कवियों ने स्वतंत्र भारत में साँसें ली थीं, लेकिन यह स्वतंत्रता अनेक मायनों में पूर्ण नहीं थी। अनेक विसंगतिओं से भरी हुई थी। इन्हीं विसंगतियों को दूर करने के लिए समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं का आश्रय लिया। समीर ताँती और अरुण कमल ऐसे ही दो समकालीन कवि हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं में समाज में फैली विसंगतियों का यथार्थ चित्रण किया है।

7.1 अरुण कमल की कविताओं में चित्रित समाज के विविध पक्ष :

सन् 1980 के आसपास हिंदी कवियों की जिस विशेष जमात ने अपनी दंतुरित मुस्कान बिखेरी थी, उसमें अरुण कमल अपनी जीवनोन्मुखी परंपरा बोध और जनपक्षधर संघर्ष-चेतना से अलग पहचाने गए थे। अरुण कमल की कविताओं की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यहाँ कुछ भी नितांत निजी या निपट सामाजिक नहीं है। व्यक्ति और समाज दोनों उनकी कविताओं में मिल गए हैं। छोटे से छोटे विषय पर लिखी गई कविताएँ अपने अर्थों को दूर तक प्रक्षेपित करती हैं। समीर ताँती की कविताएँ केवल असम प्रांत तक ही सीमित हैं, उन्होंने पूरे देश में घटित घटनाओं को लेकर कविताएँ नहीं लिखीं, पर अरुण कमल की कविताएँ समकालीन हिंदी कविता को एक नया स्वर प्रदान करती हैं। उनकी कविताएँ वर्तमान देश की व्यवस्था के विरुद्ध संघर्षशील मानव के पक्ष में हैं, जीवन के पक्ष में हैं। अरुण कमल की कविताओं में व्यवस्था के खिलाफ गुस्सा है तथा समाज में फैली विषमताओं पर तीखा प्रहार है। 'सबूत' अरुण कमल द्वारा लिखित दूसरा काव्य संग्रह है, जिसे 'अपनी केवल धार' का परिपक्व रूप कहा जा सकता है। डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र का कथन है-

'सबूत' समकालीन जीवन में घनघोर घटाटोप बनकर छाए अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न और अधिनायकवादी प्रवृत्तियों के अस्तित्व का सबूत पेश करता है।

(मिश्र 2011:196)

7.1.1 विद्रोह की भावना :

अरुण कमल की कविताओं में व्यवस्था के खिलाफ गुस्सा तथा समाज में फैली विषमताओं पर तीखा प्रहार है। उनके 'सबूत' काव्य संग्रह की 'जीवधारा' नामक कविता में स्थानीय बोध की झलक देखने को मिलती है-

बज रही है धरती
हजारों तारों वाले वाद्य-सी बज रही है धरती
चारों ओर पता नहीं कितने जीव-जंतु
बोल रहे हैं हजारों आवाजों में
कभी मद्धिम कभी मन्द्र कभी शांत।

(कमल 2004:12)

'उत्सव' नामक कविता में कवि कहते हैं कि आजकल गुंडों, हत्यारों का ही बोलबाला है, सरकार भी इन्हीं लोगों के इशारों पर चलती है। कानून को हाथ में लेकर दूसरों पर अधिनायक की तरह अत्याचार, उत्पीड़न करने वालों की यहाँ कमी नहीं है -

देखो हत्यारों को मिलता
राजपाट सम्मान
जिनके मुहँ में कौर मांस का
उनको मगही पान। (कमल 2004:62)

'बोलना' नामक कविता में कवि कहते हैं कि वर्तमान समाज ताकतवर लोगों का है। ताकतवर यानी जो लोग पैसेवाले हैं, शासन व्यवस्था के उच्च पदाधिकारी हैं। ऐसे लोग सिर्फ इशारा करते हैं और उन लोगों के इशारों से ही सब काम हो जाता है। साधारण जनता की हालत आज के समाज में बहुत दयनीय होती जा रही है-

जो जितना ताकतवर है उतना ही कम
बोलता है
हाथ से इशारा करता है
ताकत है
और चुप्प रहता है। (कमल 2004:53)

'धार' नामक कविता में कवि कहते हैं कि यह जीवन ही उधार का है, यहाँ उन्हीं लोगों का बोलबाला है, जो ताकतवर हैं। कवि के अनुसार हमने तो सभी से कुछ-न-कुछ ग्रहण किया है-

अपना क्या है इस जीवन में
सब तो लिया उधार
सारा लोहा उन लोगों का

अपनी केवल धार। (कमल 2006:88)

7.1.2 नारी की स्थिति :

उनके 'सबूत' काव्य संग्रह की कविता 'एक बार भी बोलती' में अरुण कमल ने एक आम हिंदुस्तानी औरत की जीवन गाथा को प्रस्तुत किया है। एक आम औरत अपने पति द्वारा बोली गई हर बात को सुनती है। पति अगर बेवजह गुस्सा भी करे, लोगों के सामने भला-बुरा भी कहे तो भी आम हिंदुस्तानी औरत इसका विरोध नहीं करती है। नि:शब्द रहकर पति की हर आज्ञा का पालन करने वाली एक भारतीय महिला की तस्वीर यहाँ अरुण कमल द्वारा चित्रित है -

मैंने उसे इतना डाँटा गालियाँ दी
दो तीन बार पीटा भी
फिर भी वह चुपचाप
सारा काम करती गयी। (कमल 2004:18)

'कल्याणी' नामक कविता में कवि ने घर की एक नौकरानी की बात कही है, जिसके साथ घर की बहुएँ पीड़ादायक मजाक करती हैं। उसका रिश्ता बहुएँ अपने भाई या देवरों के साथ जोड़ती हैं। नौकरानी अपनी वेदना को मन में छिपा कर सब सहती रहती है-

कल्याणी कल्याणी
आया है मेरा मँझला भाई
उसी से होगी तेरी शादी कल्याणी।
(कमल 2006:77)

7.1.3 मातृभूमि के प्रति प्रेम :

'उम्मीद' नामक कविता में कवि कहते हैं कि चाहे अकाल हो, चाहे बाढ़ आए या फिर तूफान आए-लोग सब कुछ ठीक होने की उम्मीद लगाए अपनी मातृभूमि को छोड़कर कही नहीं जाते। यह लोगों की अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम ही है, जो उन्हें अपनी मिट्टी से अलग नहीं होने देती -

आजतक मैं यह समझ नहीं पाया
कि हर साल बाढ़ में
पड़ने के बाद भी लोग दियारा छोड़कर कोई
दूसरी जगह क्यों नहीं जाते ? (कमल 2004:25)

7.1.4 गरीबी :

जो लोग बेघर होते हैं, जिनके पास खुद की कोई जमीन नहीं होती, अपना कोई घर नहीं होता, जो लोग इधर-उधर भटकते रहते हैं, उनके बारे में कवि ने 'स्वगत' नामक कविता में कहा है कि-

कहाँ जाएंगे वे लोग
जिनका कहीं कोई घर नहीं
कहीं कुछ भी स्थिर नहीं ?
जहाँ कहीं जल मिले थोड़ी सी
मिट्टी उग जाए वहीं। (कमल 2004:75)

'धनतेरस' नामक कविता में कवि कहते हैं कि त्योहार आने पर अमीरों के घर में खुशी का माहौल होता है, लेकिन गरीबों के घर में सिर्फ दुख और लाचारी होती है। धनतेरस एक ऐसा उत्सव है, जहाँ अमीर लोग अपने घर को सजाते हैं, नए-नए बर्तन लाते हैं, वही गरीब अपने घर का आखिरी बर्तन भी बेचने जाते हैं-

आज धनतेरस है
नये-नये बर्तन खरीदने का दिन
और आज ही हम अपने आखिरी बर्तन लिये
घूम रहे हैं दुकान-दुकान। (कमल 2004:35)

'अपनी केवल धार' कविता संग्रह की 'यात्रा' शीर्षक कविता में कवि ने एक मजदूर की कथा कही है, जो पंजाब मेल में यात्रा कर रहा है। वह आजीविका हेतु अपना गावँ छोड़कर पश्चिम बंगाल में मजदूरी करने के लिए मजबूर है-

जलंधर का एक मजदूर
जा रहा है वापस फिर काम पर
छुट गया है मुल्क बहुत दूर
बस तलवों में बाकी है
थोड़ी-सी धूल पंजाब की। (कमल 2006:12)

7.1.5 सामाजिक आडंबर :

'स्थिति' नामक कविता में बेटे को जलाकर आए हुए एक वृद्ध की करुण गाथा कही गई है। वर्तमान समाज की अवस्था ऐसी हो गई है, जहाँ किसी के भी जीवन का कोई भरोसा नहीं, मौत, हत्या आदि आज के लिए एक सामान्य घटना हो गई हैं। लोग आवेगहीन होते जा रहे हैं, इस कविता में एक ऐसे वृद्ध की कथा कही गई है जो अपने जवान बेटे को अग्नि देकर आता है, सब लोग खा-पीकर अपने-अपने घर जाने के लिए तैयार हो गए,

लेकिन किसी ने भी यह नहीं सोचा कि उस वृद्ध की क्या हालत हो रही है, वह किस दुख की अग्नि में जल रहा है –

कोई तैयार नहीं
कोई भी तैयार नहीं बैठने को उसके पास जो अग्नि देकर
आया है और सफेद मलमल में लिपटा
कोने में पड़ा है चुपचाप। (कमल 2004:55)

7.1.5.1 सामाजिक अराजकता :

'एक दिन' नामक कविता में कवि वर्तमान समाज में फैली मौत की विभीषिका के विषय में कहते हैं कि किसी की हत्या करना आज साधाराण-सी बात हो गई है–

आज का दिन बहुत खराब रहा
आज मैंने बहुत डरावना संसार देखा
रोज कितने आराम से
चलता चला जाता था दूर तक टहलता
आज क्या हुआ कि घने कुहासे में मेरे पाँव
एक बूढ़ी औरत की लाश में फँस गये
आज मैंने एक बाप को
मरा हुआ बच्चा बिना कफन के गंगा में फेंकते देखा।
(कमल 2004:70)

'ऐसा क्यों हो रहा है' नामक कविता में कवि ने अमानवीयता तथा हृदयहीनता की तस्वीर को उजागर किया है। सामने सड़क पर एक औरत की इज्जत लूटी जा रही है, बगल में एक आदमी का खून हो रहा है; लेकिन लोग चुप हैं, सब देख रहे हैं; लेकिन किसी के पास अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की ताकत नहीं है–

सामने सड़क पर एक औरत की इज्जत जा रही है
और लोग अपने-अपने ओटों पर खड़े हैं चुपचाप
ऐसा क्यों हो रहा है
बगल में एक आदमी का खून हो रहा है
और लोग अपने-अपने दरवाजे बंद कर सुन रहे हैं
चुपचाप। (कमल 2004:59)

7.1.5.2 विश्वासहीनता की स्थिति :

आज के जमाने में कोई किसी पर विश्वास नहीं करता, सभी अपने स्वार्थ की सिद्धि में लगे रहते हैं, इसका चित्रण कवि ने 'उल्टा जमाना' नामक कविता में किया है –

ऐसा जमाना आ गया है उल्टा
कि कोई तुम्हें रास्ता बतावें तो शक करो
वह तुम्हें लूट सकता है सुनसान पाकर
कोई तुम्हें रात में सोने की जगह दे तो सोचो
तुम्हारा खून कर सकता। (कमल 2004:67)

7.1.6 प्राकृतिक सम्पदाओं का संरक्षण :

आधुनिकता की ओर बढ़ते हुए लोग अपनी ही चीजों को नष्ट कर रहे हैं, अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए प्रकृति का दुरुपयोग कर रहे हैं, इसका उल्लेख अरुण कमल ने 'इक्कीसवीं शताब्दी की ओर' कविता में किया है–

हर नदी का घाट श्मशान
हर बगीचा कब्रिस्तान
बन रहा है
और हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर जा रहे हैं ।
(कमल 2004:76)

कवि ने ऐतिहासिक स्थलों के संरक्षण और देखभाल तथा सुरक्षा पर जोर दिया है; क्योंकि ये सब मानव सभ्यता के चिह्न हैं। नई पीढ़ी का दायित्व है कि वह अपनी सभ्यता, संस्कृति से जुड़े चिह्नों की रक्षा करे –

कहीं कोई मीनार झुक रही है
नोनी लग रही है दीवारों में
भसक रही हैं ईंटें
अंधड़ पानी में नष्ट हो रहे हैं
हजारों साल पुरानी सभ्यता के अंतिम अवशेष।
(कमल 2004:30)

7.1.7 विध्वंसक तत्वों का विरोध :

अरुण कमल समाज के प्रति एक जागरूक कवि हैं। उन्होंने ऐसी सभी चीजों का विरोध किया है, जो समाज के हित में न हो। भले ही आज ऐसे कई सारे वैज्ञानिक साधनों के आविष्कार हुए हैं, जिनसे लोगों का जीवन सुविधाजनक बन गया है; लेकिन अरुण कमल ऐसे वैज्ञानिक आविष्कारों का विरोध करते हैं, जिनसे समाज या किसी का भी हित नहीं होता। ऐसे वैज्ञानिक साधन

किसी काम के नहीं, जिनसे केवल लोगों की हानि होती है। 'दु:स्वप्न' नामक कविता में उन्होंने विध्वंसकारी न्यूटन बम के बारे में कहा है –

कोई आवाज नहीं
कहीं कोई नजर नहीं आता
आधा दिन बीत गया
कहीं कोई चिड़िया का पूत नहीं। (कमल 2004:84)

7.2 समीर ताँती की कविताओं में चित्रित समाज के विविध पक्ष :

समीर ताँती का जन्म असम के मिकिरचांग चाय बागान में हुआ था। उनके पिता चाय बागान में काम करने वाले मजदूर थे। समीर ताँती के पिता कालाहांडी के रहने वाले थे और माता संबलपुर की। ब्रिटिश सरकार द्वारा वर्तमान समय में आदिवासी और पिछड़ी जातियों के वर्चस्व वाले क्षेत्रों- झारखंड, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, तेलंगाना और छत्तीसगढ़ से 1860-90 के दशक में कई चरणों में लोगों को चाय बागान और चाय उद्योग में मजदूरी करने के लिए लाया गया था। समीर ताँती के पितामह, पिता, माता सब ब्रिटिश सरकार द्वारा ही असम में लाए गए थे। समीर ताँती अनुसूचित चाय जनजाति के हैं। उन्होंने बचपन से ही चाय बागान में काम करने वाले मजदूरों, श्रमिकों पर हुए शोषणों, अत्याचारों को अपनी आँखों से देखा है। चाय बागानों के बड़े अफसर मजदूरों पर जानवरों जैसा व्यवहार करते थे। बीमार होने पर भी मजदूरों को काम करना पड़ता था। मजदूरों को किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। समीर ताँती, जो खुद भी एक मजदूर परिवार से संबंधित व्यक्ति हैं, मजदूरों पर हुए इन अत्याचारों को भलीभाँति अनुभव करते हैं। समीर ताँती द्वारा लिखित कविताओं में चाय बागान, चाय बागानों की हरियाली, मजदूरों का जीवन, उत्सव आदि का सजीव चित्रण मिलता है। चाय जनजातीय समाज की स्पष्ट झाँकी हमें उनके द्वारा लिखित कविताओं में देखने को मिलती है।

7.2.1 जनजातीय जीवन का चित्रण :

समीर ताँती द्वारा लिखित 'कदम फुलार राति' और 'सेउजीया उत्सव' नामक काव्य संग्रह में हमें चाय जनजातीय जीवन शैली का आभास मिलता है। इन काव्य संग्रहों में कवि ने चाय जनजाति के लोग किस प्रकार दुख, कष्ट भोगने के लिए मजबूर हैं, किस तरह बड़े-बड़े अफसर उनका शोषण, दमन करते हैं, दुख, गरीबी, बीमारी से किस प्रकार उनका जीवन जर्जर है – इन सभी बातों को उजागर किया है। चाय जनजाति के लोग अपने ऊपर हुए इन अत्याचारों के खिलाफ आवाज

नहीं उठाते, शोषण के खिलाफ विद्रोह नहीं करते। चाय जनजाति के लोग अपने ऊपर हुए सभी अत्याचारों को नीरव होकर सहते रहते हैं। समीर ताँती की कविताओं में प्रतिफलित चाय जनजातीय लोगों के जीवन को निम्नाकिंत बिंदुओं के आधार पर दिखाया जा सकता है-

7.2.1.1 चाय मजदूरों का जीवन :

समीर ताँती द्वारा लिखित काव्य संग्रह 'कदम फुलार राति' के 'मइ एक चाह मजदूर' नामक कविता में उन्होंने कहा है-

मइ एक चाह मजदूर
सेउजीयार आंधारत जन्म। (ताँती 2014:26)

(अर्थात कवि कहते हैं कि मैं एक चाय बागान में काम करने वाला मजदूर हूँ, जिसका जन्म हरी चाय पत्तों के अंधकार में हुआ है। कवि कहना चाहते हैं कि चाय बागान में जन्म लेने वालों का जीवन अंधकारमय होता है।)

मजदूरों के दयनीय जीवन को लेकर उन्होंने 'ईश्वर वंदना' नामक कविता में अपने भावों को इस प्रकार व्यडक्त किया है-

प्रभु
आमार भोकर बाबे दाय-दोष नधरिबा
आमि उपजिलो आमार भोकत
निमखर दरे चाहत गलिबले
आमार बाबे एता आंधार गड़ाल
आमि तात थाकिम गाहरि कुकुरर दरे
आमितो मरिबले बर सहज। (ताँती 2014:21)

(इन पंडिक्तयों से कवि का आशय है कि हे प्रभु, हमारी भूख के लिए अगर कोई भूल-चूक हो जाए हमसे तो हमें क्षमा करना, हमारा जन्म ही भूख में हुआ है। हम तो नमक की तरह चाय में यानी सभी परिस्थितियों में घुल जाते हैं। हमारे लिए तो एक पिँजरा ही काफी है, जिसमें सूअर, कुत्ते की तरह हम रहते हैं। हमारी मृत्यु भी बड़ी सहज है, क्योंकि हमारे मरने से किसी की कोई हानि नहीं होती।)

7.2.1.2 शोषण :

कवि समीर ताँती ने 'चाह बागिचा तोमार रोटि' नामक कविता में कहा है- चाय मजदूर केवल अपने पेट की भूख मिटाने के लिए दिन-रात कारखानों में काम करते हैं। कारखानों में काम करते हुए अपने प्राणों की आहुति देते हैं। शोषक श्रेणी के वाणिज्यिक लाभ के लिए चाय मजदूर अपना सब कुछ त्याग देते हैं-

कलघरर धुँवात धुखर एकोटा दिन
तोमार कामिहाड़त कलघरर उखाह
चाह बागिचा तोमार रोटि
तुमि चाह बागिचार माटि। (ताँती 2014:33)

'एखिला पात सेउजीया' नामक कविता में भी समीर ताँती ने चाय मजदूरों पर हुए शोषण का चित्रण किया है-

कलघर कलघर
सिँचरित हाड़-मङह
बाकचे बाकचे। (ताँती 2014:11)

(अर्थात् मजदूर चाय बागानों से चाय की पत्ती तोड़कर लाते हैं, कारखानों में उसे बना के पीने लायक किया जाता है और बक्सों में भराया जाता है। कवि कहते हैं कि उन बक्सों में चाय पत्तियों के स्थान पर लाखों मजदूरों के हाड़-मांस हैं, यानी उनका श्रम है।)

7.2.1.3 गरीबी :

'उरेनिशा चाह बागिचार माजेरे' नामक कविता में कवि ने चाय जनजाति की दरिद्रता का चित्रण किया है। चाय बागानों में काम करके जीवन यापन करने वाले इन लोगों का जीवन किस प्रकार गरीबी, बीमारी से जर्जर है - इसका प्रतिफलन इस कविता में हुआ है -

गभीर आवेदन
आरु तेजर नीरवता
विवर्ण बाट आरु विधवार हुमुनियाह
असुस्थ कुकुर आरू असुस्थ शिशु।
(ताँती 2014:15)

(अर्थात चारों तरफ केवल दुख और बेबसी है, एक तरफ विधवा का दुख है तो दूसरी तरफ बीमार संतान। अपने दुखों को दूर करने के लिए इनके पास कोई साधन नहीं है। इन लोगों के सामने सिर्फ काँटों से भरा हुआ एक पथ है।)

7.2.1.4 चाय जनजाति के उत्सवों का चित्रण :

असमीया साहित्य जगत के समकालीन कवि समीर

ताँती ने चाय जनजाति से जुड़े विविध उत्सव, पूजा आदि का उल्लेख अपनी कविताओं में किया है। टुसु पूजा चाय जनजाति द्वारा मनाया जाने वाला एक विशेष उत्सव है, जो पूस या माघ महीने में मनाया जाता है। इस उत्सव में चाय जनजाति के लोग टुसु देवी की पूजा करते हैं। चाय जनजाति के लोग टुसु देवी को प्रेम, त्याग, दया और सदाचार का प्रतीक मानते हैं। इस उत्सव का उल्लेख समीर ताँती ने 'तुसु संध्या आरति ल'वा' नामक कविता में किया है-

चोताल मचि दिलो
आल्पना आँकि दिलो
हियात जलालो चाकि
आमार दाय-दोष नधरिवा
तुसु संध्या आरति ल'वा। (ताँती 2014:28)

(अर्थात कवि कहते हैं कि मैंने आँगन की सफाई करके एक सुंदर रंगोली बनाई है। हृदय में भक्ति रूपी दीपक जलाया है। अगर कोई भूल-चूक हो जाए तो क्षमा करना।)

'कि सुर बजालि' नामक कविता में कवि ने चाय जनजाति के लोगों द्वारा प्रदर्शित झुमुर नृत्य का चित्रण किया है। झुमुर नृत्य चाय जनजाति के युवाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है-

कि सुर बजालि
उछव हल राति
देह माताल मन माताल
मोहित माटि। (ताँती 2012:8)

(अर्थात् कवि कहते हैं कि यह कैसा सुर है, जिससे रात में भी उत्सव जैसे परिवेश का आभास हो रहा है। इस सुर का नशा शरीर, मन सब में छाने लगा है। धरती भी मोहित हो गई है।)

7.2.1.5 चाय बागान के प्रति प्रेम :

समीर ताँती की कविताओं में चाय बागानों के प्रति अत्यंत लगाव है और यह स्वाभाविक भी है; क्योंकि कवि का जन्म ही चाय बागान में हुआ था। उनका बचपन चाय बागान में खेल-कूद कर ही बीता था। चाय पत्तों की हरियाली, चाय पत्तों की मधुर सुगंध कवि के हृदय में समाई हुई है। इसकी झलक हमें 'एखिला पात सेउजीया' नामक कविता में देखने को मिलती है-

एखिला पात सेउजीया
निशा सेउजीयार। (ताँती 2014:11)

(अर्थात कवि कहते हैं कि चाय पत्ते का रंग हरा है और मुझमें इस हरे रंग यानी चाय पत्तों का ही नशा छाया हुआ है।)

'उपजियेइ सेउजीया' नामक कविता में भी हम कवि का चाय बागानों के प्रति निहित प्रेम को देख सकते हैं-

उपजियेइ सेउजीया
आइ, तोमार लावणी काया। (ताँती 2012:62)

(अर्थात कवि कहते हैं कि मेरा जन्म चाय बागानों की हरियाली के बीच हुआ है। मैंने जन्म से ही चाय पत्तों की हरियाली को देखा है। कवि ने चाय बागान को माँ के रूप में संबोधित कर कहा है कि हे माँ, तुम्हारा यह स्वरूप हृदय को मोह लेने वाला है।)

7.3 तुलनात्मक विश्लेषण :

उपर्युडक्त विवेचन से हम कह सकते हैं कि 'सबूत' और 'अपनी केवल धार' काव्य संग्रहों की कविताओं से यह बात स्पष्ट होती है कि अरुण कमल की दृष्टि से साधारण आदमी, औरत, वृद्ध कोई भी ओझल नहीं हुआ है। दुख एवं गहरी करुणा उनकी कविता में देखने को मिलते हैं। उनके ये काव्य संग्रह वर्तमान समाज में व्याप्त अत्याचार, विसंगति, भ्रष्ट शासन व्यवस्था आदि के ही सबूत हैं, जहाँ आम आदमी हर दिन पीसता रहता है।

इसके विपरीत समीर ताँती की कविताओं में हमें सिर्फ असम के चाय जनजाति के जीवन से जुड़े विविध पक्ष देखने को मिलते हैं। उनकी कविता संपूर्ण समाज में फैली अराजकता का चित्रण नहीं करती। समीर ताँती द्वारा रचित 'कदम फुलार राति' और 'सेउजीया उत्सव' शीर्षक कविताएँ केवल चाय जनजातीय लोगों के दुख-दैन्य को दर्शाती हैं। कवि कहते हैं कि आज भी कवि का मन गोलाघाट जिले के मिकिरचांग चाय बागान की झाड़ियों के बीच ही घूमता रहता है, जहाँ उनका जन्म

हुआ और जहाँ वह बड़े हुए। सूरज की धूप में कड़ी मेहनत करने वाले मजदूरों के जले चेहरे, झुमुर नृत्य और मादल की दिलकश आवाज ये सभी समीर ताँती के मन में निहित हैं। इन भावनाओं को उन्होंने अपने काव्य - संग्रह 'कदम फुलार राति' तथा 'सेउजीया उत्सव' में स्थान दिया है।

8. उपलब्धियाँ :

8.1 हिंदी साहित्य के प्रमुख समकालीन कवियों में अन्यतम श्रेष्ठ कवि हैं - अरुण कमल ।

8.2 समीर ताँती असमीया साहित्य जगत के प्रख्यात कवि तथा लेखक हैं।

8.3 कविता कवि की भाव-अनुभूति की संश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति होती है।

8.4 दोनों कवियों की कविताओं में भावों की गहनता देखी जाती है।

8.5 समीर ताँती विशेषत: चाय बागान के समाज से जुड़े हुए हैं।

8.6 कवि अरुण कमल की कविताओं में समाज के हर वर्ग के साथ समाज से जुड़ी सभी स्थितियाँ उभर कर आई हैं।

9. निष्कर्ष :

अरुण कमल का काव्य संग्रह 'सबूत' और 'अपनी केवल धार' यथार्थ की भूमि पर लिखी गई हिंदी साहित्य की अनुपम कृतियाँ हैं तथा असमीया साहित्य जगत के प्रभावशाली कवि 'समीर ताँती' द्वारा रचित काव्य संग्रह 'कदम फुलार राति' और 'सेउजीया उत्सव' की कविताएँ भी असमीया साहित्य में विशेष महत्व रखती हैं। इन चारों काव्य संग्रहों में संग्रहीत कविताओं में युगीन जीवन के विविध आयामों पर दृष्टि रखी गी है। 'कदम फुलार राति' और 'सेउजीया उत्सव' में जहाँ चाय जनजाति के सुख-दुख का आकलन किया गया है, वहीं 'सबूत' और 'अपनी केवल धार' में कवि अरुण कमल ने देश की आम जनता के सुख-दुख तथा भावनाओं का आकलन किया है। ❑

टिप्पणी :

प्रस्तुत शोध-पत्र में असमीया भाषा की कुछ कविताओं की पंक्तियाँ दी गई हैं। असमीया भाषा में 'स' उच्चारण वाले दो वर्ण हैं-'च' और 'छ'। असमीया भाषा में 'स' के लिए कोमल 'ह' का उच्चारण होता है। असमीया के 'स', 'च' और 'छ' - इन तीनों वर्णों के लिए हिंदी लिप्यंतरण में क्रमश: 'स', 'च' और 'छ' रखे गए हैं।

ग्रंथ -सूची:

हिंदी ग्रंथ :

कमल, अरुण. सबूत . नवीनतम संस्करण. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004.

कमल, अरुण. अपनी केवल धार. नवीनतम संस्करण. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2006.

मिश्र,सरजू प्रसाद. समकालीन हिंदी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर. प्रथम .कानपुर : अमन प्रकाशन, 2011.

असमीया ग्रंथ:

ताँती, समीर. कदम फुलार राति. परिवर्धित संस्करण. गुवाहाटी : बनलता, 2014 .

ताँती, समीर. खेउजीया उत्सव. द्वितीय. गुवाहाटी : बनलता,2012.

झूठा सच : विभाजन की त्रासदी और स्त्री प्रश्न

पंकज कुमार सहनी

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
तेजपुर विश्वविद्यालय
तेजपुर, असम
फो. 9678843823
ई-मेल : Pankajsahaniz68@gmail.com

सारांश :

आजादी प्राप्ति के पूर्व ही देश सांप्रदायिक शक्तियों की जकड़ में आ चुका था। एक तरफ भारत आजादी के सपने को साकार होता हुआ देख रहा था, वहीं दूसरी तरफ नकारात्मक शक्तियाँ इसे खंडित करने में कामयाबी हासिल कर चुकी थीं। चारों तरफ अफरा-तफरी का मंजर, लाशों से भरी ट्रेनों के आवागमन और विस्थापन के करुण दंश के बीच देश आजाद हुआ था। ऐसे समय में साहित्य की दुनिया में 'झूठा सच' का लिखा जाना निश्चय ही ऐतिहासिक कार्य था, जो उस विभाजन के प्रतिफलन के रूप में उभर कर सामने आया था। यही कारण था कि प्रकाशन के बाद यह उपन्यास अत्यधिक लोकप्रिय एवं चर्चित साबित हुआ। 'झूठा सच' उपन्यास में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिदृश्य का यथार्थपरक चित्रण समाहित है। इसके साथ ही इस उपन्यास में चित्रित युवा-प्रेम संबंध और राजनीतिक चेतना का संगम भी द्रष्टव्य है। उपन्यास के पहले खंड में लेखक की सामाजिक समझ की चरम परिणति हुई है। इस उपन्यास ने अपने वृहत्तर आकार में आजादी के पहले और उसके बाद के सामाजिक स्थिति में बदलाव और राजनीतिक सत्ता के हस्तांतरण को मुख्य विषय बनाया है। लेखक को इस कार्य में अद्वितीय सफलता हासिल हुई है। इस पूरे उपन्यास में कई अलग-अलग सामाजिक आयाम हैं। कुछ मसलों को नजरअंदाज कर दें तो लेखक ने सभी के साथ न्याय करने की पुरजोर कोशिश की है। स्त्री वर्ग की समस्या उपन्यास के महत्वपूर्ण आयाम हैं, जिसके केंद्र में कनक और तारा अवस्थित हैं। इसके आलावा कई और स्त्री पात्र हैं, जिन्हें सामाजिक और सांप्रदायिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। इन्हीं पात्रों के इर्द-गिर्द रहकर लेखक ने गंभीरतापूर्वक सामाजिक संरचना एवं सांप्रदायिकता से उपजी भारत की आधी आबादी के त्रासदपूर्ण जीवन का अंकन किया है।

बीज-शब्द : सांप्रदायिकता, विभाजन, रूढ़ी विचार, स्त्री-प्रश्न, सामाजिक संरचना।

विभाजन की त्रासदी, सांप्रदायिक समस्याएँ, हिंदू-मुस्लिम संबंध के खट्टेपन एवं स्त्री प्रश्न आदि पर रचित 'झूठा सच' उपन्यास अपने वृहत्तर आकार के

साथ दो खंडों में (वतन और देश और देश का भविष्य) विभाजित है। पहले खंड में सन् 1946 से 48 तक के कालखंड का वर्णन है एवं दूसरे खंड में आजादी के दस वर्ष पश्चात तक के त्रासद समय को समेटा गया है। लेखक ने उपन्यास में विभाजन के पहले एवं बाद की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक समस्याओं को दिखाया है। 'झूठा सच' उपन्यास के विषय में शिवकुमार मिश्र लिखते हैं, ''यशपाल ने विभाजन के पहले की उस सारी गंदी राजनीति का, अवसरवाद का, राजनीतिक नेताओं के छद्म का और उसके भीषण परिणामों का एकदम यथार्थ खुलासा इस उपन्यास में किया है। सदियों से साथ-साथ भाइयों की तरह रहने वाले किस तरह एक-दूसरे के दुश्मन हो जाते हैं, एक-दूसरे का खून बहाते हैं, एक-दूसरे की स्त्रियों के साथ बलात्कार करते हैं - मनुष्य की हैवानियत का जीता जागता चित्र यशपाल ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है।''[1] भारत-विभाजन देश की ऐसी दुखद घटना है, जिसका श्रेय सांप्रदायिक शक्तियों को जाता है।

आजादी के बाद लोगों का मोह भंग हो चुका था। सांप्रदायिक दंगे और उसके दुष्परिणाम ने व्यक्ति को अंदर तक तोड़ कर रख दिया था, ''विभाजन में कत्ल, बलात्कार और अत्याचार ही नहीं हुए थे बल्कि ऊपर से साबुत दिखाई पड़ने वाला आदमी भी भीतर से पूरी तरह चटख गया था और उसके सारे विश्वास और मूल्य बर्बरता की आंधी में उड़ गए थे। अपंग, कटे-फटे और रक्तस्नात आदमियों के काफिले तो दोनों और से आए और गए ही थे, पर एक भीषण और उससे भी ज्यादा भयानक रक्तपात आदमी के भीतर हुआ था। दोनों देशों में तो कई लाख आदमी मरे थे, पर जिस आदमी ने इस रक्तपात को झेला और भोगा था, उसके भीतर सदियों में बने और करोड़ों जिंदगियों द्वारा बनाए गए विश्वास का ध्वंस हुआ था। इसीलिए देशों की सीमाएँ पार करने वाले शरणार्थियों से ज्यादा शरणार्थी वे थे, जिनके मानवीय मूल्यों की हत्या हो गई थी।''[2] वास्तव में भारतीय-विभाजन की त्रासदी विश्व इतिहास के क्रूरतम कृत्यों में से एक है। विभाजन ने भारतीय जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किया था। साहित्यकार भी इस घटना से इतर अपने को कैसे रख सकते थे। इस घटना ने लेखकों को न केवल उद्वेलित किया बल्कि उन्हें साहित्य रचना के लिए बहुत प्रेरित किया। साथ ही पर्याप्त सामग्री भी प्रदान की। उस समय के बहुत सारे साहित्यकार ऐसे भी थे, जो विभाजन की त्रासदी के सिर्फ दर्शक मात्र नहीं थे, वे भुक्तभोगी भी थे। उन तमाम साहित्यकारों में इस घटना को ज्यादा यथार्थपरक और मार्मिक रूप में प्रस्तुत करने में उपन्यासकार ही सफल रहे।''साहित्य के इतिहास को राजनीतिक घटनाओं के संदर्भ में देखना कहाँ तक संगत या लाभप्रद है, यह प्रश्न विवादास्पद है। राजनीतिक घटनाओं का भी उस देश के साहित्य पर, तुरत या बाद में, प्रत्यक्ष या परोक्ष, प्रभाव पड़ता ही है। उपन्यास में यह प्रभाव सर्वाधिक दिखाई पड़ता है, क्योंकि यथार्थ से संलग्नता ही उसकी पहचान है। 15 अगस्त, 1947 की तारीख भारतीय इतिहास की एक ज्वलंत घटना इसलिए है कि उसने भारतीय जीवन को झटके के साथ एक ऐसे समय-बिंदु पर खड़ा कर दिया, जहाँ से उसकी प्रकाश-यात्रा आरंभ होती है। पैंतीस करोड़ जनता की औपनिवेशिक शासन से मुक्ति, संसार के सबसे बड़े प्रजातंत्र का जन्म जनता की सामंती शोषण से मुक्ति का लालसा भरा स्वप्न और ऐसी अनेक बातें 15 अगस्त 1947 की तारीख से जुड़ी हुई हैं। 'नियति से मुलाकात' की इस तारीख की, साहित्य के इतिहास में भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।''[3]

उपन्यास में तत्कालीन समस्याओं का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के विषय में स्वयं लेखक का कहना है कि, ''झूठा सच के दोनों भागों- 'वतन और देश' और 'देश का भविष्य' में देश के सामाजिक और राजनैतिक वातावरण को यथासंभव ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में चित्रित करने का यत्न किया गया है। उपन्यास के वातावरण को ऐतिहासिक यथार्थ का रूप देने और विश्वसनीय बना सकने के लिए कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम भी आ गए हैं, परंतु उपन्यास में वे ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं, उपन्यास के पात्र हैं।''[4]

उपन्यास का आरंभ भोला पांधे की गली से होता है। इस गली में रामलुभाया के परिवार एवं अन्य कई हिंदू परिवार रहते हैं। रामलुभाया पेशे से मास्टर जी हैं। पर्याप्त

आय न होने के कारण दिक्कतों के साथ परिवार का भरण-पोषण करते हैं तथा अपने बेटे जयदेव पूरी एवं अपनी पुत्री तारा को शिक्षित बनाते हैं। पूरी उपन्यास के केंद्र में है। सन 42 के आंदोलन में वह जेल यात्रा भी कर चुका है। तारा तमाम आर्थिक, धार्मिक समस्याओं के बावजूद शिक्षित बनना चाहती है। तारा एक प्रौढ़ युवती है। वह असद, सुरेन्द्र के साथ स्टूडेंट फेडरेशन की बैठक में भाग लेती है, जहाँ सामाजिक समस्याओं पर बातचीत होती है। इन बैठकों में विशेषत: हिंदू-मुस्लिम एकता समस्या प्रमुख है।

पूरा उपन्यास हिंदू-मुस्लिम की जीवन गाथा है, परंतु लेखक ने हिंदुओं को केंद्र में रखकर ही उपन्यास को लिखा है। कुछ मुस्लिम पात्र भी आए हैं, परंतु वह नगण्य हैं। उपन्यास में उनका चरित्र बहुत अधिक उभर कर सामने नहीं आया है। उन पात्रों में असद, नब्बू, हाफिज आदि कई पात्र हैं। असद एक कामरेड है, जो हिंदू-मुस्लिम एकता चाहता है और इस दिशा में लगातार काम करता है। असद मुसलमान जरूर है, परंतु वह देश के बँटवारे के खिलाफ है। असद तारा को पसंद करता है और तारा भी असद को पसंद करती है। तारा एक पढ़ी-लिखी युवती है, इसीलिए अपने पसंद के लड़के असद से शादी करना चाहती है। चूँकि असद एक मुसलमान लड़का है, लिहाजा तारा का भाई पूरी इस संबंध से खुश नहीं है। वह अपनी अनिच्छा प्रकट करते हुए कहता है कि ''जोड़ भी लगाया तो मुसलमान से और सामने कैसी धृष्टता से बोली! हमारा मुँह काला करायगी? मेरा इस प्रकार अपमान ...मैं भी देखूंगा!''[15] पूरी पढ़ा-लिखा जरूर है, पर वह भारतीय सामाजिक परंपरा और रूढ़ी-विचार से ग्रसित है, जो एक मुसलमान को अपने संबंधी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। दूसरी तरफ मुस्लिम समाज भी हिंदू को अपना संबंधी नहीं बनाना चाहता। कुछ मामलों में यह देखा जाता है कि मुस्लिम समाज हिंदू लड़की को तो स्वीकार कर भी लेता है, परंतु हिंदू लड़के के साथ मुस्लिम लड़की कतई बर्दाश्त नहीं करता है।

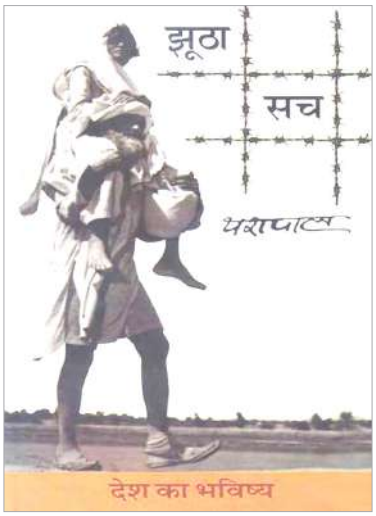

उनके खिलाफ फतवा जारी कर दिया जाता है। सांप्रदायिकता की यह समस्या 'लव जिहाद' से जुड़ी हुई है। यह वर्तमान भारत की एक अलग समस्या है। बहरहाल असद धर्मनिरपेक्ष मुसलमान है। उसने विभाजन के समय लाहौर के हिंदुओं की मदद की थी। विभाजन के वक्त लाहौर के हिंदुओं को वहाँ से भाग जाना पड़ा था अथवा भगा दिया गया था। उस समय असद ने नरेंद्र सिंह आदि हिंदुओं के परिवार को सकुशल लाहौर से अमृतसर तक पहुँचाया था, ''नरेंद्र सिंह का परिवार तो बहुत संकट में फँस गया था। उसे तो हम लोग अमृतसर तक पहुँचा कर आए हैं।''[16] असद भला आदमी था इसमें कोई संदेह नहीं, परंतु वह तारा का आजीवन साथ देने की हिम्मत नहीं कर पाता है, परिणामस्वरूप तारा का विवाह सोमराज नामक दुष्ट के साथ हो जाता है। तारा सोमराज के साथ विवाह नहीं करना चाहती थी, परंतु पारिवारिक और सामाजिक दबाव में उसे यह शादी करनी पड़ती है। इच्छा के विरुद्ध की गई शादी टिक नहीं पाती। सुहाग रात में सोमराज तारा के साथ बदसलूकी करता है। ''सोमराज से तारा के व्यवहार की परिणिति यह थी कि तारा पहली ही रात में निकल भागी।''[17] उसी रात दंगा भी होता है और तारा नब्बू नामक मुसलमान व्यक्ति के हत्थे चढ़ जाती है। नब्बू उपन्यास का कट्टर मुसलमान पात्र है। वह तारा के साथ जबर्दस्ती करता है। नब्बू तारा की इज्जत इसलिए लुटता है, क्योंकि तारा एक हिंदुनी थी। इस प्रकार तारा सांप्रदायिकता एवं सामाजिक संरचना दोनों की बलि चढ़ जाती है। नब्बू जैसे लोग कई मिल जाएँगे। दरअसल, नब्बू की यह मानसिकता सांप्रदायिक शक्तियों की उपज है। नब्बू तो उसका प्रतीक मात्र है।

तारा नब्बू के हाथ से छूटी तो हाफिज के हाथ में जा फँसी। हाफिज तारा की मदद इसलिए करते हैं, ताकि

उसे इस्लाम कबूल करा कर मुसलमान बना सकें। वे कहते हैं कि ''हिंदू लड़की है बेचारी मुसीबतजदा है, अल्लाह ताला के करम से यहाँ आ गई है तो मुसलमान बन ही जाएगी। पंद्रह तरीख को यह सब सवाब का काम हो जाएगा''[8] हाफिज भले ही तारा के साथ नब्बू जैसा व्यवहार नहीं करता है, उसके साथ बलात्कार नहीं करता, परंतु इससे इतर उसे अलग प्रकार की मानसिक यंत्रणा अवश्य देता है। ''हाफिजजी के परिवार में सद्व्यवहार था, पर मुसलमान बनाने की साजिश भी थी।''[9] हाफिजजी निरंतर यह प्रयास करते रहे कि तारा को मुसलमान बना दिया जाए, इसीलिए वे तारा को इस्लाम कबूल करने हेतु उपदेश दिया करते हैं, ''हाफिज जी ने तारा को दो दिन और इस्लाम की सच्चाई और सच्चे धर्म से प्राप्त होने वाली मुडिक्त के उपदेश देकर सुझाव दिया कि वह इस्लाम स्वीकार कर ले।''[10] हाफिज साहब का मानना था कि ''उस रहीम करीम ने दोजख की आग से बचाकर जन्नत के बाग में दूध और शहद के दरियाओं के किनारे, खजूरों की छाया में आराम कर सकने के लिए ही रहम करके इस घर में पहुँचने का जरिया किया है। उसने जो रहम तुझ पर किया है, उसके लिए तुझे उसका शुक्रगुजार होना चाहिए।''[11] तारा हाफिज की बातें सुन सुन कर ऊब चुकी थी। उसे यह समझ नहीं आती कि जब वह हिंदू के घर जन्मी है तो इस्लाम क्यों अपनाएँ। तारा हिंदू थी। वह मुसलमान नहीं होना चाहती थी। यह बात अलग है कि उसे हिंदू धर्म के विश्वासों में भी कोई आस्था या धर्म नहीं रहा था। स्वर्ग-नरक, पूजा-श्राद्ध और अवतार के धार्मिक विशवास उसे उपहास्पद लगते थे। उसे ऐसे समय में असद द्वारा कही कई बातें याद जरूर आती थीं, ''हिंदुत्व कोई मजहब और धर्म-विश्वास नहीं है। वह एक समाज और संस्कृति है। उसमें विश्वासों के बंधन हैं। आप भगवान में विश्वास करें तो हिंदू, विश्वास न करें तो भी अपने को हिंदू कह सकते हैं। आप चाहे जैसे भगवान में साकार में या निराकार में एक ही भगवान में या अनेक भगवानों में विश्वास कर सकते हैं।''[12] तारा इन यंत्रणाओं से गुजरती हुई इतनी खिन्न हो गई थी कि उसे पुरुष मात्र से नफरत होने लगती है। यह नफरत की भावना कहाँ से आई- यह कहने की आवश्यकता नहीं।

विभाजन की इस भयावह घटना ने सबको झकझोर कर रख दिया था। औरतों की बेइजती उनके मर्दों के सामने की जा रही थी। असहाय औरतें अपनी इज्जत खराब करवाने से बेहतर कुँए में कूदकर जान दे देना ज्यादा उचित समझती थीं। ''मरना ही है तो जालिमों के हाथ बिक कर, अपनी मिट्टी खराब करा लेने से पहले मरो। वह बुढ़िया आये तो दरवाजा खोलकर बहार निकल जाएँ। क्या कहीं बहार कुआँ भी नहीं होगा?''[13] इस मजहबी दंगों में सबसे ज्यादा अगर किसी को दर्द मिला तो वह हैं महिलाएँ। पंजाब और लाहौर के बीच ट्रेनों में केवल लाशें सफर कर रही थीं। वर्षों से साथ रह रहे हिंदू, मुसलमानों, सिखों की आपसी भाईचारा खतम हो चुकी थी, उनके अंदर की सहनशीलता मर चुकी थी, सभी असहिष्णु हो चुके थे। ''शवों को लेकर जब रेलगाड़ी दिल्ली पहुँची तो स्थानीय लोगों को सीमा के उस पार बर्बर हत्याकांड की दास्तानें सुनने को मिलीं, जिससे स्थिति और भी खराब हो गयी। जिन लोगों के परिवार खत्म हो गये और संपत्ति लुट गयी, वे अपने साथ गुस्सा और कड़वाहट लेकर आये। यहाँ उन्होंने अपने इलाकों में दूसरे समुदाय की मौजूदगी पर सवाल खड़े किये।''[14] हिंदू अपने परिजनों का बदला ले रहे थे और मुसलमान जो यहाँ रह गए थे, वे इस विभाजन से उपजे दंगों को झेल रहे थे।

भारतीय इतिहास में विभाजन की त्रासदी को काला दिन के तौर पर आज भी याद किया जाता है। बँटवारे की इस चिंगारी ने धीरे-धीरे हजारों जिंदगियों, उनके सपनों को अपने जद में ले लिया और उन्हें जला कर भस्म कर दिया। विस्थापित लोग दर-दर की ठोकरें खाते, मरते-बचते अंजान क्षितिज को जा रहे थे। ''मोटरों के दोनों ओर लँगड़ाती-लड़खड़ाती भीड़? बढ़ती जा रही थी। कतरी हुई और उलझी हुई दाढ़ियों, दबी हुई टोपियों, रस्सी की तरह लपेटी हुई मैली पगड़ियों में से झाँकते मुड़े हुए सिर, काले, नील, चीथड़े कपड़े, स्त्री-पुरुषों के चेहरे आँसुओं और पसीने से जमी गर्द से ढँके हुए, कमरें झुकी हुईं, घिसटते लँगड़ाते हुए कदम। भीड़ फटकर मोटरों के दाहिने-बायें, दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह

आदमियों की लहरों में आती जा रही थी।... मानो वे शरीर चलते-फिरते भी सड़ते-गलते जा रहे थे। भीड़ के खिसटते कदमों से उड़ती धूल से साँस लेना और भी दुष्कर हो रहा था।''[15] स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बहुत कुछ बदल चुका था। लोग विस्थापित हो चुके थे। अपनी जन्मभूमि से भाग जाना पड़ा था अथवा भगा दिए गए थे। ऐसे में शरणार्थियों की समस्याएँ भी बढ़ गई थीं। चारों तरफ अफरा-तफरी का मंजर और सड़कों पर बिछी हुई लाशें चीख-चीख कर कह रही थीं, 'आजादी मुबारक हो'। अपमानित औरतें अपनी कोख को कोस रही थीं और पूछ रही थीं, क्या औरत होना पाप है? घूम-फिर कर मर्दों का सारा जोर औरत जात पर ही उतरता है। यह सच है कि बँटवारे के दौरान बहू-बेटियों के अपमानित होने का बदला दूसरों की बहू-बेटियों की इज्जत लूट कर लिया जा रहा था। ''वो इनकी माँ-बेटियों को बेइज्जत करें, ये उनकी माँ-बेटियों को बेइज्जत करें! माँ-बेटियाँ बरबाद होने के लिए ही हैं।''[16] शरणार्थी कैंप के बाहर पुरी खाने के लिए आटा की बंदोबस्त में निकालता है, तब वह अमानवीय और हृदय विदारक दृश्य देखकर हतप्रभ हो जाता है। कुछ लोग मूसलों की बेटियों को सरेआम नीलामी कर रहा होते हैं। वे लोग उन मासूमों की बोली लगा रहा होते हैं, ''पैंतीस, पैतीस, पैंतीस रुपये! कोई और बोलो! पैंतीस रूपये में जाती है। पैंतीस रुपये एक, पैंतीस रुपये दो!.. भीड़ के बीचोंबीच नीलाम करने वाला एक जवान लड़की को चुटिया से खींचकर खड़ा किये था। लड़की के शरीर पर कोई कपड़ा न था। माल गाहकों को अच्छी तरह दिखा देने के लिए उसने लड़की की कमर के पीछे अपने घुटने से ठेस देकर, उसके सब अंगों को सामने उभार दिया था। लड़की के आँसुओं से भींगे, पलकें मुंदे चेहरे पर से उसके हाथ को भी खींचकर हटा दिया। लड़की के सूर्य की किरणों से अछूते शरीर के भाग छिले हुए संतरे की तरह, चेहरे की अपेक्षा बहुत गोर और कोमल थे। भीड़ के बीच धरती पर कुछ और भी लड़कियाँ चेहरे बाँहों में छिपाये, घुटनों पर सिर दबाये बैठी थीं उनके कपड़े भी धरती पर पड़े थे।''[17] पुरी यह सब देखकर बहुत विचलित होता है। कौन किससे कम है, एक तरफ मुसलमान हिंदू लड़कियों को नंगी करके जुलूस निकालता है, वहीं दूसरी तरफ हिंदू मुसलमान लड़कियों के साथ पशुता सा व्यवहार करता है। सतवंत, तारा, बंती, दुर्गा, सब इसी सामाजिक संरचना की शिकार हुई थीं। सांप्रदायिकता की आग में जलने के बाद इन सभी को सामाजिक प्रताड़ना को भी झेलना पड़ता है। दुर्गा इस थोथी और अमानवीय सामाजिक संरचना को चुनौती देती कहती है कि ''घर से एक बार निकली, दर-दर खवर हुई तीमी (अबला) को फिर कौन रखता है? घर से निकली तीमी और डाल से टूटा फल, उनका फिर मेल क्या?''[18] इस क्रूर सामाजिक संरचना की शिकार स्वयं सीता जी भी हुई थी। 'देश का भविष्य' में यशपाल ने इस सामाजिक अक्षमता को बखूबी दिखाया है। परिवार से अलग हुईं ये स्त्रियाँ जब वापस अपने परिजनों के पास लौटती हैं, तब इन्हें केवल इसलिए अपनाया नहीं जाता, क्योंकि वो घर से बाहर रहीं, उनकी इज्जत लूटी गई। तर्क दिया जाता है कि ''दो महीने मुसलामानों के घर रहकर आई है हम कैसे रख लें।''[19] बंती उपायविहीन होकर अपने पति के दरवाजे पर ही सिर पटक कर जान दे देती है। वास्तव में ''स्त्री का जीवन पुरुषों के जुल्मों का शिकार ही है।''[20]

यशपाल ने उपन्यास में उस सामाजिक संरचना को बखूबी आईना दिखाने की कोशिश की है, जिसकी चपेट में आकर स्त्रियाँ कमजोर हो जाती हैं। विभाजन के दौरान स्त्रियाँ जहाँ एक ओर सांप्रदायिकता का शिकार हो रही थीं, वहीं दूसरी तरफ सामाजिक व्यवस्था द्वारा भी प्रताड़ित हो रही थीं। पुरुषों का वर्चस्व इतना अधिक है कि स्त्रियों को न चाहते हुए भी अपने को सौंपना पड़ता है और जरूरत पड़े तो स्वयं का विनाश भी करना पड़ता है। तारा सोमराज से शादी न कर अपनी पढ़ाई पूरी करना चाहती है, परंतु उसके इस फैसले का विरोध इसीलिए किया जाता है, क्योंकि उसकी शादी जिससे होने जा रही थी वह कम पढ़ा-लिखा है, ''इम्तिहान का क्या मतलब ? लड़की को इम्तहान देना है कि उसका ब्याह करना है?'' रामज्वाया ऊँचे स्वर में बोले, ''हमारा तो ख्याल था कि कालिज नहीं जा रही है। हमने तो माना कर रखा था। लड़का बी.ए. नहीं, लड़की बी.ए.

बनेगी! क्या तमाशा है? इम्तहान-शिम्तहान कुछ नहीं होगा, कह दिया हमने!''[21] भारतीय समाज पितृ सत्तात्मक समाज है। यहाँ पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर शासन किया जाता है। विशेषकर आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर स्त्रियाँ समाज में अधिक दमित होती हैं। उपन्यास में चित्रित उर्वशी उसी का प्रतीक है, जिसे पुरी अपने खालीपन को भरने के लिए उसका इस्तेमाल करता है। उसके साथ शारीरिक संबंध बनाता है और जब उसकी पहली प्रेमिका वापस आ जाती है, तब उर्वशी को अपने से अलग कर देता है। तारा इन शक्तियों का शिकार जरूर होती है, परंतु वह आधुनिक सशक्त स्त्रियों की तरह उन ताकतों से मुकाबला करती है और अपना जीवन साथी अंतत: स्वयं चुनती है। सोमराज और पुरी के लाख दबाव के बावजूद तारा अडिग रहती है और उन शक्तियों पर विजय प्राप्त करती है। कनक भी पुरी के साथ मजबूरन अपना जीवन बर्बाद नहीं करती है। सही वक्त आने पर वह भी पुरी से अलग होकर स्वतंत्र जीवन यापन करती है। अत: कहा जा सकता है कि ''मूल्यों के इस तीखे उतरोत्तर विघटन की कहानी में स्त्री अत्याचार का मुख्य विषय बनी हुई है। इसमें शायद कोई असंगति नहीं।''[22]

निष्कर्ष :

'झूठा' सच निश्चित ही एक युग व्यापी रचना है, जिसमें सामाजिक राजनीतिक समस्या पर गहन विचार-विमर्श प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास निरंतर गहन अध्ययन-विश्लेषण की माँग करता रहा है। स्त्री समस्या भारत की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है, जिस पर लगातार शोध हो रहे हैं। उनके अधिकारों की माँग हो रही है, जिससे स्त्रियों को उनका स्वतंत्र जीवन जीने में मदद मिल सके। तारा अपना स्वतंत्र जीवन चयन कर स्त्रियों के सामने उदहारण प्रस्तुत करती है। स्त्री स्वतंत्र तभी हो सकती है, जब वह शिक्षित एवं स्वालंबी बन सकेगी। ❑

संदर्भ सूचि :

1. शिवकुमार मिश्र : साम्प्रदायिकता और हिंदी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 77
2. कमलेश्वर : नयी कहानी की भूमिका, शब्दकार प्रकाशन, 1978, पृष्ठ 59
3. गोपाल राय : हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, 2016, पृष्ठ 196
4. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ आवश्यक
5. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 188
6. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 406
7. परमानन्द श्रीवास्तव : उपन्यास का पुनर्जन्म, वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 61
8. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 331
9. परमानन्द श्रीवास्तव : उपन्यास का पुनर्जन्म, वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 61
10. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 331
11. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 327
12. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 327
13. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 395
14. राम पुनियानी : साम्प्रदायिक राजनीति : तथ्य एवं मिथक, वाणी प्रकशन, 2005, पृष्ठ 77
15. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 411
16. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 414
17. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 377
18. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 395
19. यशपाल : झूठा सच (भाग-2), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 102
20. परमानन्द श्रीवास्तव : उपन्यास का पुनर्जन्म, वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 62
21. यशपाल : झूठा सच (भाग-1), लोकभारती प्रकाशन 2019, पृष्ठ 118
22. परमानन्द श्रीवास्तव : उपन्यास का पुनर्जन्म, वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ 65

गोपाल दास नीरज के काव्य में सामाजिक यथार्थ एवं रहस्यवादी दर्शन

ब्रजेश उपाध्याय

शोधार्थी, हिंदी विभाग
गुरु काशी विश्वविद्यालय
तलवंडी साबो, बठिंडा
पंजाब – 151302
मोबाइल नं. 7780851547
ईमेल : brajeshupadhyaya042@gmail.com

शोध सारांश :

''नीरज जी विद्रोही हूँ जग नीरज जी विद्रोह कराने आया हूँ
क्रांति-क्रांति का सरल सुनहरा राग सुनाने आया हूँ।
मुझको गिरि सागर ने रोका, रोका चट्टानों ने,
काँटों झंखाड़ों ने रोका, रोका तूफानों ने.....
रोक सका है कौन से जिसने बस चलना ही सिखा,
बुझा सका है कौन उसे जिसने बस जलना ही सीखा।''[1]

राष्ट्रीय चेतना की उनकी यह कविता बहुत प्रसिद्ध हुई। उपर्युडक्त कविता के संदर्भ में श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने स्पष्टतया यही कहा है- ''घटना शायद 1945 के मार्च मास की है। उन दिनों पंजाब सरकार ने आलोच्य कवि को लगभग डेढ़ वर्ष तक नजरबंद रखने के बाद 24 घंटे का नोटिस देकर पंजाब से निकाल दिया था और नीरज जी यूपी सरकार द्वारा अपनी जन्मभूमि बाबूगढ़ (मेरठ) में नजरबंदी के दिन काट रहे थे।

मूल शब्द :

विद्रोही, संघर्ष, गिरि सागर ने रोका, कारवां गुजर गया, मधु-मदिरा ही विष बन जाये।

प्रस्तावना :

उनकी वास्तविक हालत जानने के लिए बंबई के वर्तमान राज्यपाल महामहिम श्रीप्रकाश ने आलोच्य कवि को दिल्ली बुलाया था। रात के लगभग 8 बजे जब कैनिंग लेन से दिल्ली जंक्शन लौटते हुए फव्वारा से होकर गुजरे तो उनके कानों में नीरज जी की मधुर स्वर-लहरी से युडक्त उपर्युक्त से पंक्तियाँ पड़ीं : नीरज जी विद्रोही हूँ, जग नीरज जी विद्रोह कराने आया हूँ, क्रांति-क्रांति का सरल सुनहरा राग सुनाने आया हूँ।

स्वप्न-झरे फूल से, मीत-चुभे शूल से,
लुट गये सिंगार सभी, बाग के बबूल से,
और हम खड़े-खड़े बहार देखते रहे,
कारवां, गुजर गया, गुबार देखते रहे।।[2]

भूमिका :

नीरज ने यह भी स्वीकार किया है कि वे बच्चन जी से बहुत अधिक प्रभावित हुए। इसके कई कारण वे स्वीकार करते हैं। पहला कारण तो यही कि बच्चन जी की तरह उन्हें भी जीवन से बहत कुछ लड़ना पड़ा। बच्चन जी के प्रति उनका आस्था-भाव भी पूर्ण रूप से दर्शनीय है। उन्होंने अपने प्रथम कविता-संग्रह 'संघर्ष' का समर्पण भी उन्हें ही किया है। 'निशा निमंत्रण' की सघन छाया भी कहीं-कहीं नीरज-काव्य के मध्य दिखाई पड़ती है -

क्यों उसको जीवन भर न हो!
जो जीवन ताप मिटाती है,
युग-युग की प्यास बुझाती है,
जिसके अधरों तक जाकर वह मधु-मदिरा ही विष बन जाये
क्यों उसको जीवन भार न हो![3]

'संघर्ष' के बाद नीरज स्वत: ही इस प्रभाव से मुक्त होते दिखाई देते हैं। दूसरे कविता-संकलन 'अंतर्ध्वनि' में नीरज जी ने तो स्वयं अपना जीवन-दर्शन निर्धारित कर लिया है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सन 1958 में जब 'संघर्ष' का दूसरा संस्करण 'नदी-किनारे' नाम से प्रकाशित हुआ, तब उसका समर्पण तो 'निशा निमंत्रण' के कवि को किया गया, मगर अपनी भूमिका के स्थान पर एक पृष्ठ का निवेदन कवि नीरज ने दिया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्वयं नीरज ही चौदह वर्ष पूर्व के दृष्टिकोण से अब अपने आप को सहमत नहीं मानते। इस प्रकार भले ही नीरज को काव्य-सर्जन की प्रेरणा बच्चन के 'निशा निमंत्रण' से मिली हो और नीरज की कुछ प्रारंभिक कविताओं पर भी 'निशा निमंत्रण' की नैराश्य भावनाओं की सघन छाया दीख पड़ती हो, लेकिन नीरज की संपूर्ण काव्य-साधना को बच्चन से प्रभावित समझना युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता।

नीरज के काव्य पर कवि बच्चन के सदृश संत कबीर, मध्यकालीन सूफी कवियों, रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं खलील जिब्रान आदि कवियों का भी व्यापक प्रभाव माना जा सकता है। अत: यहाँ इस संबंध में कुछ विचार करना आवश्यक है।

इसी प्रकार कवि नीरज के 'गीत भी, अगीत भी' कविता-संग्रह में संकलित 'माँ मत हो नाराज' आदि रचनाएँ भी शुद्ध रहस्यवादी ही हैं। इस प्रकार नीरज पर शुद्ध रहस्यवादी दर्शन का पूर्ण प्रभाव मानना उचित होगा। उनके इस दर्शन पर सूफी कवियों की प्रत्यक्ष छाया भी स्वीकार्य है-

कोई मोती गूँथ सुहागिन! तू अपने गलहार नीरज जी,
मगर विदेशी रूप न बँधने वाला है सिंगार नीरज जी।
जब तक डूबे सूर्य सबेरा ब्याहा जाये शाम से,

तब तक गौरी माथे बिंदिंया जड़ ले तू आराम से,
मुँदते ही पलकें सूरज की उठते ही दिन की सभा,
सब को फुरसत यहाँ मिलेगी अपने-अपने काम से,
बहक उठा है चाँद और वह महक उठी है चाँदनी,
देख प्यार की रितु न बीत जाये इस भरी बहार नीरज जी।[4]

सूफी-दर्शन का सुंदर स्वरूप नीरज काव्य में प्रतिबिंबित होता है। मधुर सोपानों से चढ़कर विषय की गहनता तक ले जाना और उसे सरल माधुर्य-भाव बाँधना नीरज-काव्य के उत्तर-पक्ष के मध्य दीख पड़ता है। 'रीती गागर का क्या होगा', 'माँ अब गोद सुला ले' जैसे काव्य-पक्षों के मध्य सूफी-दर्शन के अतिरिक्त कबीर की शैली के दर्शन भी सहज हो जाते हैं -

माखन चोरी कर तूने कम तो कर दिया बोझ ग्वालिन का लेकिन उनके श्याम बता अब रीती सागर का क्या होगा ?

पास नहीं जब गो-रस कुछ भी,
कैसे तेरे गोकुल आऊ ?
कैसे इतनी ग्वालिनियों नीरज जी,
लाज बचाऊँ अपने घट की,
या तो इसको फिर से भर दे, या इसके सौ टुकड़े कर दे
निर्गुण तब हो गया सगुन, जब इस आडम्बर का क्या होगा ?
माखन चोरी कर तूने ...[5]

रवीन्द्र का विश्वप्रेम एवं मानव प्रेम भी कवि नीरज के दर्शन में दीख पड़ता है। विचारक इस बात को सहज रूप से स्वीकार भी करते हैं कि नीरज के काव्य में स्थित समस्त उदात्त तत्व रवीन्द्र काव्य से ही आया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नीरज की कविताओं में उदात्त तत्व विशेष रूप से है और इसी उदात्त तत्व के कारण जीवन-संग्राम में उनकी आस्था भी दीख पड़ती है। व्यक्तिगत पीड़ा यद्यपि व्याकुलता की चरम सीमा बनकर उभरी है। परंतु नीरज की यह व्याकुलता और उसके समस्त आँसू समाज के दर्द के रूप में अभिव्यक्ति देते हैं। अपनी व्याकुलता को समाजिक परिवेश में रखकर देखने का प्रयास नीरज द्वारा सर्वत्र ही किया गया है -

तुम दीवाली बनकर जग का तम दूर करो
नीरज जी होली बनकर बिछुड़े हृदय मिलाऊँगा।
कर रहा नृत्य विध्वंस, सृजन के थके चरण,
संस्कृति की इति हो रही, क्रूद्ध हैं दुर्वासा,
बिक रही द्रौपदी नग्न खड़ी चौराहे पर,
पड़ रहा किन्तु साहित्य सितारों की भाषा,
तुम गाकर दीपक राग जगा दो मुर्दों को,
नीरज जी जीवित को जाने का अर्थ बताऊँगा!![6]

नीरज-काव्य-साधना के विविध मुखी विकास को देखते हुए रवीन्द्र काव्य-दर्शन का आंशिक प्रभाव मानना ही समीचीन जान पड़ता है। इसी प्रकार केवल अभिव्यक्ति के लिए ही नीरज ने उर्दू कविता के कुछ गुण ग्रहण किए हैं। एक ओर तो रुबाइयाँ एवं गजलों का प्रचलन प्रारंभ किया तथा दूसरी ओर उर्दू भाषा की सी नजाकत, शब्द योजना एवं मुहावरे आदि का प्रयोग किया है। भाव-व्यंजना की दृष्टि से नीरज उर्दू कवियों से तनिक भी प्रभावित नहीं रहे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि नीरज की विचार-धारा पर मार्क्स, अरविन्द एवं गांधी आदि का न्यूनाधिक प्रभाव अवश्य दीख पड़ता है, लेकिन यह प्रभाव क्षणिक प्रभाव ही है। दक्षिणी अफ्रीका की रंगभेदी नीति के नाम पर गांधी विचारधारा का क्षणिक प्रभाव दर्शनीय है -

सीमायें जब घट रहीं, ढह रहीं प्राचीरें,
हो बना रहे तुम, तब ये काले श्वेत किले,
जब एक हो रही है मनुष्यता धरती पर
तुम चाह रहे दुनिया दो खीमों नीरज जी बदले।
चमड़े के रंग मनुष्य मनुष्यता को बाँटे,
यह है जघन्य अपमान प्रकृति का, मानव का,
धरती पर घृणा जिये, मर जाये प्रीति प्यार,
यह धर्म मनुज का नहीं, धर्म है दानव का।[7]

मार्क्स के साम्यवादी दर्शन के प्रभाव को भी नीरज-

दर्शन ने स्वीकार किया है। उन्होंने स्वयं को धरती का मानव मानकर धरती-पुत्र के प्रति अपनी आस्था को भी दर्शाया है। धरती का अस्तित्व उसके ऊपर काम करने वाले धरती पुत्र से ही है। साथ ही विशाल अट्टालिकाओं से जुड़ा मजदूर का श्रम भी सम्मानित किए जाने पर ही पूर्ण स्वराज्य की संभावना की जा सकती है। श्रम की क्रांति वेदना की क्रांति है, एक पीड़ा और अनुभूति की क्रांति है। इस क्रांति को न तो नकारा जा सकता है और न ही इसे रोकने का प्रयास कुबेर पुत्रों द्वारा किया जा सकता है। यह युद्ध भावनाओं का युद्ध है, तीर-तलवारों के ज्वार को हथियारों द्वारा रोकना सहज है, मगर इस आँधी को रोकने की क्षमता किसी भी दीवार में नहीं है-

गरमा देती है सर्द बर्फ के सीने को
असमय जब कोई फूल कहीं मुरझाता है,
हल की नोकों की धार तेज कर देती है,
जब खून जमीनों पर इतिहास बिछाता है!
रे! गंध नहीं बांधी जाती है ताकम से,
वह तूफानों के बाल खोल लहराती है,
गाती है जब वह बैठ चिता की लपटों नीरज जी,
मरघट की मिट्टी तक से क्रांति उगाती है।[8]

बहुधा नीरज को खलील जिब्रान अत्यधिक प्रभावित करते हैं और विचारक स्पष्ट कहते हैं कि खलील जिब्रान पीड़ा की गहनतम अनुभूति और तीव्रतम अभिव्यक्ति से वे अथ से इति तक प्रभावित रहे हैं। उनका रूढ़ियों और धार्मिक आडंबरवाद से विरोध का स्वर भी खलील जिब्रान से सीखा हुआ है। संभवत: उनके अचेतन मन पर सबसे अधिक व्यापक और गहरा प्रभाव खलील जिब्रान की पीड़ा का ही पड़ा है और इसी पीड़ा में यथार्थ का पूर्ण समावेश भी हो पाया है-

मूर्ख पुजारी है वह जो कहता है मन्दिर ईश्वर का घर,
मुल्ला भी वह बहका है जो कहता है वह मस्जिद के अन्दर,
मन्दिर, मस्जिद नीरज जी ही उनका ईश्वर और खुदा होता तो,
मन्दिर नीरज जी बन सकती मस्जिद, मस्जिद नीरज जी बन सकता मन्दिर![9]

बुद्ध के दु:खवाद का स्वर, जिसने करुणा को उनके गीतों का मर्म बना दिया है, नीरज-दर्शन के मध्य पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होता है। जीवन सुख उतना ही क्षणिक है, जितनी धूप में घास पर चमकती ओस की बूँदें। अपने प्रथम कविता-संग्रह 'संघर्ष' की प्रथम कविता में नीरज ने कहा है -

निर्जन की नीरव डाली का नीरज जी फूल।
कल अधरों नीरज जी मुस्कान लिये आया था,
मन नीरज जी अगणित अरमान लिये आया था,
पर आज झर गया खिलने से पहले
जग से कुछ मन की कहने से पहले ही।[10]

जब हम नीरज के संपूर्ण काव्य का अनुशीलन करतें हैं तब हमारा ध्यान इस ओर भी जाता है कि नीरज की कविता संत कबीर, सूफी कवियों, खलील जिब्रान, गौतम बुद्ध, रवीन्द्र, अरविन्द, बच्चन, महादेवी, दिनकर आदि का रूपान्तर नहीं है, क्योंकि कवि नीरज की मूल प्रेरणा उनका स्वयं का जीवन समाज और राष्ट्र का परिवेश भी रहा है। नीरज का प्रारंभिक जीवन अत्यधिक कष्टमय और निराशापूर्ण रहा है। दुख की अभिव्यक्ति काव्य में कई रूपों होती है। दुख हताश भावना को जन्म देता है। संघर्ष का जन्मदाता बन वैराग्य को भी उत्पन्न करने वाला होता है। वह कभी उत्थान की ओर तो कभी पतन की ओर ले जाता है। काव्य के क्षेत्र में उतरने पर ये सभी प्रकार की अनुभूतियाँ मिश्रित रूप से अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं।

स्वयं कवि नीरज ने 'संघर्ष' का जो दूसरा संस्करण 'नदी किनारे' नाम से प्रकाशित करवाया है, उसके निवेदन में यह संकेत किया है कि यह उस काल की तुकबंदियाँ हैं, जबकि वे उस समय न तो काव्य के स्वरूप से ही और न ही कवि-कर्म से स्वयं का परिचय मानते हैं। 'नदी किनारे के निवेदन में वे लिखते हैं, ''मेरा जीवन उस समय इतना संघर्षपूर्ण था, उत्तरदायित्वों के पहाड़ों का ऐसा बोझ था, उनके सिर पर गाकर अपने भीतर का बोझ हलका नहीं करता तो शायद टूट-फूट कर रास्ते पर

ही कहीं गिर जाता।

हास्य के साथ रुदन, पीड़ा के साथ सुखद अनुभूति स्वीकार करना मानव का अपना धर्म है –

फूल पर हँसकर अटक तो, शूल को रोकर झटक मत,
ओ! पाथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सबका है बराबर!
बाग है ये : हर तरह की वायु का इस नीरज जी गमन है,
एक मलयज की वधू तो एक आँधी की बहन है,
यह नहीं मुमकिन कि मधुऋतु देख तू पतझर न देखे,
कीमती कितनी कि चादर हो पड़ी सब पर शिकन की,
दो बरन के सूत की माला प्रकृति है, किन्तु फिर भी
एक कोना है जहाँ श्रृंगार सबका है बराबर![11]

नीरज–दर्शन के मध्य गीता–दर्शन का विलयीकरण भी पूर्ण रूप से विद्यमान है। समग्र सृष्टि को अपने मध्य लीन करने वाला वह शक्ति संपन्न ईश्वर है। इस विचार का समर्थन भी उन्होंने अपने काव्य–दर्शन के मध्य किया है–

एक बुलबुल का जला कल आशियाना जब चमन नीरज जी,
फूल मुस्काते रहे, छलका न पानी तक नयन नीरज जी,
सब मगन अपने भजन नीरज जी, था किसी को दुख न कोई,
सिर्फ कुछ तिनके पड़े सिर धुन रहे थे इस हवन नीरज जी,
हँस पड़ा नीरज जी देख यह तो एक झरता पात बोला,
''हो मुखर या मूक हाहाकार सबका है बराबर!''[12]

गीता–दर्शन के कर्मवाद पर नीरज की प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दृष्टि पूर्ण रूप से पड़ी है। ईश–पूजा से पूर्व वह कर्म–पूजा को महान मानते हैं। कर्म को छोड़कर वह स्वर्ग जाने के लिए भी तैयार नहीं –

कैसे चल दूँ अभी कुछ और यहाँ मौसम है,
होने वाली है सुबह पर न सियाही कम है,
भूख–बेकारी–गरीबी की घनी छाया नीरज जी
हर जुबाँ बन्द है, हर एक नजर पुरनम है,
तन का कुछ ताप घटे, मन का कुछ पाप कटे
दुखी इंसान के आँसू नीरज जी नहा लूँ तो चलूँ![13]

कुरुक्षेत्र के मध्य खड़े कृष्ण का अर्जुन को कर्म की ओर अग्रसर करने वाला मूल मंत्र नीरज–काव्य के मध्य एक शंखनाद बनकर गूँजा है। यह जागरण–मंत्र उस सोई निराश मानव जाति के लिए है, जो हताश अवसादग्रस्त हो जीवन अंधकार की ओर उन्मुख हो चुका है। नीरज उस युवा पीढ़ी को उद्बोधित करते हुए जीवन–समर में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं –

'डरो नहीं तुम उठो घटनाओं से झूमकर हर गगन पै छाओ,
करोड़ों तुम हो बढ़ो, हिमालय शिरों से एक दूसरा बनाओ,
वह भूख तुम नीरज जी है जोकि शेरों के जबड़े हाथो से फाड़ डाले,
उसे हवाओं के साथ महलों की ओर मोड़ो, कसम दिलाओ।'[14]

परमात्मा द्वारा 'अभिव्यक्ति–हेतु' संसार का निर्माण एवं जीवात्मा रूप आगमन जैसे दार्शनिक सत्यों का सत्कार कवि ने पूर्ण रूप से किया है। नर नारायण की स्थिति को वे स्वीकार करते हैं। कर्मरत होकर भी वह तटस्थ हो संसार–वृक्ष पर विद्यमान है। निर्लिप्त होकर समग्र संसार का संचालन करता है। यहाँ गीता–दर्शन के साथ–साथ वैदिक दर्शन का पूर्ण प्रतिबिंब नीरज–काव्य के मध्य दीख पड़ता है। 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि .....' जैसे आत्मा की अमरता के दार्शनिक सिद्धांत को उनके काव्य के मध्य सहज देखा जा सकता है –

'वह अणु नीरज जी बन्दी होकर भी मुक्त सदा,
वह जल नीरज जी रहकर भी जल से है बहुत दूर,
जलकर भी ज्वाला नीरज जी न राख बनता है वह
पाषाणों से दब कर भी होता नहीं चूर।
वह अजर–अमर, चिर जीवित इच्छा से,
अपनी इच्छा से ही तजता वह तन अपना,
वह ऐसा एक सत्य जो अपनी इच्छा से,
बन सकता है सुन्दर से सुन्दरतम सपना।'[15]

श्वेताश्वेतरोपनिषद् (4–9–10) में इस जगत को मायावी शडिक्त द्वारा रचित बताया गया है। तथापि यह माया यहाँ प्रकृति ही बताई गई है। ऐतरेयोपनिषद् में पाँच महाभूतों तथा चारों प्रकार के जीव सृष्टि–अण्डज,

जेरज, श्वेदज तथा उद्भिज का वर्णन किया गया है। अज्ञान को ब्रह्म से उत्पन्न बताया गया है। तैत्तरीयोपनिषद् भी (2-1) आत्मातत्व से सूक्ष्म आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी आदि की उत्पत्ति का वर्णन एक विकास-परंपरा के आधार पर करता है। यह उत्पत्ति एक प्रकार से आत्मा का परिणाम रूप है। सृष्टि की उत्पत्ति के साथ उसका लय अर्थात सत्ता का प्रलय भी उसी प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार मकड़ी अपनी सृष्टि जाले को समेट लेती है। इस प्रकार का सौम्य उदाहरण मुण्डकोपनिषद् के मध्य पूर्ण रूप से विद्यमान है। उपनिषदों के इस अलंकारिक दर्शन को नीरज ने भी अपनी अलंकारिक भाषा में प्रस्तुत किया है -

कोई मोती गूँथ सुहागिन! तू अपने गलहार नीरज जी,
मगर विदेशी रूप न बँधने वाला है सिंगार नीरज जी!
एक हवा का झोंका जीवन, दो क्षण का मेहमान है,
अरे ठहरना कहाँ, यहां गिरवी हर एक मकान है,
व्यर्थ सुनहरी धूप और व्यर्थ रूपहरी चाँदनी
हर प्रकाश के साथ किसी अँधियारे की पहचान है।[16]

निष्कर्ष :

कहा जा सकता है कि दर्शन कोई भी हो, मृत्यु का परम सत्य सभी ने स्वीकार किया है। वैदिक दर्शन से चार्वाक तक इस सत्य को स्वीकार करने को तैयार हैं। नीरज काव्य-दर्शन भी मृत्यु के परम सत्य को स्वीकार करता है -

''रह गये धरे के धरे ताख नीरज जी ज्ञान-ग्रंथ,
छुट गयी बँधी की बँधी गठरी,
लुट गई सजी की सजी की हाट और
देखती खड़ी की खड़ी रही सिगरी नगरी,
कुछ ऐसी लूट मची जीवन चौराहे पर,
खुद को ही खुद लूटने लगा हर सौदागर,
औ, जब तक कोई आये हमको समझाये,
तब तक भुगताने ब्याज महाजन आ पहुँचा!
जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की,
तब तक ले डोली द्वार विदा-क्षण आ पहुँचा![17]❑

संदर्भ सूची :

1. कारवाँ गुजर गया- नीरज, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रकाशन, सं. 2011, पृ. 117
2. हिन्दी गीत और गीतकार- डॉ. उपेन्द्र, सं. 2000, स्वराज प्रकाशन, पृ. 58
3. कारवाँ गुजर गया- नीरज, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रकाशन, सं. 2011, पृ. 13
4. वही पृष्ठ, कारवाँ गुजर गया
5. नीरज रचनावली- 1, आत्माराम एंड संस प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2010, पृ. 38
6. एक मस्त फकीर नीरज, सं.- प्रेमकुमार, आत्माराम एंड संस प्रकाशन, सं. 2014, पृ. 98
7. नीरज रचनावली- 1, पृ. 167
8. नीरज रचनावली- 1, पृ. 5-6
9. नीरज की पाती-नीरज, हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण 2012, पृ. सं. 27
10. कारवाँ गुजर गया- नीरज संस्करण-2011, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, पृ. सं. 117
11. कारवाँ गुजर गया- नीरज संस्करण-2011, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, पृ. सं. 21
12. नीरज रचनावली-1, पृ. 186
13. नीरज रचनावली-1, पृ. 9
14. नीरज रचनावली-1, पृ. 167
15. नीरज रचनावली-1, पृ. 88
16. नीरज की पाती-नीरज, हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण 2012, पृ. सं. 98
17. कारवाँ गुजर गया-नीरज संस्करण-2011, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, पृ. सं. 105

दृष्टिकोण

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय राजनीति में महिलाओं की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

कु. निशा गौतम

शोधार्थी
राजनीति विज्ञान विभाग
मंगलायतन विश्वविद्यालय
बेसवान, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
मो. 6395342151
ई-मेल : nnishagautam06@gmail.com

डॉ. तारिक अनवर

शोध-निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग
मंगलायतन विश्वविद्यालय
बेसवान, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश
मो. 8178502756

सारांश :

यदि हम इतिहास को उठाकर देखें तो कहीं भी पुरुषों एवं स्त्रियों के साथ समान व्यवहार नहीं किया गया और उन्हें समान दर्जा नहीं दिया गया। प्राचीन काल से 21वीं सदी तक भी महिलाएँ समाज में अपने अधिकारों और स्थिति के लिए लड़ती रही हैं; उन्होंने कई बार समानता के लिए आग्रह किया है ताकि उन्हें पुरुषों के बराबर समानता, स्वतंत्रता का अधिकार मिल सके; यदि स्वतंत्र भारत में महिलाओं की स्थिति की बात की जाए तो निश्चित ही इसमें सुधार हुआ है। भारत में संरचनात्मक और सांस्कृतिक परिवर्तन में शिक्षा, रोजगार और राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं के लिए कई अवसर मिले हैं। आज भारतीय नारी की स्थिति में क्रांतिकारी बदलाव देखा जा सकता है। वह घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर देश के बहुआयामी विकास में अमूल्य योगदान दे रही है। आज हमारे देश की नारियाँ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में आगे बढ़ रही हैं। सदियों से शोषित एवं पद-दलित नारी पुरुष प्रधान समाज के प्रभाव से मुक्त होकर अपना स्वच्छंद जीवन का विकास करने की सुविधा प्राप्त कर रही है। उसी का परिणाम है आधुनिक भारत में महिलाएँ राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, मुख्यमंत्री, प्रतिपक्ष की नेता इत्यादि जैसे शीर्ष पदों पर आसीन हो रही हैं और अपनी आगे की राह को आसान बना रही हैं। समय के साथ समाज देश की व्यवस्था के परिवर्तन के साथ महिलाओं की स्थिति बदल जा रही है; वह पुरुषों के साथ हर क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है; इस शोध पत्र के माध्यम से यही जानने का प्रयास किया गया है कि स्वतंत्रता के बाद महिलाओं की स्थिति कैसी है और राजनीतिक क्षेत्र में वह अपने आप को कहाँ तक पुरुषों के बराबर ले जा पाई हैं।

संकेत शब्द : आग्रह, संरचनात्मक, सांस्कृतिक, क्रांतिकारी, महिलाएँ, स्वच्छंद, बहुआयामी, पददलित, प्रतिपक्ष नेता।

प्रस्तावना :

स्वतंत्रता के बाद नारियों की स्थिति में और भी अधिक सुधार हुए हैं। सरकारी गैर सरकारी संगठनों महिला संगठनों सहित समाज सुधारकों के परिणामस्वरूप आज भारतीय नारी की स्थिति मध्यकालीन नारी से कहीं ऊँची है। आज भारतीय नारी को वह सब अधिकार प्राप्त है, जो कभी उससे छीन लिए गए थे, वह पुरुषों के साथ आर्थिक क्षेत्र में भी कंधे से कंधा मिलाकर कार्यरत है। उन्हें तलाक का अधिकार प्राप्त

है, पारिवारिक संपत्ति में उत्तराअधिकार प्राप्त है, राजनीतिक क्षेत्र में भी नारी पुरुषों से पीछे नहीं है। उसे स्थानीय स्तर पर आरक्षण की सुविधा भी प्राप्त हो गई है। राज्य विधानसभा और लोकसभा में भी आरक्षण की आवाज सुनाई पड़ रही है। आज भारतीय नारी पूर्णत: पुरुष पर आश्रित नहीं है। वह पुरुषों की जीवनसाथी बनती जा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात औद्योगिकरण, नगरीकरण एकांकी परिवार की संख्या में वृद्धि नारियों में सामाजिक चेतना अंतरजातीय एवं प्रेम विवाह के प्रचलन राजनीतिक चेतना तथा वैधानिक सुविधाओं जैसे कारकों ने नारियों की स्थिति को पुरुषों के बराबर लाने में सहायता दी है। राजनीतिक प्रवेश के कारण नारियाँ शक्ति संपन्न पदों पर पहुँच रही हैं। उनका राजनीति में प्रवेश पूरी तरह से वांछनीय है, इसी के साथ महिलाओं में सामाजिक जागृति की एक नई लहर उत्पन्न हुई है। वह नारियाँ जो कभी घर की चारदीवारी में कैद रहती थीं, अब अनेक महिला संगठनों एवं समितियों की सदस्य बनकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने लगी हैं। शिक्षित नारियों ने पर्दे का परित्याग कर दिया है। सामाजिक क्षेत्र में आए इस बदलाव से रूढ़िवादी कर्मकांडों और अनुष्ठानों का महत्व घट गया। इसी के साथ नारी की आर्थिक स्थिति में भी परिवर्तन आया और उसकी स्थिति मजबूत हुई। अब उसे पूर्ण रूप से पुरुषों पर आश्रित नहीं रहना पड़ता। आज सभी क्षेत्रों में कामकाजी महिलाओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। कुछ विभागों में तो पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है। स्त्रियों ने अपने परिवार और समाज में आदर सम्मान प्राप्त करने हेतु धन उपार्जन को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। अब वे आत्मनिर्भर बन रही हैं तो देश की राजनीति की तरफ से उनका ध्यान आकर्षित हो रहा है। कहीं ना कहीं इन सब के पीछे प्रत्यक्ष और अप्रतप्रत्यक्ष रूप से पुरुष ने उनका सहयोग किया है और आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज की नारी कुछ समय बाद शायद पुरुष के बराबर कदम से कदम मिलाकर चलने में कामयाब हो जाएगी और स्त्री-पुरुष के बीच राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिकता की खाई पट जाएगी। आसानी से यह भी देखा जा सकता है कि भारत में नारियों ने शिक्षा में काफी उन्नति की है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होने पर नारियों में चेतना जागृत हुई है। इसलिए आज महिलाएँ राजनीतिक, विज्ञान, व्यवसाय, साहित्य और समाज प्रत्येक क्षेत्र में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। बहुत-सी महिलाएँ मानसिक रूप से पुरुषों से प्रतियोगिता करके अपनी प्रतिभा का परिचय दे रही हैं और उच्च पदों पर आसीन हो रही हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि हुई जिसका विवरण प्रतिशत में निम्न प्रकार है-

वर्ष	व्यक्ति	स्त्रियाँ	पुरुष
1951	18.33	8.86	27.16
1961	28.30	15.35	40.40
1971	34.45	21.97	45.96
1981	43.57	29.76	56.38
1991	52.21	39.29	64.13
2001	65.21	54.16	75.85
2011	74.04%	65.46%	82.14%

आधुनिक काल में प्रजातंत्र के कारण भारतीय नारियों की शिक्षा में काफी वृद्धि हुई है। उनकी समस्याओं के समाधान की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। शिक्षा के प्रसार से उनके व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास में सहायता मिली है। प्रजातंत्र ने वास्तव में नारियों एवं पुरुषों में समानता लाने का प्रयास किया है उसी का परिणाम है धीरे-धीरे महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति में सुधार हो रहा है ।

भारतवर्ष में महिलाओं की राजनीति में भूमिका को स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर 2019 तक देखा जा सकता है -

क्र.	वर्ष	कुल सदस्य	महिला की संख्या
1	1952	489	22
2	1957	494	27
3	1962	494	34
4	1967	523	31
5	1971	521	22
6	1977	544	19
7	1980	544	28
8	1984	544	44
9	1989	529	28
10	1991	509	36
11	1996	541	40
12	1998	545	44
13	1999	543	48
14	2004	543	45
15	2009	543	59
16	2014	543	61
17	2019	543	78

स्वतंत्रता के बाद सर्वप्रथम श्रीमती इंदिरा गांधी का प्रधानमंत्री पद पर सत्तारूढ़ होना महिलाओं की सबसे बड़ी उपलब्धि रही। तब से लेकर आज तक बहुत-सी महिलाएँ अनेक शीर्ष पदों पर सुशोभित हुईं। केंद्रीय मंत्रिमंडल में अमृत कौर, लक्ष्मी मैनन, सुशीला नायक, स्मृति ईरानी, नजमा हेपतुल्ला, सुमित्रा महाजन, मीरा कुमार, उमा भारती पूर्व कांग्रेसी अध्यक्ष सोनिया गांधी, मेनका गांधी, निर्मला सीतारमण आदि नाम प्रमुख हैं। राज्यपाल पद प्राप्त करने वाली प्रमुख महिलाएँ सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित, फातिमा बीवी, शारदा मुखर्जी, रजनी रानी, रामादेवी, प्रतिभा पाटिल, कमला बेनीवाल, मार्गेट अल्वा, वी.एस रामादेवी, शीला दीक्षित, प्रभा राव, उर्मिला सिंह, नजमा हेपतुल्ला, किरण बेदी इत्यादि हैं । प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल और वर्तमान में द्रौपदी मुर्मू भारतीय राजनीति में स्वर्ण अक्षरों में अपना नाम लिखने में कामयाब हो चुकी हैं। ऐसी अनेक महिलाएँ, जो राज्य की राजनीति में आज महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं और महिलाएँ अपने अधिकार के प्रति जागरूक होने लगी हैं। अगर देखा जाए तो भारत में महिलाओं की स्थिति हमेशा एक समान नहीं रही है। इसमें समय-समय पर हमेशा बदलाव होता रहा है। यदि हम महिलाओं की स्थिति का आकलन करें तो पता चलता है कि वैदिक युग से वर्तमान तक महिलाओं की स्थिति में अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। उनके अनुसार महिलाओं के अधिकारों में भी बदलाव होता रहा है। इन बदलावों का ही परिणाम है कि महिलाओं का योगदान भारतीय राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में दिनों दिन बढ़ रहा है। महिलाएँ अब अपने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं और घर की चारदीवारी से निकलकर बाहर हिमालय से लेकर अंतरिक्ष, अंतरिक्ष से लेकर राजनीति में अपने कदम रख रही हैं। उनके उज्ज्वल भविष्य की यह शुरुआत है, क्योंकि राजनीति में अभी पुरुष वर्ग अधिक है। देश की व्यवस्था राजनीति कानूनों के द्वारा ही बनती है तो पुरुष कानून बनाते वक्त कहीं न कहीं स्त्री वर्ग को भूल जाते हैं और अपने पुरुष प्रधान समाज के अनुसार कानून बनाते हैं। अगर राजनीति में महिलाओं की भागीदारी पुरुषों के बराबर होगी तो नियम - कानूनों में समानता देखेगी, जो कहीं न कहीं स्त्रियों को आगे बढ़ाने को प्रोत्साहित करेगी। दूसरी तरफ अभी जो महिलाओं का शोषण होता है राजनीति में, उस पर भी रोक लगेगी। वर्तमान समय की बात करें तो महिलाओं का भारत की आर्थिक व्यवस्था में योगदान बढ़ा है। इसका ही परिणाम है कि आज महिलाएँ राजनीतिक, कारोबार, कला तथा नौकरियों में पहुँचकर नए आयाम गढ़ रही हैं। भूमंडलीकृत विश्व में भारत की नारी ने अपनी एक नितांत सम्मानजनक जगह बना ली है। स्वतंत्रता के बाद विभिन्न राज्यों में महिलाएँ मुख्यमंत्री बन चुकी हैं। भारत के अग्रणी सॉफ्टवेयर उद्योग में 21 प्रतिशत पेशेवर महिलाएँ हैं, । फौज, खेल, पायलट एवं सभी क्षेत्रों में, जहाँ वर्षों पहले महिलाओं के होने की कल्पना भी नहीं की जाती थी, वहाँ सिर्फ महिलाओं ने स्वयं को स्थापित ही नहीं किया, बल्कि वहाँ सफल भी हो रही हैं। वह दिन दूर नहीं, जब राजनीति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व पुरुषों के बराबर ही होगा।

स्वतंत्र भारत में सरकारों द्वारा महिला उत्थान के लिए चलाए गए कार्यक्रम : सरकार ने महिलाओं के कल्याण के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए, जिनका प्रभाव महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति पर पड़ा और महिलाएँ इन सब कार्यक्रमों के माध्यम से आज हर क्षेत्र में अपना योगदान दे रही हैं, सरकार की कल्याणकारी योजनाओं का विवरण इस प्रकार किया जा सकता है-

* समान वेतन अधिनियम 1979 इस कानून द्वारा स्त्री-पुरुष को समान कार्य हेतु समान वेतन मिलता है।

* राष्ट्रीय महिला आयोग 31 जनवरी 1992 की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य महिलाओं के अधिकारों और उन्नति की सुरक्षा करना है, आयोग ने महिलाओं को शीघ्र न्याय दिलाने की सर्वाधिक प्राथमिकता दी है।

* स्थानीय ग्रामीण स्तर पर महिला संगठन महिला मंडल।

* व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र निराश्रित महिला सदन।

* महिला शिक्षा संबंधी कार्यक्रम : हंसा मेहता कमिटी ऑन वूमेंस एजुकेशन 1962, कस्तूरबा गांधी शिक्षा आयोग 1997, मौलाना आजाद राष्ट्रीय छात्रवृत्ति 2003, कस्तूरबा गांधी विद्यालय योजना 2004 महिला सामाख्या कार्यक्रम इत्यादि।

* ग्रामीण महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम : काम के बदले अनाज योजना 1977, अंत्योदय कार्यक्रम महिलाओं हेतु प्रशिक्षण और रोजगार कार्यक्रम 1987, किशोरी शक्ति योजना 2001, महिला स्वयं सिंधी योजना 2001, कौशल विकास योजना इत्यादि।

* अखिल भारतीय लोकतांत्रिक जनवादी महिला संगठन (एडवा:) महिलाओं के अधिकारों समानता, उद्धार और लोकतांत्रिक नीतियों के लिए प्रतिबंध है। यह संगठन भारत के 23 राज्यों में 10,00000 से अधिक लोगों से जुड़ा है। यह पूर्ण रूप से गरीब महिलाओं का प्रतिनिधित्व करता है।

*राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन: 1992 में एक सांविधिक निकाय के रूप में इसका गठन किया गया था। इस आयोग का मुख्य उद्देश्य महिलाओं के लिए संवैधानिक एवं कानूनी सुरक्षा प्रदान करना है। उनकी शिकायतों का निवारण करना सलाह देना हिंसा के खिलाफ उन्हें बचाना आयोग समय-समय पर उठाए गए महत्वपूर्ण मामलों के निपटारे के लिए विशेषज्ञ समितियाँ भी गठित करता है। विभिन्न विशेषज्ञ समितियाँ बनाई गई हैं, जैसे विधि एवं विधान, राजनीतिक सशक्तिकरण महिलाओं के लिए अभी रक्षण, सामाजिक सुरक्षा, पंचायती राज, महिलाएँ एवं मीडिया, आदिवासी महिलाओं का विकास, उपेक्षित एवं कमजोर महिलाओं का विकास इत्यादि ।

* बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना 22 जनवरी 2015 को महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा शुभारंभ किया गया। इस योजना का उद्देश्य लैंगिक समानता को बढ़ावा देना और लिंगानुपात को बढ़ाना है। यह इतनी कारगर योजना साबित हुई है कि नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे 5(NFSH)के मुताबिक देश में पहली बार पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की संख्या ज्यादा हो गई है। सर्वे के ताजा आंकड़ों में कहा गया है कि भारत में अब 1000 पुरुषों पर 1020 महिलाएँ हैं, जबकि साल 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में प्रति हजार पुरुषों पर केवल 943 महिलाएँ थीं।

*राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा समिति 1958 :भारत सरकार ने दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया, जिसका कार्य महिला शिक्षा के प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर सुझाव देना था। इसके अनुसार कुछ समय के लिए महिला शिक्षा को विशेष समस्या के रूप में स्वीकार किया जाए। आवश्यक धन की विशेष रूप से व्यवस्था करते हुए प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर अधिक शिक्षा सुविधा प्रदान की जाए। केंद्रीय स्तर पर एवं राज्य स्तर पर महिला शिक्षा परिषद हो। प्रत्येक राज्य में महिला शिक्षा परिषद हो और लड़कियों की शिक्षा के लिए पृथक निदेशालय हो ताकि महिलाओं से जुड़ी समस्याओं का समाधान किया जा सके, क्योंकि बहुत बार ऐसा भी होता है कि महिला पढ़ना तो चाहती है, परंतु कई समस्याओं के कारण भी शिक्षा ग्रहण कर नहीं पाती। कभी उनको सामाजिक समस्या का सामना करना पड़ता है, कभी आर्थिक समस्या आने जाने के संसाधनों की कमी के कारण महिला शिक्षा ग्रहण करने से वंचित रह जाती है, क्योंकि घर परिवार से उन्हें दूर आने जाने की अनुमति नहीं होती है। इस समिति की सिफारिश के आधार पर 1959 में राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद की स्थापना की गई और महिला शिक्षा पर विचार करने के लिए प्रथम इकाई भी नियुक्त की गई, ताकि महिलाओं के समक्ष उत्पन्न होने वाली बाधाओं को दूर किया जा सके और सभी पुरुषों के समान उच्च शिक्षा ग्रहण कर सकें।

*हंसा मेहता समिति 1962 : लड़के और लड़कियों के पृथक पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं स्थापना पर विचार करने के लिए श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया था। इसके अनुसार हम जिस गणतांत्रिक और समाजवादी ढंग के समाज की कल्पना करते हैं, उसमें शिक्षा का रूप है व्यक्तिगत योग्यता, अभिरुचि एवं भावों पर निर्भर होगा, जिसका लिंग से कोई संबंध नहीं होगा। इसके अनुसार समाज में लिंग के आधार पर भेदभाव करना आवश्यक नहीं है। इसके अनुसार लड़के एवं लड़कियों के

लिए पाठ्यक्रम बनाने के लिए व्यवहारिक आधार पर मानना होगा । कहने का तात्पर्य यह था इस समिति का की स्त्री - पुरुष में जाति लिंग, वर्ग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा, सभी को समान रूप से शिक्षा प्रदान करने की आजादी होगी, सभी व्यक्तियों को अपनी रुचि अनुसार शिक्षा ग्रहण करने की आजादी होगी, योग्यता अनुसार स्त्री पुरुष शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे और असमानता की खाई को पाटने में कामयाबी मिल पाएगी। समिति के माध्यम से समानता को बढ़ावा दिया जाने की पूर्ण कोशिश की गई थी।

* कन्या सुमंगला योजना, मुखबिर योजना, मिशन शडिक्त अभियान सरकार द्वारा किए गए सराहनीय कार्य हैं।

अत: स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि भारत में महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए सरकार भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। उन्हें पुरुषों का सहयोग प्राप्त हो रहा है। धीरे-धीरे उनकी स्थिति में सुधार हो रहा है और महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गई हैं।

जैसे-जैसे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो रही हैं, वे आत्मनिर्भर बन रही हैं। महिलाएँ राजनीति में सक्रिय होने लगी हैं और राजनीति में अपना दबदबा स्थापित करने की पूर्ण कोशिश कर रही हैं ताकि उन्हें वह हक मिल सके, जो सदियों पहले उनसे छीन लिया गया था। आज हम देख सकते हैं कि स्वतंत्र भारत में महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी हो चुकी है और परंपराओं की बेड़ियों को तोड़कर, रूढ़िवादिता को तोड़कर वे समाज के हर क्षेत्र में अपना योगदान दे रही हैं और देश के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। आज हम देख सकते हैं कि महिलाओं की राजनीतिक स्थिति में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है, स्वतंत्र भारत में ऐसा पहली बार हुआ है, जब 2019 के लोकसभा चुनाव में सबसे अधिक महिलाएँ संसद में पहुँची हैं। यह उनके उज्ज्वल भविष्य का संकेत है।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध पत्र में स्वतंत्र भारत के पश्चात महिलाओं की राजनीतिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि स्वतंत्र भारत की राजनीति में महिलाओं की स्थिति कैसी है। सामाजिक बंधनों से मुक्त होकर महिलाओं ने अपनी सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक,शैक्षणिक स्थिति में परिवर्तन कर लिया है। इस परिवर्तन के पीछे क्या कारण थे, यह सब जानने के लिए अन्वेषण आत्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग किया गया है और द्वितीय स्रोतों के माध्यम से शोध पत्र को पूर्ण किया गया है।

निष्कर्ष : स्वतंत्रता के पश्चात नारी की स्थिति का चित्रण किया गया है, महिलाओं की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। वह अपने घर की चारदीवारी तक सीमित न रहकर खुले वातावरण में कभी भी कहीं भी आ जा सकती है। स्त्रियों ने अपनी मानसिक स्थिति के साथ-साथ शारीरिक उन्नति पर ध्यान दिया है, उसी का परिणाम है कि धीरे-धीरे राजनीति में महिलाओं की स्थिति में सुधार हो रहा है। वह राष्ट्रपति से लेकर विदेश मंत्रालय, वित्त मंत्रालय, ग्राम प्रधान तक के पदों पर सुशोभित हो रही है। इसके साथ - साथ जल थल, वायु सैना, डॉक्टर, अध्यापिका, समाज सेविका, वैज्ञानिक क्षेत्र तक देश की उन्नति में अपना योगदान दे रही हैं। इससे पता चलता है कि स्वतंत्र भारत में नारी की स्थिति सुधर रही है और पुरुष के बीच असमानता की खाई पटती जा रही है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1 डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ला, डॉ. अर्चना शुक्ला, भारतीय इतिहास में नारी, शिक्षादूत ग्रंथ आधार प्रकाशन समता कॉलोनी रायपुर
2. डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी, द.ला.ए. भारत का संविधान 1994
3. मधु राठौर, पंचायतीराज और महिला विकास
4. स्वतंत्रता के बाद महिलाओं की भूमिका दृष्टि आईएएस hindi.com 18 जून 2018
5. संजय तिवारी, धीरे-धीरे ही सही भारतीय राजनीति में बदल रही महिलाओं की तस्वीरें 21 जुलाई 2022 विशेष रिपोर्ट
6. प्रतिभा जैन, भारतीय स्त्री सांस्कृतिक संदर्भ, रावत पब्लिकेशन जयपुर 1998
7. चंद्रावली लखन पाल, स्त्रियों की स्थिति, गंगा पुस्तक माला कार्यालय लखनऊ 7
8. डॉ राजकुमार, नारी के बदलते आयाम अर्जुन पब्लिकेशन हाउस 2005
9. भारत में महिलाओं की स्थिति कल और आज Civilhindipedia.com13 सितंबर 2018

मैत्रेयी पुष्पा के आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में चित्रित नारी समस्याएँ

श्रीमती हिरण वैश्य

अध्यापिका, हिंदी विभाग
दुमदुमा महाविद्यालय
तिनसुकिया, असम
ई-मेल : baishyahiran@gmail.com

शोध-सार :

अपने जीवन की लंबी परिक्रमा में विस्तारित तथ्यों के साथ संचित विचित्र अनुभवों पर अपने दृष्टिकोण से किया जाने वाला शोध आत्मकथा है। लेखक की स्मृतियों की नींव पर यह भवन खड़ा होता है। जीवन में किए जाने वाले काम अथवा चिंता की व्याख्यान ही आत्मकथा नहीं होती। जिस तरह लेखक के लिए कथा शिल्प पर दखल होना अनिवार्य होता है, ऐसे ही निरपेक्षता, गहरी अंतर्दृष्टि तथा समझौताविहीन सामाजिक जिम्मेदारी भी। इन बातों का प्रसंग मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुण्डल बसै' क्यों वैचित्र्यपूर्ण तथा हृदयस्पर्शी बनी है से है।

नारीवादी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में अपने जन्म के पूर्व से लेकर पिता की मृत्यु, विधवा माँ कस्तूरी के अनेक समस्याओं से गुजरना, मैत्रेयी की पढ़ाई, उसकी शादी तथा शादी के बाद बड़ी बेटी के जन्म तक घटित सारी महकत्वपूर्ण कथाओं को समेट लिया है। उपन्यास शैली में लिखित इस आत्मकथा में लेखिका ने आत्मकथा की नायिका तथा अपनी विधवा माँ की घुटन भरी जिंदगी का चित्र प्रस्तुत किया है। वे बाल्यकाल से ही नारी की तमाम समस्याओं का साक्षुस गवाह रही हैं। इसी से उनके मन में नारी के प्रति संवेदनाएँ इस तरह से घट कर गईं कि जिस विषय पर भी वे कलम चलती हैं, नारी की समस्याएँ अपने आप फूट पड़ती हैं। शिक्षा की समस्या, अनमेल विवाह की समस्या, विधवाओं की समस्या, अनैतिक संबंध की समस्या, शोषण एवं उत्पड़न की समस्या – जैसी सर्वभारतीय प्रमुख समस्याओं को उजागर करने में सक्षम 'कस्तूरी कुण्डल बसै' को नारी समस्या का दस्तावेज भी कहा जा सकता है।

बीज शब्द :

मैत्रेयी पुष्पा, आत्मकथा, नारी समस्या।

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य जगत में मैत्रेयी पुष्पा की खास पहचान है। उम्र की दृष्टि से जिन्होंने बहुत देर से प्रवेश तो किया, पर उनकेसाहित्य-कर्म में इतनी ऊर्जा अंतर्निहित थी कि जाने-माने साहित्यिकारों की पहली श्रृंखला में अपना नाम दर्ज कर सकीं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी साहित्य कृतियों के माध्यम से खासकर स्त्री से संबंधित मुद्दों पर ऐसे कड़वे सत्य का उद्घाटन किया है कि पुरुषतांत्रिक समाज का जीता-जागता चेहरा सामने उभर आया। उनकी रचनाओं ने सही मायने में समाज के दर्पण का काम किया है। यद्यपि लेखिका ने साहित्य की विविध विधाओं पर कलम तोड़ दी है, पर आत्मकथाओं ने उन्हें पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया, 'कस्तूरी कुण्डल बसै' और 'गुड़िया भीतर गुड़िया' मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाएँ हैं। उपन्यास शैली में लिखे जाने के कारण उन्हें आत्मकथात्मक उपन्यास माना जाता है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में लेखिका अपने जन्म के पहले से शुरू करते हुए पिता की मृत्यु, विधवा माँ कस्तूरी के अनेक समस्याओं से गुजरना, मैत्रेयी की शिक्षा, शादी और शादी के बाद बड़ी बेटी के जन्म तक घटित सारी महत्वपूर्ण कथाओं को समेट लिया है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में कस्तूरी को अनेक समस्याओं से गुजरना पड़ा था। अपनी विधवा माँ कस्तूरी की घुटन भरी जिंदगी की समस्याओं का अनुभव लेखिका ने बहुत ही गहराई से किया था। इसी से उनके मन में नारी के प्रति संवेदनाएँ इस तरह से बीज बन बैठीं कि परवर्ती समय में अपनी कलम से पौधा फूट निकला, जो बाद में फूल-फल देने लगा। मैत्रेयी भारतीय नारी की आवाज बनकर खड़ी हुईं।

अध्ययन का महत्व :

साहित्यकार मैत्रेयी पुष्पा ने पारंपरिक मर्यादाओं की लकीर से हटकर आधुनिक भावभूमि की नींव पर अपने को खड़ा किया है। नारी के प्रति अत्यंत ही संवेदनशील ये साहित्यकार नारी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती रहीं। जहाँ भी नारी पर शोषण, उत्पीड़न, अत्माचार-अन्याचार आदि दिखाई पड़ता है, उनकी आवाज कागज के पन्नों पर बुलंद हो उठती है। आज के भूमंडलीकरण के जमाने में लोगों की भोगवादी मनोवृत्ति के कारण आम जनता को शोषण उत्पीड़न का शिकार होना पड़ रहा है, नारी को यंत्रणाओं का सामना करना पड़ रहा है। अपने को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें सचेत होना पड़ेगा। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं से आज की नारी बहुत कुछ सीख सकती है।

विश्लेषण :

इतिहास के पन्नों को पलटने से पता चलता है कि प्राचीन काल में भारतीय समाज में नारी की खास मर्यादा रही है। नारियाँ वेदों के श्लोकों की रचना किया करती थीं। उन्हें पुरुष के समान ही सामाजिक मान्यता मिलती थी। समाज में स्त्री शिक्षा का प्रचलन था। चाहे धार्मिक उनुष्ठान हो या पारिवारिक जीवन-सभी में स्त्रियों की अहम भागीदारी थी। पर बदलती परिस्थिति में सामाजिक रीति-नीतियों के साथ-साथ लोगों की मानसिकता में भी बदलाव आया, जिससे नारी की मर्यादा घटती गई, वह सबला से अबला तक उतर गई। सतीदाह प्रथा, घूँघट प्रथा आदि इसी का गवाह हैं। आधुनिक भारत में यद्यपि राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी आदि नेताओं ने नारी के पुनरुत्थान की चेष्टा की, फिर भी स्वाधीनता के पचहत्तर साल बाद भी नारी को पूर्ण स्वाधीनता नहीं मिली। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था ने नारी को उनके द्वारा निर्धारित दायरे से बाहर न आने दिया।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने अनुभवों की नींव पर साहित्य का भव्य भवन खड़ा किया है। चूँकि आत्मकथा की नायिका लेखिका खुद हैं, अत: उनमें अपने अनुभवों का ही चित्रण हुआ है। पुरुष प्रधान समाज में नारी पर हुए अत्माचार, अनाचार, उत्पीड़न, शोषण आदि के यथार्थ प्रसंगों को उन्होंने अपनी आत्मकथा में पिरोया है। इससे स्पष्ट है कि नारी की तमाम समस्याओं के उद्घाटन से 'कस्तूरी कुण्डल बसै' परिपुष्ट है ।'कस्तूरी कुण्डल बसै' में उपलब्ध नारियों की समस्याओं का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं पर किया जा रहा है –

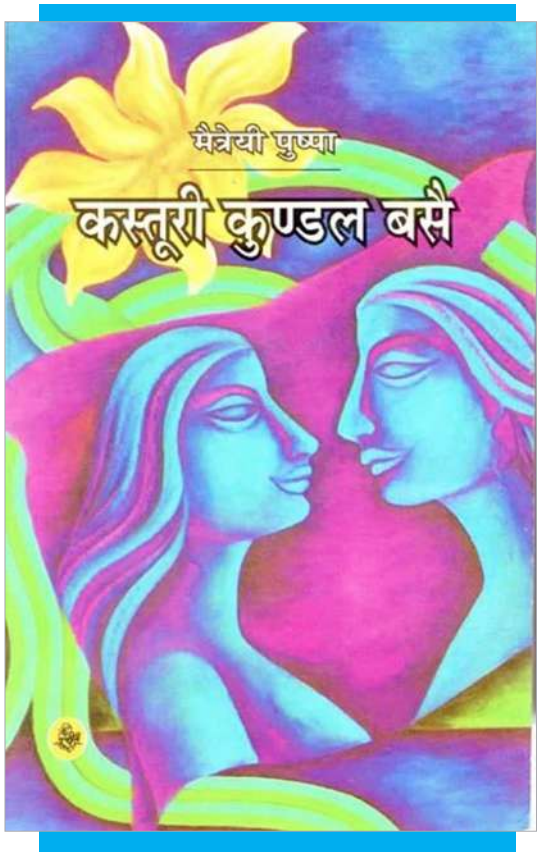

शिक्षा की समस्या :

मैत्रेयी पुष्पा की साहित्यकृक्तियों में प्राय: ग्रामीण समाज का वास्तविक चित्र सामने आता है ।'कस्तूरी कुण्डल बसै' में भारतीय समाज की ऐसी एक पहलू का वर्णन हुआ है, जहाँ स्त्री शिक्षा का अभाव दिखाई पड़ता है। अपवाद के तौर पर अगर कोई स्त्री शिक्षा ग्रहण हेतु निकल भी पड़ती तो न जाने उसे किन-किन दीवारों को लांघना होता। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' आत्मकथात्मक उपन्यास के प्रमुख चरित्र कस्तूरी अपनी बच्ची की पढ़ाई के साथ समझौता नहीं करना चाहती थी। एक ओर ससुर की मृत्यु तथा दूसरी ओर अपनी सरकारी नौकरी लग जाने पर उसकी बच्ची पर भारी विपत्ति आ पड़ी। फिर भी अलीगढ़ में समाज कल्याण बोर्ड की संयोजिका के वहाँ उसे रखा गया ताकि उसकी पढ़ाई ठीक से हो सके। पर संयोजिका के बेटे के अनुचित व्यवहार के कारण वह वहाँ नहीं रह सकी। तत्पश्चात कस्तूरी ने अपनी बेटी को किसी परिचित व्यक्ति के घर में रख दिया। पर वहाँ भी मैत्रेयी कामुक पुरुषों के अभद्र व्यवहार का शिकार हुई। सिर्फ इतना ही नहीं, कॉलेज के प्रिंसिपाल की कामुक दृष्टि से भी वह बच नहीं पाई। मैत्रेयी येन-तेन प्रकारेण अपने को सुरक्षित तो रख सकी, पर उसकी पढ़ाई का क्या होगा। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में चित्रित शिक्षा की समस्या को इन पंडिक्तयों से उभरा जा सकता है, ''माँ के अनुसार पढ़ाई लिखाई में अड़चन आना ही सर्वनाश होना है, जबकि मैत्रेयी की समस्या यह है कि वह लड़की है। लड़की होने की सजा वह जगह-जगह पाएगी।'' (पुष्पा मैत्रेयी; कस्तूरी कुण्डल बसै, पृष्ठ 42)

अनमेल विवाह की समस्या :

हर समाज के लिए विवाह एक महत्वपूर्ण सामाजिक कार्यक्रम है। इसके द्वारा नर-नारी के दैहिक तथा हार्दिक मिलन से एकात्मबोध स्थापित होता है, जिससे गृहस्थ जीवन आगे बढ़ता है। इसलिए सभी के लिए जरूरी है कि इसे योगात्मक दृष्टि से ग्रहण करें। पर समाज में कुछ ऐसी परंपराएँ अथवा ऐसी माननिकताएँ घर कर गई हैं कि विवाह समस्या में बदल जाता है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में कस्तूरी अनमेल विवाह का शिकार है। तत्कालीन समाज में नारी की इच्छा-अनिच्छा का कोई सवाल ही नहीं आता था। बस घरवाले जो कहेंगे उसे करना ही होता था। उस समय लड़कियों को

व्यक्ति के तौर पर नहीं, बालिका के तौर पर देखा जाता था, लड़कियाँ बेच दी जाती थीं। आर्थिक विपन्नता से जूझती उस परिवार में पीलिया का मरीज बड़े भाई का विवाह कराने की शर्त पर आठ सौ चाँदी के सिक्कों के बदले कस्तूरी की शादी बीमार बूढ़े के साथ करा दी गई थी। यद्यपि कस्तूरी ने उस विवाह में अपनी आपत्ति जताई, फिर भी विवाह के बिना जीना मुश्किल माने जाने वाले समाज में उसकी बात सुनने वाला-मानने वाला कौन था। परिणाम यह निकला कि जब कस्तूरी की बच्ची मैत्रेयी अठारह महीने की हुई उसके पिता चल बसे। विधवा कस्तूरी के लिए इसके बाद का समय बहुत संघर्ष का रहा है।

विधवाओं की समस्या :

भारतीय समाज में विधवाओं को तनहाई के कठोर रास्ते से गुजरना होता है। पुराने समय में उसे सती दाह जैसी कुरीतियों को झेलना पड़ता था। परिवर्तित समय में ऐसी प्रथा पर यद्यपि रोक लगाई गई, विधवाओं को जीने का हक मिला, पर फिर भी लोगों की मानसिकता नहीं बदली है, जिससे आज भी विधवाओं पर समाज की पाबंदी विद्यमान है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में लेखिका ने बताया है कि मैत्रेयी की माँ कस्तूरी कम उम्र में ही विधवा हो गई थी। पर कस्तूरी इतनी ताकतवर थी कि अपने पति की मृत्यु पर वह रोयी तक नहीं, उसने तत्काल अपने अधूरे काम करने के लिए मन को ठान लिया। उसका ऐसा कार्य समाज के लिए हैरानी का कारण रहा है, लेकिन विधवाओं को तो सामाजिक दबावों से जूझना ही होता है। कस्तूरी अपने विधवापन के कारण जिंदगी भर पीड़ा और यातना से विवश है। वह कहती है, ''विधवा जीवन में जीवन जैसा कुछ नहीं होताष।'' (पुष्पा मैत्रेयी; कस्तूरी कुण्डल बसै, पृष्ठ 118)

सामाजिक मानसिकता ने हरदम विधवाओं की जिंदगी को झकझोर कर रख दिया है। अनेक पाबंदियों के झेलते कस्तूरी ने अपनी बेटी को शिक्षित किया, पर विवाह के मामले में जब उसे वर ढूँढ़ने का प्रसंग आता है, फिर से उसके विधवापन की पाबंदी उसे आगे नहीं बढ़ने देती, क्योंकि पुरुष सत्तात्मक समाज वधू के परिवार से पुरुषों की टोली चाहता है। इसलिए विधवा कस्तूरी को बेटी के लिए वर खोजते वक्त दिक्कत महसूस हुई। पराधीन भारत से लेकर समकालीन समाज तक की विधवाओं के संघर्षों की प्रस्तुति आत्मकथा में हुई है।

अनैतिक संबंध की समस्या :

पुराने समय से लेकर आज तक नारियों को पुरुषों के कामुक हरकतों का शिकार होना पड़ रहा है। सिर्फ अपनी कायिक पहचान के कारण उन्हें बलत्कार जैसे अनैतिक तथा घिनौने कार्य से संघर्ष करना पड़ता है। मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में नारी की ऐसी समस्याओं का चित्र खींचा गया है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' मैत्रेयी पुष्पा के स्वानुभव का दस्तावेज रहा है। उसे बचपन में पढ़ने जाते समय स्कूल के रास्ते में कटु अनुभवों का सामना करना पड़ा था। फिर बड़ी होने पर जब कॉलेज जाने लगी, बस के ड्राइवर से उसका बुरा अनुभव रहा है। ''नोच-खोंच के चलते मैत्रेयी अबला नारी सी रोने लगी।'' (पुष्पा मैत्रेयी; कस्तूरी कुण्डल बसै, पृष्ठ 127)

उसके बाद संयोजिका के घर में रहने लगी तो वहाँ कटु व्यवहार झेलना पड़ा। फिर अलीगढ़ में रहते समय एक बूढ़ा द्वारा पुन: ऐसा अनैतिक अनुभव का सामना करना पड़ा। ऐसे ही हिम्मतवाली होते हुए भी भद्र समाज के अभद्र वातावरण से मैत्रेयी आगे बढ़ती रही। उसे यह पता था कि इससे छुटकारा पाने का एकमात्र रास्ता है विवाह। इसलिए उसने अपनी माँ से अपना विवाह करवाने की बात उठाई थी। ऐसे ही लड़कियों पर हो रहे शारीरिक हमले का प्रकाशन प्रस्तुत ग्रंथ में हुआ है।

शोषण एवं उत्पीड़न की समस्या :

भारतीय परंपरा यह बताती आई है कि नारी सालों से अपने अधिकार से वंचित रही है। पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक या मानसिक जो भी हो नारी शोषित बनती आई है।

नारी चाहे बेटी, बहन, बहू, पत्नी, माँ या सास - उसे तो दायित्वों का पूर्ण निर्वाह करना होता था, पर 'लोग क्या कहेंगे' के दायरे में रहकर। ऐसी स्थिति में उत्पन्न समस्याओं का 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में बेहतरीन तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

'लोग क्या कहेंगे' के बारे में परवाह न करने वाली विधवा कस्तूरी के लीक से हटकर चलते वक्त उसे रखैल कहकर उपहास किया गया था। पराधीन भारत में नारी के लिए शिक्षा, नौकरी आदि की प्राप्ति असंभव थी।

नारी के लिए पर्दा प्रथा का निर्वाह करना अनिवार्य था, नहीं तो उसे बदचलन माना जाता था। ''दुश्चरित्र स्त्रियों की दुर्दशा देखी है और सुनी भी है। उनका सिर मुंडा दिया जाता है। मुँह में कालिख पोतकर गाँव में घुमाया जाता है, त्याग दी जाती है या वन में छोड़ आते हैं।'' (पुष्पा मैत्रेयी; कस्तूरी कुण्डल बसै, पृष्ठ 23) ऐसे प्रसंगों के जरिए नारी को स्वयं निर्णय लेने में वंचित रहने से उत्पन्न समस्याएँ भी सामने आई हैं।

निष्कर्ष :

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' अपने समाज के अनुभवों से प्राप्त तथा नारी चेतना से उत्पन्न वास्तविकता का दास्तान रहा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानसिक तनाव से उत्पन्न स्त्री की यथार्थता के प्रस्फूटन में सिद्धहस्त मैत्रेयी पुष्पा ने अपने समय में घटित घटना प्रवाह को एक सूत्र में इस तरह से पिरोया है कि चलते-चलते अनायास नारी की तमाम विबंबना 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में समाहित हो गई। विवाह, दहेज, आर्थिक विपन्नता, शोषण, शिक्षा, अनैतिक संपर्क, विधवाओं की समस्याएँ जैसी स्त्री विषयक समस्याओं पर लेखिका अत्यंत ही जागरूक हैं । नारी के अंतर्द्वंद्वों के चलते वैयक्तिक एवं पारिवारिक जटिलताओं की ओर भी उन्होंने इशारा किया है। नारी की पहचान पहले व्यक्ति और फिर नारी हो। नारी को पाबंदी में घिरकर नहीं बल्कि पाबंदी के बगैर रहने की स्वाधीनता मिले, यही मैत्रेयी पुष्पा की साहित्य कृतियों की आवाज है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में मैत्रेयी पुष्पा ने समस्याओं से घिरी स्त्रियों के बीच अपने को स्वतंत्र नारी के तौर पर उदाहरण प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत आत्मकथा में स्त्री से संबंधित तमाम मुद्दों को उठाया गया है, जिससे भारतीय स्त्रियों को समस्या से छुटकारा मिलने का उपाय मिल सकता है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. पुष्पा मैत्रेयी; कस्तूरी कुण्डल बसै; राजकमल प्रकाशन , 2017
2. चेरियन लिबी; मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में समसामायिक समस्याएँ; एक अध्ययन, साहित्य रत्नाकर, कानपुर; प्रथम संस्करण 2021
3. गाँधी महात्मा (असमिया अनुवाद-कल्पिता दुवरा); नारी आरु सामाजिक अविचार; असम प्रकाशन परिषद; गुवाहाटी; तृतीय प्रकाश, दिसंबर 1983
4. पुष्पा मैत्रेयी; गुड़िया भीतर गुड़िया; राजकमल प्रकाशन; नई दिल्ली; चौथा संस्करण, 2019
5. पुष्पा मैत्रेयी ; मेरे साक्षात्कार ; किताबघर प्रकाशन; नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010

स्त्री-विमर्श

'दोहरा अभिशाप' और 'शिकंजे का दर्द' में स्त्री मुक्ति का स्वर : एक अवलोकन

नीतामणि बरदलै

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी-781001, असम
मो. 6913412180
ई-मेल : nitamoni.dmm@gmail.com

डॉ. नूरजहां रहमतुल्लाह

शोध निर्देशिका, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी
nurjahan@cottonuniversity.ac.in

शोध-सारांश :

स्त्री का आत्मसंघर्ष सदियों से विश्व भर में विद्यमान है। परंपरागत रूप से देखा जाए तो स्त्री के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण आदर्श मानदंडों के ऊपर ही निर्भर है। बदलते समय के परिवेश में तथा सामाजिक व्यवस्था में शोषण, लिंग भेद से मुक्ति की गुहार के बावजूद भी स्त्री के प्रश्न नहीं बदले हैं। स्त्री को मनुष्य के रूप में स्वीकारना पुरुष सत्तात्मक समाज का सबसे बड़ा सवाल है। जाति आधारित भारतीय समाज में दलित होकर जीना किसी संघर्ष से कम नहीं है। दलित साहित्य समाज की इसी यथार्थ को अभिव्यक्ति देती है। जाति और पितृसत्ता के बीच दलित स्त्री दोहरे रूप से संघर्षशील है। दलित महिलाओं की समस्याएँ साधारण तथा उच्चवर्गीय स्त्री की समस्या से बिल्कुल अलग हैं। दलित स्त्री समाज के विभिन्न क्षेत्र में निचले पायदान पर खड़ी है। दलित लेखिकाएँ अपने आंतरिक और बाह्य जगत के मनोभाव को दु:साहस के साथ लिखने लगी हैं, जिसमें स्त्री चेतना की आत्मा, स्व और अहं गूँजित हैं।

बीज शब्द : स्त्री, मुडिक्त, दलित, आत्मकथा।

भूमिका :

किसी समाज का निर्माण स्त्री और पुरुष के समानांतर प्रयासों से होता है। जैविक स्वरूप यद्यपि स्त्री और पुरुष को भिन्नता प्रदान करती है, परंतु मानवीय संवेदन की दृष्टि से दोनों ही प्रकृति में समानता के अधिकारी हैं। स्त्री मुडिक्त आंदोलन स्त्री के शोषित और अनजाने पीड़ा को उजागर करता है। सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक क्षेत्र में समानता के लिए संघर्ष करती हुई स्त्री को न्याय प्रदान करने के लिए किए गए प्रयास ही स्त्री मुक्ति की मुख्य विचारधारा है। स्त्री मुक्ति आंदोलन का प्रारंभिक रूप पाश्चात्य देशों में दिखाई देता है। पाश्चात्य देशों में मतदान और लैंगिक समानता के लिए कई वर्षों तक स्त्रियों ने लड़ाई लड़ी। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात नवजागरण काल

में स्त्री को कानूनी तौर पर अनेक सुविधाएँ प्रदान की गईं। इस दृष्टि से संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अंबेडकर के प्रति भारतीय नारी सदैव ऋणी रहेगी। आज दलित स्त्रियाँ अपने हक की मांग करने लगी हैं और अत्यधिक जागृत हुई हैं, जिसके कारण दलित स्त्री आंदोलन उभर आया है । सन 1999 में कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' और 2011 में सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' का प्रकाशन दलित साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। दोहरा अभिशाप पहली दलित आत्मकथा है, जिसे एक स्त्री द्वारा लिखी गई है। वस्तुत: दलित स्त्रियाँ दलितों से भी दलित हैं। युग-युग से दलित स्त्री मानवता की जमीन तलाशती है, पर उसे हर क्षेत्र में दोहरे शोषण का शिकार होना पड़ता है। इस दोहरे शोषण से समस्त दलित नारी को मुक्त करने का स्वर आलोच्य आत्मकथाओं में गूँजित है। आज भी दलित नारी को हाशिए में रखा गया है। वे हिंसा का शिकार हो रही हैं। शारीरिक आघात, यौन-शोषण, बलात्कार, घरेलू हिंसा आदि से दलित नारी प्रताड़ित है। 'दोहरा अभिशाप' और 'शिकंजे का दर्द' में लेखिकाओं ने यथार्थ रूप से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक, राजनैतिक क्षेत्र में स्त्री मुक्ति का स्वर अभिहित किया है। असल में हमारे समाज में ऐसी अनेक महिलाएँ हैं, जो सजगता के अभाव में पिछड़ी हुई हैं। नारीवादी साहित्य सदैव नारी को साहस प्रदान करता है तथा स्त्री साहित्यकारों के स्त्री चेतना के कारण स्त्री को शडिक्त मिली है। कौसल्या बैसंत्री और सुशीला टाकभौरे का जीवन पीड़ित नारी के लिए आदर्श है। 'दोहरा अभिशाप' और 'शिकंजे का दर्द' दलित स्त्री और दमित स्त्री के लिए साहस की मुक्ति गाथा हैं।

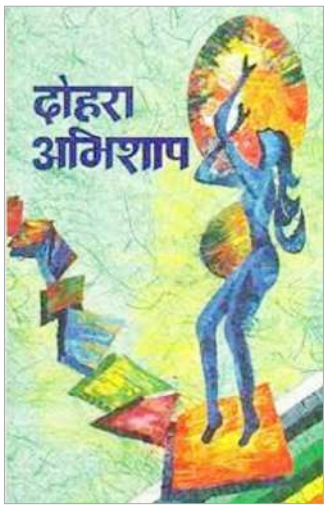

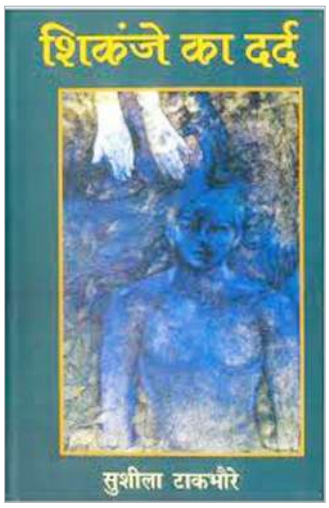

दलित समाज व्यवस्था में स्त्रियाँ आर्थिक दुरावस्था के कारण मजदूरी करने के लिए मजबूर हो जाती थीं, परंतु मजदूरी करने के बाद भी वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र न थीं। पति के सामने उसे हर रोज अर्थ के लिए भिक्षा माँगने की जरूरत थी। पति से पैसे के लिए हाथ फैलाना तथा अपना पैसा पति को देना ये दोनों कार्य का विरोध आलोच्य आत्मकथाओं में परिलक्षित होते हैं। बिना आर्थिक साधन के स्त्री आत्मनिर्भरशील नहीं बन पाती है। उसे हमेशा पितृसत्तात्मक समाज में डरा-सहमा रहना पड़ता है । निर्दोष होने पर भी उसे ऐसी सजा दी जाती है कि एक स्त्री आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाती है। नारी अपने सीमित दायरे से बाहर जब निकलती है तो उसे बदचलन कहा जाता है। पति और पिता के अनुसार वह सब कुछ करती है तो वह संस्कारी बन जाती है और उस नैतिकता के खिलाफ जाती है तो वह कुलनाशी मानी जाती है। कौसल्या बैसंत्री आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में लिखती हैं, ''तुम ही बदचलन हो, यह कहकर उसे रात भर घर के बाहर रखा। वह बिचारी घर के पीछे रात भर डर-डर के रही और सवेरे उसे गधे पर बैठाया गया। बस्ती से बाहर निकालने के बाद वह बेचारी झाड़ी में छिपी रही, क्योंकि उसके बदन पर पूरे कपड़े नहीं थे। रात में वह बस्ती के कुएँ में कूद गई। सवेरे उसका शरीर पानी के ऊपर तैर रहा था। उसके माँ-बाप आए और कहने लगे कि इसने हमारी नाक कटवाई, अच्छा ही हुआ कि यह कुलटा मर गई।'' (बैसंत्री, 2015:73)

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना स्त्री की दशा अत्यंत ही दयनीय बन जाती है। इसलिए कौसल्या बैसंत्री ने नारी मुक्ति के लिए आर्थिक

स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण माना है और आर्थिक क्षेत्र में स्त्री मुडिक्त के स्वर को अभिहित किया है। आर्थिक दुरावस्था के कारण ही उच्च शिक्षित होने के बावजूद सुशीला टाकभौरे को मातृसेवा संघ में गंदे कपड़े उठाने का कार्य करना पड़ता था। लेकिन फिर भी अपना हिम्मत न हारकर उन्होनें बी.एड परीक्षा पास की और फिर स्कूल में अध्यापना करने लगीं। आर्थिक अवस्था को उन्नत करने के लिए एक नारी को कितना अपमान सहन कर कार्य करना पड़ता है - इसका ज्वलंत वर्णन प्रस्तुत आत्मकथा में रेखांकित है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के कारण ही वह पति और ससुराल के खिलाफ आवाज उठा सकती थीं। वह लिखती हैं, ''शिक्षिका की नौकरी लगने के बाद मेरा बढ़ता सम्मान और मेरी नाराजीगी देखकर ननद ठीक रहने लगी थी, फिर भी कभी-कभी झगड़ा होता ही था।'' (टाकभौरे, 2011 : 84)

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर एक स्त्री को सामाजिक और पारिवारिक क्षेत्र में स्वतंत्रता और सम्मान प्राप्त होता है।

दलित नारियों का राजनैतिक क्षेत्र में अधिक योगदान नहीं है। कौसल्या बैसंत्री और सुशीला टाकभौरे स्त्रियों को राजनैतिक क्षेत्र में जागरूक होने के लिए प्रेरणा देती थीं ताकि लोग देश के राजनैतिक परिवेश को जान पाएँ। 'दोहरा अभिशाप' में दिखाया गया है कि छात्रावस्था से ही कौसल्या बैसंत्री राजनैतिक क्षेत्र में उतरती हैं। कौसल्या बैसंत्री अंबेडकर से प्रभावित थीं। लोगों को अंबेडकर के संदर्भ में ज्ञात करने के लिए वे बस्ती में जाकर भाषण देती थीं। सन 1942 में नागपुर में अखिल भारतीय अस्पृश्य समाज का अधिवेशन हुआ था, जिसका मूल उद्देश्य महिलाओं के लिए विशेष था। लेखिका उस अधिवेशन के बारे में लोगों को ज्ञात कराती। उस समय आत्मकथाकार अस्पृश्य विद्यार्थी फेडरेशन की ज्वइंट सेक्रेटरी थीं। वे पूरे भारत के सामाजिक कार्य में भाग लेने वाली महिलाओं को एकजुट कर अखिल भारतीय महिला संस्था को मजबूत बनाना चाहती थीं। आत्मकथाकार सुशीला टाकभौरे ने भी स्त्रियों को राजनैतिक क्षेत्र में जागृत करने की अनेक प्रयास किए। सुशीला टाकभौरे महिला जागृति कार्यक्रम में जाकर महिलाओं के उद्धार और जागृति का भाषण देती थीं। अधिकार को प्राप्त करने के लिए साहस और प्रेरणा देती थीं। वे महिला मुक्ति आंदोलन से भी जुड़ी हुई थीं। सुशीला टाकभौरे प्रकाश हाईस्कूल की नौकरी करते समय राजनीति और सामाजिक सेवा कार्यक्रमों के प्रति अधिक ध्यान देती थीं। राजनीति से जुड़ी हुई विभिन्न मीटिंग और भाषण-उब्धोधन के कार्यक्रम में जाती थीं। सुशीला टाकभौरे के समय में नारी को जहाँ सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भाग लेने का अधिकार तथा बोध नहीं था, उस समय सुशीला टाकभौरे राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेकर स्त्री मुक्ति की वार्ता प्रदान करती थीं।

भारतीय समाज में स्त्री ही प्रमुख रूप से धार्मिक आडंबर और अंधविश्वासों का स्वीकार बनती है। धार्मिक विश्वास और विधि-विधान के नाम पर स्त्री को अत्यधिक दमित किया जाता है। समाज में विधवाओं को धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने की अनुमति नहीं होती तथा अवसगुण माना जाता है। ठीक उसी प्रकार बहुत-से रीति-रिवाजों में महिलाओं को भाग लेने की अनुमति नहीं मिलती है। कौसल्या बैसंत्री ने नारी को भगवान और धर्म के पीछे रहने से ज्यादा शिक्षा को महत्व देकर अंधविश्वासों से मुक्ति दिलाने के स्वर को अभिव्यक्त किया है। कौसल्या बैसंत्री धार्मिक अंधविश्वासों का उल्लेख आत्मकथा में इस प्रकार करती हैं, ''मुझे उनके अज्ञान पर आश्चर्य हुआ। पढ़े-लिखे भी धर्म के नाम पर विचित्र बातें सोचते हैं। जब वे कभी बाहर जाते हैं, कुछ दिनों के लिए, तब दरवाजे को ताला लगाकर भगवानों के फोटो की फौज लाइन से लगाकर रखते थे। और हमसे कहते, जरा हमारे घर का ख्याल रखना। उन दिनों उस इलाके में तले तोड़कर चोरियाँ होती थीं। मैंने हँसते हुए कहा, अपने दरवाजे पर भगवनों का पहरा बैठा दिया है, भगवानों की पूरी पलटन आपके घर की रक्षा नहीं करेगी? वे हँस दिए। अब इस सदी में भी लोग ऐसी बातें सोच सकते हैं।'' (बैसंत्री, 2015:73)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कौसल्या बैसंत्री प्रगतिवादी सोच रखती थीं। वे अपने मन और समाज को आधुनिक भावधारा से दृष्टिगोचर करना चाहती थीं। कौसल्या बैसंत्री

अपनी जाति को उच्च स्थान देने के लिए स्त्री की पढ़ाई को महत्व देती हैं न कि धार्मिक आडंबरों को। सुशीला टाकभौरे ने अपने समाज में व्याप्त अंधविश्वास को आत्मकथा में व्यक्त किया और उस अंधविश्वास से ग्रसित लोगों का उद्धार करने का प्रयास किया। दलित समाज में विशेष रूप से महिलाएँ अधिक अंधविश्वास का शिकार बनती हैं। सुशीला टाकभौरे ने अपनी आत्मकथा में महिलाओं को अंधविश्वास से मुक्ति दिलाने की कोशिश की। सुशीला टाकभौरे आत्मकथा में लिखती हैं, ''धार्मिक फिल्मों द्वारा भी कई तरह से भयभीत करने के लिए झूठा धर्म प्रचार किया जाता था। महिलाएँ इसकी शिकार जल्दी बन जाती थीं।'' (टाकभौरे, 2011:84) इस तरह लेखिकाएँ स्त्री को सामाजिक अंधविश्वास, कु-कर्म को त्यागकर आत्मविश्वास से जीने की प्रेरणा देती हैं।

शिक्षा ही वह माध्यम है, जिससे एक समाज, एक राष्ट्र, एक परिवार समृद्ध बन सकता है। स्त्री मुडिक्त तथा नारी स्वतंत्रता के लिए शिक्षा अनिवार्य है। 'दोहरा अभिशाप' और 'शिकंजे का दर्द' में दोनों ही आत्मकथाकारों ने अपने जीवन तथा समाज को सुधारने के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण अंग माना। उच्च शिक्षा प्राप्त कर कौसल्या बैसंत्री और सुशीला टाकभौरे ने अपने परिवार को ही उन्नत नहीं किया बल्कि समाज की हर स्त्री तथा उनकी बस्ती के लोगों को प्रेरित किया। आर्थिक रूप से जर्जरित, सामाजिक रूढ़ियों से ग्रसित सुशीला टाकभौरे के जीवन में शिक्षा प्राप्ति ही प्रमुख उद्देश्य था। उनके लिए शिक्षा एक आवेग और जिद थी। उन्होनें अत्यंत मर्म भरे शब्द से इसकी अभिव्यक्ति 'शिकंजे का दर्द' में किया है, ''सच यह था-कब आया यौवन, जान न पाया मन! शिकंजे में जकड़ा जीवन कभी मुडक्त भाव का अनुभव ही नहीं कर पाया। जिंदगी एक निश्चित की गई लीक पर चलती रही। वह उमंग कभी मिली ही नहीं, जो यौवन का एहसास कराती। उम्र के साथ कटु अनुभूतियों के दंश महसूस होते रहे। पीड़ा से छटपटाता मन मुक्ति का ध्येय लेकर आगे बढ़ता रहा, तब मुक्ति का मार्ग मैंने शिक्षा प्राप्ति को ही माना था।'' (टाकभौरे, 2011:75) शिक्षा के प्रति अत्यंत लगन और इच्छा के कारण ही जाति और आर्थिक कमजोरी सुशीला टाकभौरे के लिए बाधा नहीं बन पाई। 'दोहरा अभिशाप' में भी आत्मकथाकार ने शिक्षा को सबसे अधिक महत्व दिया। अत्यंत आर्थिक संघर्ष और गरीबी जीवन को झेलकर उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की और समाज को शिक्षा के आदर्श स्वरूप से परिचित कराया। माँ-बाप ने अनेक यातनाओं, जातीय प्रताड़नाओं को सहन कर उसे पढ़ाया-लिखाया। उन्हीं के शब्दों में, ''माँ-बाबा बहुत कष्ट उठाते थे हमें पढ़ाने के लिए।'' (बैसंत्री,2015:63) 'दोहरा अभिशाप' में लेखिका ने जाई-बाई नामक स्त्री के बारे में उल्लेख किया है, जिन्होंने आदिवासी महिलाओं को शिक्षित करने के लिए प्रयास किया। वह स्त्री शिक्षा के लिए महिलाओं को जागृत कर रही थी। इसी जाई-बाई के कारण ही कौसल्या बैसंत्री की माँ शिक्षा के प्रति जागरूक हुई और अपने बेटियों को शिक्षा दिलाने का निश्चय किया। कौसल्या बैसंत्री अपनी उच्च शिक्षा के कारण ही अपने समाज को परिवर्तन कर पाईं, प्रगति की राह बता पाईं।

पारिवारिक क्षेत्र में स्त्री को हर रूप से स्वतंत्र होना चाहिए- यही गूँज 'दोहरा अभिशाप' और 'शिकंजे का दर्द' में व्यक्त हुई है। कौसल्या बैसंत्री के जीवन और सुशीला टाकभौरे का जीवन एक उदाहरण है नारी को स्वतंत्रता लाभ करने का। कौसल्या बैसंत्री पति द्वारा अनेक अत्याचारों को सहन करती हुई अंत में उससे अलग रहने का संकल्प लेती हैं, जो दलित नारी के लिए अत्यंत कठिन निर्णय और संकल्प हैं । वहीं सुशीला टाकभौरे ने भी पति के अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाई। सुशीला टाकभौरे ने अनेक पारिवारिक संघर्ष को सहन किया। सास और ननद के अत्याचारों को सहनकर वह उच्च शिक्षा के सर्वोच्च पड़ाव पर पहुँचीं और अपना परिचय एक अध्यापक और समाज सेविका के रूप में दर्शाया। कौसल्या बैसंत्री स्वयं के साथ-साथ उनके आस-पास के दलित समाज को भी पारिवारिक क्षेत्र में मुक्ति दिलाना चाहती थीं। वह उनके आस-पास के स्त्रियों को विभिन्न नारी मुक्ति आंदोलनों के साथ जोड़ना चाहती थीं और स्त्री को परिवार और घर की चहारदीवारी से मुक्त करना चाहती

थीं। कौसल्या अपने पारिवारिक अत्याचार को सहन न कर, एक घुटन भरा जीवन न जीकर अपने पति के खिलाफ केस दर्ज करती हैं। कौसल्या लिखती हैं, ''बहुत अत्याचार होने पर मैंने कोर्ट में देवेंद्र कुमार पर केस दायर किया। आज दस वर्ष से कोर्ट में केस अटका पड़ा है । मुझे हर माह 500 रुपए मेंटेनेंस के मिलते हैं।'' (बैसंत्री, 2015 :106) इस प्रकार हम देखते है कि कौसल्या बैसंत्री पारिवारिक अत्याचार को सहन कर घुटन भरा जीवन जीने से अलग होना बेहतर मानती हैं। भारतीय समाज व्यवस्था में आज भी ऐसी अनेक स्त्री हैं, जो पढ़ना चाहती हैं, आगे बढ़ना चाहती हैं, परंतु विवाह के बाद परिवार के उलझनों में फँसकर, शिकंजे में फँसकर मुडक्त नहीं हो सकतीं और सभी आकांक्षा मन में बंद कर देती हैं। ऐसी स्त्री के लिए 'शिकंजे का दर्द' और 'दोहरा अभिशाप' आत्मकथा प्रेरणास्वरूप हैं।

निष्कर्ष :

प्राचीन युग से लेकर आधुनिक युग की कृतियों में नारी के विभिन्न रूपों का सृजन हुआ है। दलित महिला लेखकों द्वारा लिखी गई आत्मकथा दलित स्त्री का और स्त्री के लिए है। आलोच्य आत्मकथाओं में जीवन के विभिन्न क्षेत्र में नारी को किस प्रकार बंधनों से मुक्ति मिल सकती है अथवा लेखिकाओं के जीवन से किस प्रकार प्रेरित हो सकती है, इसका उल्लेख किया गया है। इन आत्मकथाओं में आहत की गूँज है। इसके माध्यम से दलित स्त्री की दोहरे संताप और दर्द से मुक्ति की कामना गई है।

दलित स्त्रियाँ अपने जातिगत और स्त्रीत्व के बंधन में दोहरा शोषण भुगतती हैं। 'दोहरा अभिशाप' और 'शिकंजे का दर्द' में संपूर्ण भारतीय दलित समाज का वास्तविक यथार्थ प्रतिबिंबित हुआ है। स्त्रियों को जागृत करने के लिए इस प्रकार के साहित्य की भूमिका अद्वितीय है। कौसल्या की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' और सुशीला की 'शिकंजे का दर्द' स्त्री जीवन के लिए साहस का प्रतीक और प्रेरणा की अमृत धारा हैं। ❑

आधार-ग्रंथ :

1. टाकभौरे, सुशीला. शिकंजे का दर्द. प्रथम संस्करण. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2011.
2. बैसंत्री, कौसल्या. दोहरा अभिशाप. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : परमेश्वरी प्रकाशन, 2015.

सहायक ग्रंथ :

1. कस्तवार, रेखा. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ. प्रथम संस्करण. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2016.
2. खान, डॉ. एम. फिरोज और डॉ. शगुफ्ता नियाज, संपा.नारी विमर्श : दशा और दिशा. प्रथम संस्करण. गाजियाबाद : आकाश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2010.
3. चमन लाल. दलित साहित्य : एक मूल्यांकन. प्रथम संस्करण.दिल्ली : राजपाल एंड संस, 2005.
4. चतुर्वेदी, डॉ. रश्मि. हिन्दी साहित्य में दलित चेतना. प्रथम संस्करण.कानपुर : सरस्वती प्रकाशन, 2014.
5. चौधरी, डॉ. विनोद. दलित चेतना और सुशीला टाकभौरे का साहित्य. प्रथम संस्करण.कानपुर : उत्कर्ष पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2020.
6. जैन, पुनीता. हिन्दी दलित आत्मकथाएं एक मूल्यांकन. प्रथम संस्करण.नई दिल्ली : सामयिक बुक्स प्रकाशन. 2017.

परशुराम शुक्ल की बाल कविता में अभिव्यक्त बाल समस्याएँ

सुरेखा संदीप जाधव

शोधार्थी, शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर
मो : 9860874050

डॉ. वर्षाराणी निवृतीराव सहदेव

शोध निर्देशक
श्री विजयसिंह यादव महाविदयालय,
पेठ वडगाव
मो : 8806919900
ई-मेल : varsha.sahadev@gmail.com

प्रस्तावना :

आधुनिक परिवेश के दिनों-दिन बदलते स्वरूप को देखते हुए, बच्चों की गंभीर समस्याएँ निर्माण हो रही है। बालक समाज में रहता है। समाज में रहकर ही उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। बालक को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक परिवेश तथा वातावरण से सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है। बच्चों की इच्छाएं और आवश्यकताएँ कभी आसानी से पूरी हो जाती है तो कभी उसके लिए संघर्ष करना पड़ता है। वास्तव में यह संघर्ष सामाजिक दायरे में रहकर करना पड़ता है। इस संघर्ष में यदि वह सफल होता है तो उसका समायोजन अच्छा होता है और यदि वह असफल हो जाता है तो उसकी इच्छाएं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधाएँ उत्पन्न हो जाती है, तब उसमें तनाव उत्पन्न होता है। तनाव से बच्चे दुखी हो जाते है और निराशा का अनुभव करने लगते है। इस निराशा से वह कभी समस्याओं से घिरने लगता है। उसके इदम, अहम और नैतिक अहम में संघर्ष उत्पन्न होने लगता है। इसी संघर्ष एवं तनाव के परिणामस्वरूप मानसिक समस्याएँ उत्पन्न होती है। मनोवैज्ञानिक समस्याओं के मूल में शारीरिक, सामाजिक, पारिवारिक, संवेगात्मक और चारित्रिक समस्याएँ होती है। बच्चों की मनोवैज्ञानिक समस्याएँ-आक्रामक होने की समस्या, जिद्दी होने की समस्या, झूठ बोलने की समस्या, डरपोक और दब्बू होने की समस्या, चोरी करने की समस्या, स्वास्थ्य विषयक समस्या, सपने देखने विषयक समस्या, भय तथा डर विषयक समस्या आदि।

बालक की स्वास्थ्य विषय समस्या :

स्वास्थ्य विषयक समस्या बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और मानसिक स्वास्थ्य की समस्या पर कवि ने हस्तक्षेप किया है, क्योंकि 21 वी सदी में बच्चों के स्वास्थ्य समस्या बहुत बढ़ रही है ऐसे में ऐसी समस्या पर प्रकाश डाल कर उनमें निजाद पाने के हेतु कवि ने कविता लिखी है।

भारत में छह ऋतुएं है। जो एक के बाद एक आती रहती हैं। उन छह ऋतुओं में से एक ग्रीष्म ऋतु होती है। जब वसन्त ऋतु समाप्त होती है तब वो ग्रीष्म ऋतु आती है। ग्रीष्म ऋतु ग्रीष्मकालीन सक्रांति के दौरान शुरू होती है।

हम सभी जानते हैं कि पृथ्वी घूमती रहती है, जब पृथ्वी घूमकर सूरज की तरफ झुकती है, उस समय गर्मी का मौसम आता है। जब गोलार्ध सूर्य की तरह होता है, तब गर्मी आती है और जब गोलार्ध सूरज से दूर होता है तो सर्दी होती है। ग्रीष्म ऋतु में वातावरण का तापमान प्राय: उच्च रहता है, गर्म हवा और तापमान में वृद्धि की वजह से ही यह ऋतु और अधिक गर्म हो जाती है। ग्रीष्म की वजह से बच्चे इस मौसम में ज्यादा नहाते हैं। नहाने के लिए बच्चे नदियों, कुएं, स्विमिंग टैंक का सहारा लेते हैं। पानी में रहने की वजह से बच्चे बीमार पड़ते है। गर्मी के मौसम के बारे में कवि लिखते है –

'बीत गया सर्दी,
गर्मी का मौसम,
कोयल ने यह कुक लगाई।
प्रकृति सु सुन्दरी को महाकाने
सब ऋतुओ की रानी आई।
धीमे पेड़ शिशिर के झोंके॥'

बिजली गिरना प्राकृतिक आपदा है। यह प्राकृतिक बिजली को गिरने से कोई रोक नहीं सकता है बल्कि इस संकट से भारत ही नहीं पूरा विश्व जूझ रहा है। बिजली कभी भी किसी भी जगह गिर सकती है। उसका समय कभी निश्चित नहीं होता। बिजली गिरने की वजह से मनुष्य के साथ कई अन्य प्राणियों की मौत हो रही है। हमें विज्ञान से इतनी तरक्की करनी चाहिए, इस पर ठोस उपाय ला सके। अमरिका जैसे राष्ट्र में बिजली गिरने से सबसे ज्यादा मौत होती है। ऐसी आकस्मिक मृत्यु को कम करने के लिए उन्होंने प्रबोधन किया कि जब बादल गरजेगा और आकाश में बिजली चमकेगी तब घर से बाहर न निकले। इस वजह से इस देश में बिजली से होने वाली मृत्यु में कटौती होगी। कवि परशुराम शुक्ल अपनी कविता में लिखते हैं–

'घिरी घंटाए काली-काली
हवा चल रही है मतवाली
बड़े जोर से बादल गरजे
आसमान में बिजली चमके'

वर्तमान में औद्योगीकरण और शहरीकरण को ध्वनि प्रदूषण का कारण बना हुआ है। इस बढ़ते हुए ध्वनि प्रदूषण को रोकने के लिए उचित योजना बनाना और उस पर रुझान करना आज सबसे बड़ी आवश्यकता है। परशुराम शुक्ल जी 'बाल सतसई' कविता में ध्वनि प्रदूषण को रोकने की सलाह देते हुए कहते हैं–

'कान फोड़ती ध्वनि हमें,
बाहर रही बनाय।
ध्वनि कम से कम कीजिये है
बस यही उपाय॥'

इस तरह परशुराम शुक्ल की कविताओं में बालकों की स्वास्थ्य एवं आरोग्य संबंधी समस्या का चित्रण हुआ है।

बालक की सपने देखने विषयक समस्या मनुष्य के मन में एक विशेष अवस्था सपने हैं। गहरी नींद में सपने आते है न जागते हुए, न सोते हुए बल्कि एक तो दोनों के बीच ही अवस्था में आते हे। सपने आने का मुख्य कारण खान-पान, रहन-सहन के साथ आपके शरीर की बीमारियां भी होती है। कवि परशुराम शुक्ल ने बच्चों को हाथी के बारे में स्वप्न देखने का वर्णन किया है। हाथी के बारे में सपना देखना शुभ सूचक मानते हैं। जीवन में सुख समृद्धि की बढ़ोत्तरी होती है, ऐसा माना जाता है। कवि ने इस संदर्भ में अप्रतिम काव्य लिखा है–

'मम्मी मैंने सपना देखा
सपने में दो हाथी
मुझसे बोले राजा भैया
दोनों हमारे साथी
बैठो पीठ हमारी तुमको
वन की सैर कराएं।'

बच्चे दिनभर जो इलेक्ट्रिकल वस्तुएं देखते हैं। उनके बारे में रात को विचार करते हैं, उनके बारे में नींद में सपने देखते हैं। जैसे – ट्रैक्टर, कार, रोबो, गेम, आदि। यह वस्तु बच्चों के लिए आकर्षण का केंद्र बनती है, इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं के बारे में शुक्ल लिखते है–

'सपने लगे इलेक्ट्रॉनिक
हमको अपने,
कभी हँसते, कभी रुलाते,
कभी डर भी जाते सपने।'

परशुराम शुक्ल जी की कविताओं में बालक को सपने देखने की समस्या का यथार्थ अंकन हुआ है। इनकी कविताओं में बालक को आकस्मित आनेवाले सपने डर के कारण, मानसिक तनाव के कारण तथा उसकी अतृप्त इच्छाओं के कारण आते है। कवि ने इन समस्या का चित्रण करते हुए समाधान भी प्रस्तुत किया है।

बालक की भय एवं डर विषयक समस्या :

परशुराम शुक्ल जी ने बालक के भय एवं डर के बारे में अपनी कविताओं के माध्यम से प्रबोधन किया है। बालक में डर की समस्या निर्माण हुई है। कवि ने लिखा है।

'पड़ना हो या लड़ना भिड़ना,
काम से भी हम करते।
आए कितने भी बांधाये
नहीं, किसी से डरते।'

बच्चों को परिवार में न डरने के लिए प्रबोधन करना चाहिए। भय एवं डर से बच्चों के मन में निराशा एक डरपोक होने की समस्या बढ़ जाती है। घबराने के बारे में लिखा है।

'सारा जग यह माने कैसे
बच्चे हिन्दुस्तानी
जो हट ठान लिया मन में वह,
पूरा कर दिखाते।
दृढ़ प्रतिज्ञा को बढ़ने वाले,
कभी नहीं घबरातें।'

कवि परशुराम शुक्ल की दृष्टि इतनी तीव्र है कि वह साधारण वस्तुओं को भी महत्वपूर्ण बना देते हैं। बच्चों से कहते ही जीवन में कितने भी संकट आए, घबराओ मत संकट से टकराकर ही जीवन जीना चाहिए। यहाँ बच्चों को प्रोत्साहन दिया है। यह संकट को सामना करके आगे चलने से कभी कहता है।

'आये कितनी भी बाधाएं,
कभी नहीं घबराओ।
आंधी, तूफान, बाड़, बवंडर,
सबसे जा टकराओ।'

बालक की आक्रामकता संघर्ष संघर्ष एवं झगड़ने विषयक समस्या

संघर्ष जीवन का दूसरा नाम है। संघर्ष और

जीवन एक दूसरे की पूरक होते हैं। अमीर या गरीब सभी को घर तथा बाहर दोनों जगहों संघर्षमय जीवन जीना होता है। जो व्यक्ति संघर्ष से लड़ाई लड़ता है, वह सफलता प्राप्त करता ही है। बच्चों को शिक्षक सिखातें की सत्य का विजय होता है। शुक्लजी ने बच्चों को संघर्षो से लड़ना सिखाते हुए लिखा है–

'सत्य न्याय के पत्रों पर चलना,
शिक्षक हम बताते है।
जीवन संघर्ष से लड़ना
शिक्षक हमेशा कहते हैं।'

बच्चों में सुधार न हो इस उद्देश्य से शिक्षक उन्हें पीटते हैं। बच्चे गुनाह न करें ,चोरी ना करें इसलिए शिक्षक हमेशा प्रयास करते हैं। बच्चो द्वारा पढ़ाई व होमवर्क न करने पर सजा देते हैं। शिक्षक बच्चों में सर्वांगीण विकास करने का प्रयत्न करते हैं। बच्चों का विश्वास निर्माण करने का हर तरह से प्रयास करते हैं। परशुराम शुक्ल ने शिक्षकों मारपीट से दूर रहने का संदेश देते हुए लिखा है–

'सच्चे शिक्षक को सदा, बच्चों पर विश्वास।
मार-पीट से दूर रह, इनका करे विकास॥ 106॥'

बालक की अन्य समस्याओं के प्रति संवेदना :

आज का कवि हर छोटी से छोटी समस्या से बड़ी समस्याओं को स्पर्श करता हुआ बच्चों को संवेदना के प्रति सजग एवं जागृत करना चाहता है। उन्हें आनेवाले संकटों के प्रति सचेत करना चाहता है। वैसे तो बच्चों को व्यायाम द्वारा हर समय चेतावनी दी जाती है, लेकिन बच्चे उनकी ओर अनदेखा करते हैं। बच्चों ने सुबह उठकर नित्य नियम से व्यायाम करके अपने शरीर को सदृढ़ तंदुरुस्त बनाना चाहिए। इस प्रवृत्ति को लक्ष्य करते हुए कवि कहता हैं-

'रोज सब से नित्य नियम से
सदा करो पहले व्यायाम
कसरत करो बदन बनाओ
इसके बात दूसरों का काम।'

आजकल सड़क पर दुर्घटनाएं बढ़ती जा रही है। रोड पर दुर्घटनाएं इतनी ज्यादा मात्रा में हो रही है कि इनसे निजात पाना बहुत ज्यादा मुश्किल हो रहा है। सड़क दुर्घटना से न जाने कितने परिवार उजड़ जाते हैं। दुर्घटना की वजह से परिवारों को बहुत ही परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आजकल बच्चे फिल्म देख वैसे ही स्टंट करने का प्रयास करते हैं और दुर्घटनाएँ होती है। अपने देश में लगभग एक साल में डेढ़ लाख के आसपास सिर्फ सड़क दुर्घटनाओं से ही मौत होती है। अगर आप थोड़ी-सी सावधानी से वाहन चलाएंगे तो दुर्घटना अपने आप ही कम हो जाएगी। अपने सुरक्षा का ध्यान हमें ही रखना होगा। हम सब इसके लिए सरकार को ही दोष देते हैं। कवि ने सड़क दुर्घटना के बारे में लिखा है -

'सड़क पार करता राजेंद्र
गाड़ी से टकराया
चारो खाने चित्त गिरा वह
कुछ भी समझ नहीं पाया'

जीवन विश्व को प्राप्त करने के लिए परिवार अधिक बेचैन रहता है। पैसे से आप हर चीज खरीद सकते हैं मगर सुख नहीं। गरीब परिवार भी धनी परिवार की तरह सुखी एवं खुश रह सकता है। गरीब परिवार छोटे वस्तुओं की खुशियां प्राप्त करता है। हमें अपने जीवन की हर चीज की तुलना अन्य किसी के साथ नहीं करनी चाहिए। अमीर आदमी की तुलना संन्यास से के साथ नहीं करनी चाहिए। महिला के साथ काम करने से फल मीठा ही मिलता है। हमें फल की चिंता न करते हुए कर्म करते रहना चाहिए।

'जीवन सुखी बनेगा जब तुम
एक बात अपना होंगी।
अपने बच्चे तभी से करना कर
वरना फिर पछताओगे।
प्रतिदिन नियमित मेहनत करे,
उज्ज्वल धन सम्पत्ति कमाओ,
इसका एक बड़ा-सा हिस्सा
नित्य नियम से सदा बचाओ'

बच्चों को पहले से ही देने वाली माँ होती है। प्रथम गुरु का दर्जा माँ को दिया जाता है। कहते हैं कि जिसके पास माँ है तो जीवन में सब कुछ है। माँ के बिना जीवन से सबकुछ होते हुए भी कमी बनी रहती है। माँ के प्रेम से हमें आत्मविश्वास मिलता है। माँ के रिश्ते से बेहतर दुनिया का कोई और रिश्ता नहीं। माँ से मैं आभारी रहूंगी, बचपन में उन्होंने मुझ पर जो संस्कार किए, जिनका महत्त्व उस वक्त तो उतना नहीं था, जितना आज लगता है। कभी जीवन में निराशा आये तो माँ के नजरिए से एक बार जरूर देखना चाहिए, समाधान जरूर मिल जाएगा। परशुराम शुक्ल जी माँ के बारे में लिखते है-

'दूर बहुत भेजा क्यों माता
मैं कुछ समझ ना पाया
तुम तो मुझे जानती हो माँ
अपना मुझे मानती हूँ माँ
फिर दिल पर पत्थर रखकर
तुमने मुझे ..... आया'

ओलंपिक खेल अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में सबसे पुराना खेल है। यह खेल चार साल में एक बार आयोजित किया जाता है। उसमें दुनिया भर के अधिकांश देशों के खिलाड़ी सहभाग लेते हैं। दिन प्रतिदिन ओलंपिक खेल का महत्त्व बढ़ रहा है। दुनिया के विभिन्न देशों में ओलंपिक खेलों में भाग लेने से स्पर्धक को अनुशासन, धैर्य, धीरज, साहस आदि प्राप्त करने का अवसर मिलता

है। साथ ही विश्व मित्रता की अवधारणा का अहसास होता है। भारत राष्ट्र ने पहली बार 1928 में ओलंपिक खेलों में भाग लिया था और हॉकी में पहला स्वर्ण पदक जीता था। शारीरिक विकलांग होना किसी के हाथ में नहीं है। दिव्याँग व्यक्ति में जुनून और खेलने का हौसला हो तो वो पैरा एथलीट बनकर खुद को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साबित कर सकता है। इसके लिए जरूर होती है सही ट्रेनिंग, सही गाइड की ओलंपिक खेलों में कई श्रेणी के खेल में दिव्याँग शामिल हो सकते हैं। कवि बच्चों में हौसला पैदा कराते हुए कहता है-

'ओलंपिक में दौड़ राधे
सोनी लेकर आया
कर सकते विकलांग सभी कुछ
यह संदेश सुनाया'

मजबूरी में लोग कभी कभी गलत काम भी कर जाते हैं। गरीब आदमी की स्थिति उसे बेबस और लाचार बनाती है। लाचार बनने वाला मनुष्य संसार के तीन जरूरी चीजों को पाने में असमर्थ होता है - रोटी, कपड़ा और मकान। देश में बेकरी तथा बेरोजगारी इतनी बढ़ रही है कि देश के गरीब लोगों की हालत दयनीय बनती जा रही है। शुक्ल जी इसी लाचारी एवं दयनीयता को व्यक्त करते हुए कहते है-

'मम्मी कैसे इसे उठाओ
बस्ता मेरी भारी
रोज लगाना पड़ता सबको
यह मेरी लाचारी'

झूठ बोलने वाला व्यक्ति अपनी झूठों से इस लोग। तथा परलोक दोनों में पाप का भागीदार बनता ही झूठ बोलने वाले पर कोई विश्वास नहीं करता। झूठ की बुनियाद पर बनाए गए रिश्ते सच की एक मामूली चोट से टूट जाते हैं। झूठ बोलने वाले व्यक्ति को परिवार के उस समझ में स्थान नहीं मिलता। बच्चों का बचपन से ही सच बोलने का परिणाम और दूर बोलने का नतीजा इससे अवगत कराना चाहिए। झूठ बोलने वालों को सजा देना ही जरूरी है। शुक्लजी पापी लोगों के बारे में लिखते है।

'बच्चों के मन में देखिये, सब धर्मो का सार।
बच्चे ही संसार है, बच्चों से संसार॥ 3॥,
बच्चे में रहते सदा परमपिता भगवान।
पापी इनको पीटते और खींचते काम॥ 4॥'

बच्चों के जीवन के लिए सदाचार महत्वपूर्ण ही बच्चों की भलाई और खुशी के लिए सदाचार आवश्यक है। बुराइयों को नष्ट करने का काम सदाचार करता है। सभी धर्म का सार सदाचार हैं। मनुष्य का चरित्र उज्वल बनाने का काम सदाचार करता है, सदाचार आदमी को काम, क्रोध, मोह तथा अहंकार से दूर रखता है। मनुष्य जीवन को सार्थकता सदाचार प्रदान करता है। संसार की

सबसे बड़ी शक्ति सदाचार ही मानी :

जाती है। समाज एवं परिवार के कल्याण का हिस्सा बनाने के लिए सदैव सदाचार का पालन करें और अपने बच्चों को भी सदाचार अवश्य सिखाई। सदाचारी व्यक्ति मोरन उपरांत भी याद किया जाता है। देश, राष्ट्र और समाज के। कल्याण के लिए हर मनुष्य में सुधार होना बेहद जरूरी है। कवि सदाचार के बारे में लिखता है।

'आओ बच्चों
तुम्हें बता ये सदाचार का सबक सिखाएं
प्रातः तुम जल्दी उठ जाओ
फिर से विनायक शीर्ष झुकाव।'

जीवन में सुनना और मीठा बोलना जीने की सबसे सुंदर कला है। हर व्यक्ति के पास यह करना चाहिए। हमारे जीवन में बोलो ना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि सुनहरा महत्वपूर्ण है, क्योंकि सुनना तो जन्म से ही प्रारंभ कर देता है। मीठी वाणी सभी को लुभाती हैं। आप लोगों की मीठी वाणी हो, आपस में मीठे बोल बोल सकती है। आप लोगों से कड़वा बोलोगी तो वह भी आपसे कड़वा बोलेंगे। से भी तो दूर कर सभी लोगों को मीठा बोलना चाहिए। आप अच्छे मित्र बनाना और उसका साथ प्यार से रहना है। शुक्ल जी लिखते हैं-

'सभी दुखों को दूर भगाते,
मीठे बोले मीठे बोल बोल
अच्छे अच्छे मित्रों बनाते
रसगुल्ले से मीठे बोल।'

भारत में बढ़ती हुई महंगाई का गरीब समस्या धारण कर रही है। महंगाई को कम करने के बाद

सरकार करती है, लेकिन महंगाई बढ़ती जा रही है। महंगाई का अर्थ होता है वस्तुओं की कीमत में वृद्धि होना। अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव होने से महंगाई होती है। बढ़ती हुई महंगाई का मुद्रास्फीति के साथ बहुत ही गहरा संबंध है। महंगाई की समस्या पर शुक्ल ने लिखा है-

'बस्ता भारी हो गया मिलता नहीं अनाज।
बच्चों पर भी आ गिरी, महंगाई की गाज॥ 555॥'

जिस परिवार में नारी का सम्मान किया जाता है। उस निवास में साक्षात देवताओं का वास होता है। भारत देश में कल्पना चावला, मदर टेरेसा, इंदिरा गांधी, प्रतिभा पाटिल आदि महिलाओं ने भारत देश को आगे बढ़ाने मैं सहयोग किया हे। नारी को घर में सम्मान देना चाहिए। बहू बेटियों को एक समान मानना चाहिए, लेकिन परिवार में बहू और बेटी में फर्क किया जाता ही रूढ़िवादी परिवार द्वारा यह फर्क किया जाता है। उनकी दृष्टि से भी बेटी प्यारी होती है, लेकिन बहु नहीं। हमें बेटी और बहू का सम्मान करना चाहिए और समान तराजू में तोलना चाहिए। कवि कहता है कि-

'बेटी हो या हो बहू दोनों एक समान।
दोनों को ही चाहिये, सदा मान सम्मान॥ 654॥'

समाज में सब लोगों को सम्मान करना चाहिए। यही बच्चों को सीखाना जरूरी है। बड़ा-छोटा, ऊंच-नीच सब लोगों का सम्मान करना। चाहिए। एक दूसरों का गुणगान करने के बारे में बच्चों को सीखाना जरूरी है। परिवार या समाज के सभी लोगों का कल्याण करना सीखाना चाहिए, क्योंकि प्रभु आप सभीजनों का कल्याण करता है। सभी बच्चों को समझाते हुए शुक्ल लिखते हैं-

'समझाओ सबको एक समान
करो सदा तेरा गुणगान
करो दूसरों का कल्याण
दूर करो मेरा ध्यान।
बनाना हे प्रभु मुझे महान।'

सरकारी अस्पताल में बच्चों और गर्भवती माताओं को सही समय पर इलाज न मिलने से मौत होती है। सरकारी अस्पताल में प्रसव की सुविधा नि:शुल्क कर दी है, लेकिन इसका अनुपालन नहीं हो रहा है। सरकारी अस्पताल में भर्ती की सुविधाओं का अभाव है। डॉक्टर की कमी तथा सही समय पर इलाज न होने से गर्भवती महिला के पेट में या जन्म में बच्चों की मौत होती है। इसलिए सरकारी अस्पताल में सुविधा उपलब्ध कराने की आवश्यकता है, जिससे माता और बच्चों की मौत का प्रमाण कम होगा। परशुराम शुक्ल गर्भवती महिला के पेट में बच्चे की मौत होने पर लिखा है।

'सरकारी जैसे सभी, अस्पताल के हाल।
मर जाते है पेट में बिन जन्म कुछ लाल॥ 541॥'

भारत देश के दिल्ली में अनाथ बच्चों का प्रमाण बहुत है। माता पिता की अचानक मृत्यु हो गई हो या उन्हें छोड़ दिया गया हो, बच्चे अनाथ हो जाते हैं। सरकार ने अनाथ बच्चों के लिए अनाथ आश्रम की सुविधा की है। आश्रम में बच्चों के पालन पोषण करने की जिम्मेदारी आश्रम पर छोड़ देते हैं। अमेरिका के बड़े लोग अनाथ बालकों पर खर्च कर सकते हैं। हिंदी साहित्यिक, सामाजिक कार्यकर्ता, समीक्षक, वक्ता, अनुवाद संपादक और प्राचार्य सुनीलकुमार लवटे की आत्मकथा 'नेम नॉट नोन' (खाली जमीन पर आकाश) एक आदर्श आत्मकथा है। अनाथ बच्चों के बारे में शुक्ल लिखते हैं।

'बस्ता भारी हो गया, मिलता नहीं अनाज।
बच्चों पर आ गिरी महागाई की गाज॥ 555॥

महंगाई बढ़ रही है, बच्चों की मांग बहुत है। पूरी करने के लिए माता और पिता असमर्थ हैं। महंगाई कम करने के लिए सरकार प्रयत्न कर रही हैं। कुछ परिवार के पास जमीन नहीं है तो कुछ परिवारों को काम करने के लिए काम नहीं मिलता। अगर हाथों तो काम मिलेगा तो महंगाई कम होगी। महंगाई से बच्चों की मांग पूरी नही होती इसलिए बच्चे रोते है। शुक्ल जी महंगाई का प्रभाव किस प्रकार बच्चों के परवरिश पर होता है, इसका यथार्थ अंकन करते हुए कहते है-

'रोता बच्चा देखकर टीचर को समझाया
अब हम तेरे पिता हम ही तेरे माय।'

उचित शिक्षा मनुष्य को अच्छा इंसान बनने में मदद कर सकती है। शिक्षा के माध्यम से उत्कृष्ट ज्ञान

प्राप्त करता है। नैतिक शिक्षा मनुष्य जीवन को बेहतर बनाती है, इसके बिना मानव का विकास असंभव है। बच्चों के लिए नैतिक शिक्षा की जरूरत एवं आवश्यकता के बारे में शुक्ल जी कहते हैं –

'नैतिक शिक्षा भी कभी जब हर हद से बढ़ जाए
बताया विद्रोही बने या इससे खतरा है।'

भरत को मत रो टीवी रूप में चित्रित करते हुए भारत माता कहा जाता है। भारत माता, नारंगी या केसरिया रंग की साड़ी पहने हाथ में भगवा ध्वज लिए हुए चित्रित की जाती है। उनकी सवारी शेर है। भारत भूमि को पालन करने वाली माता के रूप में भारत माता और संचार करती है।

'भारत माता के चरणों में
शीश झुकाते है
श्री श्याम राम भूमि हमारी
देवभूमि कहलाती है।'

निष्कर्ष :

बच्चे किसी भी राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण संपत्ति है। उनका पालन-पोषण हमारी जिम्मेदारी है, ताकि बच्चे बड़े होकर जिम्मेदार नागरिक बन सके इस तरह उनकी समस्या को दूर करना भी हमारा नैतिक कर्तव्य बनता है और इस बात को ध्यान में रखकर संवेदनशील रचनाकार परशुराम शुक्ल जी ने अपनी बाल कविता में बच्चों की समस्या को वाणी दी है। उन्हें डराने धमकाने से समस्या कम होने वाली नहीं बल्कि उनकी समस्या के विषय में जागरूकता बढ़ाकर हम वह दूर कर सकते हैं। बचपन एक पोषक सामाजिक वातावरण अच्छी शिक्षा उनके मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से बेहद जरूरी है और बाल स्वास्थ्य एक साझा जिम्मेदारी है, बच्चों की आवाज सभी को सुनने की जरूरत है, इन्हीं सब बातों को उहापोह कवि ने अपने काव्य में किया हुआ दिखाई देता है।

बाल समस्या के संबंध में एक कथन ध्यान देने योग्य है- **'आज हमारे पास सुविधाएं हैं, पर हमारी कोमल कल्पनाएं सो गई है। नौकरी पेशा मां, जो बच्चे से 12-12 घंटे दूर रहती है, उससे मां के आंचल मां के दूध और कोरी की आशा कैसे की जा सकती है। दादा-दादी है भी तो संयुक्त परिवार खंडित हो रहे हैं। नई और पुरानी पीढ़ी में तालमेल, स्नेह, सौंहाद बचा कहां है? यही कारण है कि बाल समस्याएं देखने को मिलती है।'**

परशुराम शुक्ल की बाल कविता में समस्या की संवेदना अत्यंत गहराई से मुखरित हुई है। बच्चों में अनेक प्रकार की समस्याएं दृष्टिगत होती है। जैसे आक्रमक होना, जिद्दी होना, झूठ बोलना, दब्बू होना, डरपोक, चोरी करना, भय तथा डर विषय समस्याएं आदि। इन सभी समस्याओं का चित्रण शुक्ल जी ने अपनी बाल सतसई एवं अन्य कविताओं में किया है। शुक्ल जी बाद समस्या के मूल में पर्यावरण की हानि को मानते हैं। वर्तमान में शहरीकरण के कारण अनेक समस्याएं निर्मित हुई है। उनके बाल वाली किशोरी सतसई में ध्वनि प्रदूषण की समस्या को रोकने की सलाह दी गई है। बच्चों के मन में स्थित घबराहट की समस्या को भी कवि बड़ी सुंदरता से व्यक्त करते हैं। बाहर का भोजन खाकर बीमार पड़ने की समस्या को भी उठाया है। गंदा पानी, प्रदूषणभरी हवा से बीमारियों बढ़ गई है इन समस्याओं से निजात पाने के लिए पेड़ लगाने का संदेश कवि देते हैं।

शुक्लजी ने बालकों की सपने देखने की समस्या के प्रति भी संवेदना व्यक्त की है। इनकी कविताओं में बालों को आकस्मिक आनेवाले सपने डर के कारण मानसिक तनाव एवं अतृप्त इच्छा के कारण आते हैं। कवि इन समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। बच्चों में डरने की समस्या भी होती है। भय एवं डर बच्चों के मन में निराशा निर्माण करती है। शुक्ल जी ने बालकों की आक्रामकता संघर्ष एवं झगड़ने की समस्या के प्रति भी संवेदना व्यक्त की है। ❑

संदर्भ :

1.परशुराम शुक्ल, 'चारो खाने चित', पृ.55
2. परशुराम शुक्ल, 'प्रतिनिधीक बाल कविता', पृ.23
3. परशुराम शुक्ल, 'बाल सतसई', पृ.84

पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा : एक प्रतिरोधी स्वर

(हिन्दी कथा साहित्य में थर्ड जेण्डर : सामाजिक राजनीतिक व संवैधानिक अध्ययन के विशेष सन्दर्भ में)

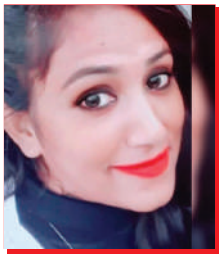

लिलु कुमारी रजक

पीएच.डी स्कोलर
मणिपुर विश्वविध्यालय
मो : 7002850896

नाला सोपारा चित्रा मुद्गल द्वारा रचित एक ऐसा उपन्यास है, जो किन्नर समाज के प्रति उच्च मध्यवर्गीय परिवार के मानसिकता को उजागर किया है। पत्र शैली में लिखा गया इस उपन्यास में 'बा' और उसके बेटे 'दीकरा विनोद' की कहानी है, जो क्लीव रूप में जन्म लेने के कारण परिवार द्वारा त्याग दिया जाता है। इस उपन्यास में विनोद उर्फ विन्नी के बहाने हमारे समाज में लम्बे समय से चली आ रही किन्नरों के प्रति मानसिकता का विरोध दिखाई पड़ता है। चित्रा मुदगल इस उपन्यास के लेखन के संबंध में स्वयं प्रकाश डालते हुए कहती है – 'लम्बे समय से मेरे मन में पीढ़ा थी। एक छटपटाहट थी कि आखिर क्यों हमारे इस अहम हिस्से को अलग-थलग किया जा रहा है। हमारे बच्चों को क्यों हमसे दूर किया जा रहा है। आजादी से लेकर अभी तक कई रूढ़ियाँ टूटी, लेकिन किन्नरों की जिंदगी में कोई बदलाव नहीं आया। क्यों, आखिर इनका दोष क्या है? यह सवाल था जो मुझे बेचैन करता था। 1974ई. में मैं मुंबई के नाला सोपारा में रहती थी, तब मेरी मुलाकात एक इसी समुदाय के व्यक्ति से हुई, जिसे किन्नर होने के वजह से घर से निकाल दिया गया था। यह उपन्यास उसी के विद्रोह की कहानी कहता है। मैंने उसे अपने घर पर बहुत दिनों तक साथ रखा।'[1] इस उपन्यास के बारे में कई लेखकों ने कहा है कि यह एक तरफा संवाद है, जिसका विवरण इस प्रकार है –

1. किन्नर जीवन केन्द्रित पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा कथ्यगत विश्लेषण नामक पुस्तक में डॉ. अश्फाक इब्राहिम सिकलगर ने पृष्ठ-85 में लिखा है कि पत्र-शैली वाला यह रचना – 'विधान लेखिका के आगे कुछ सीमाए भी खड़ी करता है। कथा के बहुविध विस्तार और बहुआयामिता की इन एकतरफा पत्रों द्वारा समेटने-सहेजने में जब-तब इस संकट को देखा जा सकता है।'[2]

2. थर्ड जेंडर के जीवन की सामाजिक-राजनैतिक कथा पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा शीर्षक नामक आलेख में डॉ. पुष्पा गुप्त ने पृष्ठ-66 में लिखा है – 'लेखिका ने पत्र विधान शैली का प्रयोग किया। यह पत्र प्रेषण एकतरफा है।'[3]

3. घर वापसी का नया पोस्ट बॉक्स नं. 203 शीर्षक आलेख में डॉ. रमाकांत राय ने पृष्ठ- 86 में लिखा है - 'पत्र शैली में लिखे जाने के कारण कथा का विस्तार एकतरफा और व्यापक आयाम को सही से नहीं समेटा जा सका है। चरित्रों का विकास भी ठीक से नहीं हो पता और एकतरफा पत्र-व्यवहार होने यह संकट और भी गहराता हुआ दिखता है।'[4]

4. अस्मिता का आतंक : लैंगिकता जीरो अदर शीर्षक आलेख में अर्चना वर्मा ने पृष्ठ-190 में लिखा है - 'माँ के नाम एकतरफा पत्रों के विन्यास में लिखित उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' के नायक के माँ के नाम ये विह्वल संबोधन खण्डित अस्मिता के अभिविकलांग हैं, असामाजिक शाप के दारुण दुखद पहलुओं को सामने लाते हैं।'[5]

5. विकलांग हैं, असामाजिक या अपशकुन नहीं शीर्षक में डॉ. प्रदीप कुमार ने पृष्ठ-212 में लिखा है - 'एक तरह से यह एक तरफा संवाद होते हुए भी अनेक चरित्र और अनेक लोगों के संवाद से घिरा हुआ नजर आता है।'[6]

उपन्यास के अध्ययन के पश्चात् यह पता चलता है कि इस उपन्यास में दोनों तरफ संवाद है, यदि दोनों तरफ का संवाद नहीं होता तो विनोद को कैसे पता चलता की उसकी भाभी का चेकप डॉ. मोहिनी से हो रहा है। एकतरफा होता तो विनोद को कैसे पता की उसके पिता को फेशमेकर बीमारी हुआ है, उसके माँ के कथनों से ज्ञात होता है। इसका सन्दर्भ इस प्रकार है- 'पेसमेकर के चलते मोबाईल तेरे पापा रख नहीं सकते। डॉक्टर से मना जो है।[7] और एक बात मैं यह कहना चाहूंगी की यदि यह एकतरफा पत्र होता तो विनोद की बा उपन्यास के अंत में पूनम को कॉल करके यह कैसे कहती कि मैं विनोद से मिलना चाहती हूँ। पूनम का नम्बर उनके पास कैसे आया? बहुत सारी चीजे हैं, जिससे यह कहा जाता है कि यह एकतरफा पत्र संवाद नहीं है। मनुष्य अपने अनुभव को महसूस करके उसे कलमबद्ध करता है, लेकिन वह कल्पना में इतना भी विचरण नहीं कर सकता जिससे वह पत्र में होने न होने का प्रमाण छोड़ दे।

चित्रा मुदगल के उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा में विनोद मुंबई में रहनेवाले गुजरती परिवार में किन्नर के रूप में जन्म लेता है। अपनी बा से बेहद प्यार करता है, लेकिन पापा के प्रति वह नफरत रखता है। इसका कारण यह है कि जब उसे जमुनाबाई के यहाँ भेज देते हैं तो आस-पास के लोग और स्कूल में पूछे जाने पर यह खबर देता है कि जीप दुर्घटना में विनोद की मृत्यु हो गयी। इस बात का पता जब उसे अपने दोस्त से चलता है तो उसे बहुत दु:ख होता है। उसके बड़े भाई सिद्धार्थ ही बालक बिन्नी को हिजड़ों के हाथों भेजने में अपनी क्रूरता का परिचय देता।

परिवार के प्रति लगाव होते हुए भी विनोद के अन्दर विद्रोह की भावना दिखाई पड़ता है। वह पत्र में अपने माँ को कहता भी है तूने और पापा ने मुझे नरक में धकेला है। वह सवालों का बौछार करते हुए माँ को पत्र लिखता है कि 'क्यों वह अनर्थ हो जाने दिया तूने जिसके लिए मैं दोषी नहीं था। पढ़ने में अपनी कक्षा में सदैव अव्वल आने वाला, डरते थे सब मुझसे। कहते थे, जिस खेल की प्रतियोगिता में खड़ा हो जाता है। तू विनोद पुरस्कार लेकर ही दम लेता है। कुछ पुरस्कार हमारे लिए छोड़ देना।'[8] इतना ही नहीं वह यह भी कहते हुए दिखाई पड़ता है कि क्या वह मानसिक रूप से विकलांग, लूला, लंगड़ा बहरा बच्चा होता तो उसे घर से निकाल देती? क्या ममत्व पर उसका अधिकार नहीं? माँ के लिए तो सभी सन्तान प्रिय होती है, फिर उसके साथ ऐसा दुर्व्यवहार क्यों? यह क्यों का सवाल को अंत तक ढूंढ़ता है, पर उसे मिलती नहीं है। इस उपन्यास में बाल मनोविज्ञान को दिखाया गया है कि बच्चे जब 6-7 साल के होते हैं, तब उनके साथ जो भी घटनाएँ घटती हैं, वह घटनाएँ अपने दिमाग से निकल नहीं पाती और वह घटनाएँ निरंतर उनके दिमाग में चलती रहती है

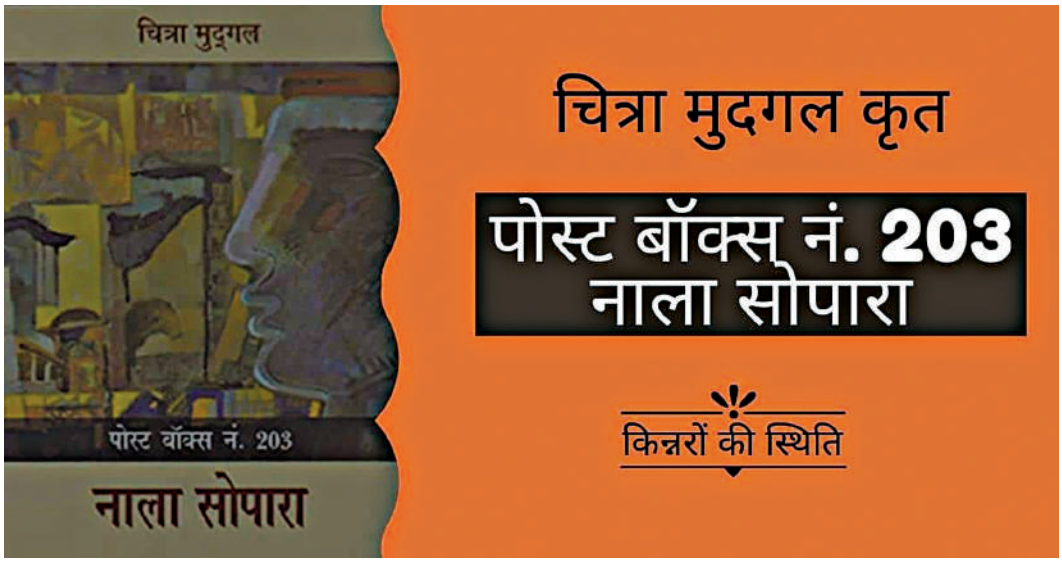

और एक दिन उनके शब्दों में प्रतिरोधी रूप दिखायी पड़ने लगती है, इसका महत्वपूर्ण उदाहरण यह उपन्यास प्रस्तुत करता है।

पत्र लेखन के द्वारा अपनी बातों को अपने माँ तक पहुंचाना यह सभ्य कहे जाने वाले समाज की और उस समाज में रहने वाले उस परिवार के लिए बहुत बड़ी त्रासदी है। लिंगविहीन बच्चों की क्या गलती है, जो उन्हें समाज में रखा नहीं जा सकता, माँ बाप की गलतियों की सजा बच्चों को भुगतना पड़ता। समाज तो बाद की बात है, पहले परिवार की जिम्मेदारी होती है कि ऐसे बच्चों को किन्नर समुदाय में ना भेजकर उसे अपने पास रखने की हिम्मत करे फिर समाज से लड़ने की ताकत अपने अन्दर विकसित करें। जिस दिन ऐसा होगा, उसी दिन से कोई बच्चा अपने माँ को परिवार को रुंधे गले फोन नहीं करेगा और न ही पत्र संवाद होगा।

विनोद अपने घर परिवार से अलग होकर भी अलग नहीं हो पता है तो फिर परिवार होकर भी उसके दर्द को कोई भी क्यों नहीं समझता? वह अपने परिवार के प्रतारणा से घर छोड़कर हिजरों की समुदाय में चला तो जाता है, लेकिन उसे धारण नहीं कर पाता। उस समुदाय में भी विनोद जैसे व्यक्ति की प्रतिरोधी स्वर दिखाई पड़ती है, इसका एक मात्र कारण यह है कि वह मेहनत पर विश्वास करता है, भीख मांगकर जिंदगी जीना नहीं चाहता वह कहता भी है – 'जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है, लेकिन इतना बड़ा भी नहीं है कि तुम मान लो कि तुम ध? का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, तुम्हारे हाँथ पैर नहीं हैं हैं,हैं,हैं – सब वैसे ही है, जैसे ओरो के हैं। यौन सुख लेने-देने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं। सोचों।'[9] विनोद द्वारा ऐसे वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि वह आम लोगों की तरह जीना चाहता है, खुद किन्नर होते हुए भी इस सच को वह स्वीकारता नहीं है और ऐसे प्रत्येक किन्नर लोगों में ऐसी भावना होना चाहिए। उसकी यही भावना आगे चलकर विशाल रूप लेती है।

विनोद और पूनम के वार्तलाप से यह ज्ञात होता है कि दोनों एक ही समुदाय के होते हुए भी दोनों के सोच में भिन्नता दिखाई पड़ती है, एक जो अपना और किन्नर समाज का जीवन सुधारने के लिए पढ़ना चाहता है तो दूसरी अपने जीवन को नियति मानकर जिंदगी जीती है। विनोद भले विन्नी बनता जरूर है, लेकिन अपने मूल्यों से समझौता नहीं करता है। वह कुछ बनकर अपने वर्ग को समाज में इज्जत में इज्जत देना चाहता है, लेकिन वह भी अंत में राजनीति का शिकार बन जाता है।

विनोद जननांग दोषी समाज के विसगतियों से भलीभांति परिचित है, इसके बावजूद भी वह उनकी स्थितियों में परिवर्तन लाना चाहता है, वह पूनम से कहता है – 'अपने श्रम पर जिओ मनोरजन के दक्षिणा पर नहीं। हिकारत की दक्षिणा जहर है, जहर। तुम्हे मारने का जहर।'[10] इस सन्दर्भ से यह ज्ञात होता है कि आज के नवयुवकों की तरह वह पूनम जैसे लोग भाग्य और भगवान के भरोसे जीवन जीते हैं, उनलोगों को समझाने का एक प्रयास करता है। नियति, भाग्य और भगवान के भरोसे जीने वाले लोग अक्सर जीवन के राह में पीछे छुट जाते हैं।

इस उपन्यास में विनोद पढ़-लिखकर समाज के प्रति अपने दायित्व को निभाना चाहता है। भले ही परिवार और समाज उसके प्रति संवेदनहीन क्यों ना हो, सभी लोगों के मानसिकता में बदलाव लाना चाहता है। वह जनता है कि शिक्षा उसका वह हथियार है, जो उसके समस्याओं को समाप्त कर सकता है, जैसे यूद्ध में शस्त्र वैसे समाज में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। विनोद अपने समुदाय के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए कहता है कि –'पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है। कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा गया है हमारे लिए। हम महाभारत कल में तो नहीं कि कोई चमत्कारी यक्ष स्थूलकर्ण हमें अपना पौरुष प्रदान कर 'अन्य' के अभिशाप से हमें मुक्त करा देगा।'[11]

आधुनिक काल में भारतीय समाज में कोई भी चीज आसानी से प्राप्त किया नहीं जा सकता है, क्योंकि मनुष्य अपनेस्वार्थ के चरमसीमा पर पहुच गया है। संवेदना का ह्रास भारतीय समाज का भयानक सच है और इसी सच में सब खुश भी है। मनुष्य अपने कामयाबी के लिए या तो चापलूसी पर उतर आया है या खून-खराबा पर। इस बीच जो सज्जन व्यक्ति होते वह अपने जिंदगी में पीछे छुट जातें हैं और मुसीबतों से जूझते रहते हैं। वैसे ही परिस्थितियाँ लिंगविहीन समाज में भी दिखाई पड़ती है विनोद भी इस स्वार्थलोलुप्ता का शिकार बन जाता है। उसके जूनून और सपनों को रौंद दिया जाता है, विनोद की गलती सिर्फ इतनी है कि वह अपने वर्ग के हक की बात करता है। विधायक जब उसे कहते हैं कि वह यहाँ रहकर पढ़ सकता है तो वह बहुत खुश था। उसे लगा अपना सपना अब पूरा कर पाएगा, लेकिन समाज के सच से वह अनजान था कि बिना स्वार्थ का कोई किसी का मदद नहीं करता है। बहुत कम ऐसे लोग होते होंगे, जो बिना स्वार्थ किसी का मदद करते हैं। जब उसे तिवारी कहता है कि चंडीगढ़ में किन्नरों की एक सभा बैठेगी। उसमें उनलोगों को भड़काना है, आरक्षण की बात करना है, तब उसे धीरे-धीरे पूरी बाते समझ आने लगती है। फिर विनोद उसका विरोध करते हुए दिखाई देता है। वह बोल उठता है आरक्षण ही किन्नरों का दुखों का अंत नहीं है। इस सन्दर्भ में उसका कथन इस प्रकार है – 'किन्नर बिरादरी का संघर्ष उन्हें मनुष्य माने जाने का संघर्ष है। फिर '0' अदर्स में उन्हें ढकेला जा रहा है। '0' अदर्स को खत्म कर देना चाहिए सरकार को।'[12] यह सब बाते वही इंसान कर सकता है, जिसके अन्दर विद्रोह की भावना है और यह भावना विनोद के अन्दर दिखाई पड़ता है।

समाज में जहाँ सभी बच्चों को अपने माँ के दूध के हकदार होते हैं, वही किन्नर बच्चों को इनसब से क्यों वंचित किया जाता है? यदि मानवता के दृष्टि से देखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि दोष बच्चों में नहीं दोष पढ़े-लिखे कहे जाने वाले परिवार में है, समाज में है, जो अपने दोष को मासूम बच्चे के मत्थे मारकर उसे समुदाय में भेज देते हैं घुट-घुट कर मरने के लिए। उसी बीच कोई साहसी बच्चा विरोध करता है तो उसको भी मौत नशीब होती है। विनोद अपने विचारों को समाज के सामने विनंती करते हुए कहता है कि 'कृपया लिंग दोषी व्यक्तियों के कंडीशंड आचरण और हावभावों को सुर्खी न बना, उसे मानवीय परिप्रेक्ष्य में सहानुभूति पूर्वक उसके तिरस्कृत जीवन की चुनौतियों को समझने की कोशिश करें।'[13] अपने प्रतिरोधी स्वर के कारण ही जहाँ वह माँ से मिलने जाने की तैयारी करता है, वहीं उसके सपने, सपने बनकर रह जाती है और उसे मौत नसीब होती है।

अंतत: यह यह कहा जाता है कि समाज के द्वारा अलग किया गया एक समुदाय, जो आम मनुष्य की तरह संवेदनाओं से ओत-प्रोत है, फिर उसे समाज के अधिकारों से वंचित करना क्या उचित है? ऐसा समय ही क्यों आने लगा कि अपने ही माँ से बात करने के लिए पत्र की आवश्यकता पड़ने लगी इस विषय में विमर्श की आवश्यकता है। यदि हम, आप ऐसे विषय पर विचार-विमर्श करना शुरू कर दे तो वह दिन दूर नहीं, इन्हें भी समाज के मुख्यधारा में लाया जा सकता है। आस्थावादी से ओत-प्रोत दुनिया में बच्चो के साथ अन्याय क्या यह पाप नहीं है? लिंगविहीन समाज यदि पढ़-लिखकर अपने समाज के प्रति जागरूकता लाने का प्रयास करता है तो उसे मार दिया जाता है। यह कैसी संवेदनहीनता का परिचय है। जहाँ प्राचीन साहित्य को पढ़ने पर यह ज्ञात होता है कि यह इज्जत वाले जिंदगी जीते थे, आज इन्हें हाशिए पर रखा गया है। अपने पेट पलने के लिए आज इन्हें भीख मंगनी पड़ती है। यह शिक्षित कहे जाने वाले परिवार और समाज के लिए चिंता का विषय है। साहित्यकारों ने अपने लेखनी के माध्यम से इनके जीवन यथार्थ को उजागर किया हैं, बस जरुरत है तो हम और आपलोग इन्हें दिल से अपनाए, जिससे इनके दुखों को कम किया जा सकता है। इन्हें समाज के मुख्यधार में लाने का प्रयास किया जा सकता है। यह तभी संभव होगा, जब आपलोग संवेदनहीन ना बनकर संवेदनशील बने। ❑

सन्दर्भ सूची-

1. http:www-opinionpost-in/chitra&mudgal&nalasopara .
2. किन्नर जीवन केन्द्रित पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा कथ्यगत विश्लेषण, डॉ. अश्फाक इब्राहिम सिकल्गर, संस्करण-2020, पृष्ठ-85
3. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ (चित्र मुद्गल कृत नाला सोपारा के सन्दर्भ में). सं-डॉ. शगुफ्त नियाज, संस्करण-2019, पृष्ठ-66.
4. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ (चित्र मुद्गल कृत नाला सोपारा के सन्दर्भ में). सं.-डॉ. शगुफ्त नियाज, संस्करण-2019, पृष्ठ-86.
5. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ (चित्र मुद्गल कृत नाला सोपारा के सन्दर्भ में). सं-डॉ. शगुफ्त नियाज, संस्करण-2019, पृष्ठ-109.
6. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ (चित्र मुद्गल कृत नाला सोपारा के सन्दर्भ में). सं-डॉ. शगुफ्त नियाज, संस्करण-2019, पृष्ठ-212.
7. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, संस्करण-2019, पृष्ठ- 67
8. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, संस्करण-2019, पृष्ठ-11.
9. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, संस्करण-2019, पृष्ठ-50.
10. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, संस्करण-2019, पृष्ठ-50.
11. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, संस्करण-2019, पृष्ठ-110.
12. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, संस्करण-2019, पृष्ठ-195.
13. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, संस्करण-2019, पृष्ठ-184.

सहायक पुस्तकें :

थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ (चित्र मुद्गल कृत नाला सोपारा के सन्दर्भ में)- संपादक डॉ. शगुफ्ता नियाज
किन्नर जीवन केन्द्रित पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा कथ्यगत विश्लेषण
थर्ड जेंडर : कथा आलोचना- संपादक-डॉ. एम.फिरोज खान .
पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा- डॉ. चित्र मुद्गल.
ईक्कीसवीं सदी का नव्य विमर्श किन्नर-विमर्श .
भारतीय परिवेश में किन्नर जीवन की भूमिका- संपादक-डॉ. नम्रता जैन, डॉ. रत्नेश कुमार जैन.
हिन्दी उपन्यासों के आईने में थिद जेंडर-डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह

महर्षि अरविंद चिंतन : वर्तमान में प्रासंगिकता

प्रभाकर पाण्डेय

शोधार्थी, इतिहास
डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज देहरादून,
उत्तराखंड, मो. 6395767304
ई-मेल : prabhakarpandey1611@gmail.com

डॉ. अंजू बाली पाण्डेय

शोध निर्देशक, इतिहास विभाग
डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज
देहरादून, उत्तराखंड

शोध सार :

21वीं सदी भारत समेत संपूर्ण संसार के लिये भौतिक अर्थात विज्ञान, वाणिज्य, व्यापार, उद्योग, चिकित्सीय प्रगति, दूरसंचार प्रगति आदि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, परन्तु इस विकास के साथ-साथ मानवता के विरोधी तत्वों ईर्ष्या, बेईमानी, अपराध, युद्ध, महामारी, बीमारियाँ, आदि भी विकास के साथ समांतर चल रही हैं। 'विज्ञान की वृद्धि से भी मनुष्य की शाश्वत समस्याएँ दूर नहीं हुई। वह आज भी दुखी है। वह आज भी रोग, शोक जन्म और मरण का शिकार होता है।' अर्थात विज्ञान की तरक्की भी आन्तरिक सुख प्रदान नहीं कर सकती है। श्री अरविन्द इसी चरम आनंद के अन्वेषी हैं, जो संपूर्ण समाज से गायब हो गया है, उनका चिन्तन पश्चिमी विज्ञान तथा भारतीय आध्यात्म का समन्वय है, श्री अरविन्द ने पश्चिमी भौतिकता को नहीं नकारा और न ही घोर आध्यात्म को स्वीकारा अपितु भारतीय आध्यात्म को आधार बनाकर, पश्चिमी भौतिकता को अपनाने की बात कही। श्री अरविन्द का आदर्श वाक्य है 'हम जिस आदर्श की परिकल्पना करते हैं, उसका सूत्र है दिव्य शरीर में दिव्य जीवन।' प्रस्तुत शोध आलेख में महर्षि अरविन्द के विचारों का मूल्यांकन वर्तमान के संदर्भ में किया गया है।

बीज शब्द : श्री अरविन्द, चिन्तन, आध्यात्म, दिव्य जीवन, प्रासंगिकता,मानव एकता

भूमिका :

भारतीय संदर्भ में 19वीं सदी को सामाजिक-सांस्कृतिक जागृति के रूप में देखा जाता है। इस जागृति के विचारकों में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद एवं श्री अरविन्द शामिल थे। इस नवोत्थान आंदोलन के लिए इन सभी विचारकों ने प्राचीन वैदिक साहित्य के अंतर्गत वेद, उपनिषदों का गहन अध्ययन किया एवं हिन्दू-दर्शन के निवृत्ति पथ को एक नये सिरे से प्रस्तुत करते हुए प्रवृत्ति के मार्ग को श्रेष्ठ बताया। वास्तव में यह नवोत्थान भौतिकता और आध्यात्मिकता का सम्मिश्रण था, दूसरे शब्दों में प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा (वेद, उपनिषद्) के आधार पर पश्चिम और यूरोप के वैज्ञानिक, भौतिक आदि सभी प्रश्नों का विश्लेषणात्मक

उत्तर भारतीय विचारकों द्वारा दिये गये। इसी हिन्दू नवोत्थान के एक महान व्यक्तित्व हैं, श्री अरविन्द घोष, जिनमें है एक कवि, दार्शनिक, साहित्यकार, पत्रकार, क्रान्तिकारी नेता, और सबसे बड़कर एक महान संत। श्री अरविन्द का जीवन आदर्श, उनकी रचनाओं की प्रसांगिकता वर्तमान में संपूर्ण मानवजाति के लिए अत्यंत कल्याणकारी है। श्री अरविन्द के जीवन को तीन चरणों में समझा जा सकता है, प्रथम चरण में इंग्लैंड में रहते हुये पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति के प्रभाव में रहते हुए जीवन यापन करना, दूसरा चरण बड़ौदा और बंगाल में रहते हुए क्रांतिकारी आंदोलनों में भागीदारी एवं तीसरा चरण पांडिचेरी में रहते हुए आध्यात्मिक चिंतन। श्री अरविन्द का पांडिचेरी काल 1910 ई. से 1950 ई. तक भारतीय संस्कृति, दर्शन, योग, आध्यात्म की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकी इसी समय 29 मार्च 1914ई. के दिन फ्रांस में जन्मीं मीरा अल्फासा की भेंट श्री अरविन्द के साथ हुई, बाद में यही मीरा अल्फासा, श्री अरविन्द की योग साधना पथ की सहयोगी बन गयी और इन्हें श्री माँ के नाम से जाना गया। उसी वर्ष चार माह बाद 15 अगस्त, 1914ई. को श्री अरविन्द के जन्म दिवस के अवसर पर श्री माँ के सहयोग से 'आर्य' मासिक पत्रिका का प्रथम अंक निकला। श्री अरविन्द के महत्वपूर्ण लेख, जिनमें दिव्य जीवन, योग समन्वय, वेद रहस्य, भावी काव्य, भारतीय संस्कृति के आधार, मानव चक्र, उपनिषद्,गीता प्रबंध शामिल हैं, ये सभी आर्य मासिक पत्रिका में जनवरी 1921 ई. तक प्रकाशित होते रहे। यहीं पांडिचेरी में रहते हुये ही श्री अरविन्द नें अपनीं सबसे महत्वपूर्ण रचनाओं में शामिल सावित्री महाकाव्य का सृजन भी किया। जब हम श्री अरविन्द के चिंतन-दर्शन की बात करते हैं तो वह इन्हीं आर्य मासिक पत्रिका में छपे लेखों और सावित्री महाकाव्य से उद्घाटित होता है। श्री अरविन्द के लिए, खौलते रक्त वाले देशप्रेमी, कवि, आलोचक, योगी, ऋषि, बहुभाषाविद्, अतिमानस का अग्रदूत, दार्शनिक, भारतीय राष्ट्रवाद के चैंपियन आदि शब्द प्रयोग किये जाते हैं, लेकिन यह सब शब्द हम मनुष्यों की समझ के लिए हैं, क्योंकि श्री अरविन्द के

महान व्यक्तित्व को हम शब्दों में बयाँ नहीं कर सकते हैं। श्री अरविन्द योगियों में अलग ही प्रकार का स्थान रखते हैं, वह इसलिए क्योंकि उनका योगी जीवन संसार से पलायन करके नहीं अपितु उन्होंने समाज में रहकर ही मानव एकता एवं मानव रूपांतरण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। श्री अरविन्द का पांडिचेरी प्रवास मानवजाति के दुखों के स्थायी समाधान के अन्वेषण में बीता और मानवजाति के दुख-कष्ट की कुंजी उन्होंने खोजी प्राचीन भारतीय आध्यात्म में। श्री अरविन्द का चिंतन, दर्शन एवं जीवन संपूर्ण मानवजाति के लिए प्रेरणा के साथ-साथ संतुलित जीवन, आनंदमय जीवन,अवसाद मुक्त जीवन, सद्भावना युक्त जीवन, मानव एकता आदि मानव कल्याणकारी तत्वों से भरा हुआ है, यही कारण है कि उनके विचारों की प्रसांगिकता वर्तमान के संदर्भ में अपरिहार्य रूप से स्वीकार की जाती है। यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि आजादी के अमृत महोत्सव काल में हम श्री अरविन्द का 150वाँ जन्म दिवस मना रहे हैं और सच्चे अर्थों में यह उत्सव तब सिद्ध होगा, जब घर-घर में प्रत्येक व्यक्ति उनके विचारों को अपने जीवन में आत्मसात करेगा। भारत सरकार भी श्री अरविन्द के जीवन दर्शन के महत्व को स्वीकार करती है, इसीलिए उनके 150वीं जयंती के अवसर पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक विशेष समिति गठित की थी और इसके साथ-साथ संस्कृति मंत्रालय ने इस अवसर साल भर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया। उनकी 150वीं जयंती के अवसर पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी नें तेरह दिसंबर 2022 ई- को 150 रुपये का सिक्का और डाक टिकट जारी करते हुए कहा कि ''श्री अरविन्द का जीवन एक भारत श्रेष्ठ भारत का प्रतिबिंब है। उनका जन्म भले ही बंगाल में हुआ था, लेकिन अपना ज्यादातर जीवन उन्होंने गुजरात और पांडिचेरी में बिताया। वे जहाँ भी गए वहां अपने व्यक्तित्व की गहरी छाप छोड़ी।'' वर्तमान में जब वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, भौतिक विकास अपने चरम पर है, लेकिन इसके समानांतर मनुष्य की परेशानियाँ, दुख-दर्द आज भी वैंसी की वैंसी हैं, दूसरे शब्दों में मानव के शारीरिक-मानसिक कष्ट पहले की अपेक्षा अधिक बड़ गये हैं। आज यदि हम अपने चारों ओर के समाज का सूक्ष्म अवलोकन करें तो हम में से अधिकांश व्यक्ति अपने चारों ओर इस प्रकार का वातावरण पाएंगे - अपने परिवार, पड़ोस एवं आस-पास के लोगों से अलगाव या नाम मात्र का व्यवहार, दूसरे के प्रति ईर्ष्या का भाव, अपने संबंधियों, पड़ोस एवं आस-पास के साथ भौतिक प्रतियोगिता का भाव, ईमानदारी का अभाव, धन लोलूपता, अपराध आदि तामसिक प्रवृतियों से भरा हुआ मानव। ऐंसा मानव बाहर से तो हमको बहुत प्रसन्न नजर आ सकता है, लेकिन आंतरिक रूप से वह पूर्ण रूप से खोखला होता है, क्योंकि मानव के मन-मस्तिष्क पर नकारात्मक भावों यथा, ईर्ष्या, द्वेष, प्रतियोगिता, बेईमानी, लालच आदि का दुष्प्रभाव पड़ता है। तनाव एवं अवसाद में घिरा हुआ मानव अपनी भौतिक प्रगति को देखकर उत्साहित एवं गर्वित तो होता है, लेकिन अपनी मधुमेह एवं अपनी दिल की बीमारियों से दुखी हो जाता है। परिणामस्वरूप इस भौतिक एवं वैज्ञानिक प्रगति के दौर में मानव, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति की खोज के समाधान को करता हुआ पहुँच जाता है भारतीय आध्यात्म के मार्ग पर। श्री अरविन्द का सर्वांगीण योग, जीवन की पूर्णता एवं सुखी जीवन का मार्ग दिखाता है, दूसरे शब्दों में दिव्य शरीर के अंदर दिव्य जीवन का कल्याणकारी मार्ग दिखाता है। स्पष्टत: श्री अरविन्द का सर्वांगीण योग दिव्य शरीर एवं दिव्य जीवन जीने की कला सिखाता है, बस हमें एक कदम उनकी ओर बढ़ाने की देर है। इन्ही कारणों से श्री अरविंद का विचार, दर्शन, जीवन, आधुनिक मानवजाति के लिए अत्यंत कल्याणकारी हैं। श्री अरविन्द के जीवन दर्शन को जानने का मुख्य स्त्रोत है, उनके द्वारा लिखे गये ग्रंथ, जो वर्तमान में श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी के प्रकाशन विभाग से मानव के कल्याणार्थ निरंतर प्रकाशित हो रहे हैं, इसके अलावा उनके साधकों, अनुयायियों, जिज्ञासुओं की रचनाएं भी इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

महर्षि अरविन्द के चिन्तन का मूल भारतीय अध्यात्म

'संसार को भारत का आध्यात्मिक दान प्रारंभ हो ही चुका है। भारत की आध्यात्मिकता यूरोप और अमेरिका में नित्य बढ़ती हई मात्रा में प्रवेश कर रही है। यह आन्दोलन बढ़ेगा; वर्तमान काल की विपदाओं के बीच

अधिकाधिक लोगों की आँखें आशा के साथ भारत की ओर मुड़ रही हैं और न केवल उसकी शिक्षाओं का अपितु उसकी आंतरात्मिक और आध्यात्मिक साधना का भी अधिकाधिक आश्रय लिया जा रहा है।'

(श्री अरविन्द का 15 अगस्त 1947 को देश के नाम संदेश)

श्री अरविन्द ने दिव्य शरीर एवं दिव्य जीवन के लिए बाहर की अपेक्षा अंत:करण के विकास की बात कही, उन्होंने चेतना के विकास की बात कही और इसके लिए मार्ग दिखाया आध्यात्मिक जीवन शैली का। प्राचीन भारतीय आध्यात्मिकता के संबंध में वे कहते हैं कि 'प्राचीन भारतीय आध्यात्मिकता स्वीकार करती थी कि मनुष्य अविद्या में निवास करता है और उसे इसके संपूर्ण संकेतों के द्वारा उच्चतम अंतर्मन ज्ञान की ओर ले जाना होगा।' श्री अरविन्द का आध्यात्मिक चिन्तन जीवन से पलायन करके जीना नहीं सिखाता है, स्व मोक्ष नहीं सिखाता अपितु संसार में रहते हुए अपने और दूसरों के आंतरिक विकास का मार्ग सिखाता है। जब अलिपुर षड्यंत्र कांड के लिए महर्षि अरविन्द को एक वर्ष का कारावास (मई 1908 ई.-मई 1909 ई.) हुआ, उस समय यह किसको पता था कि यही कारावास बनेगा। उनकी प्रथम आध्यात्मिक प्रयोगशाला। यहाँ जेल में रहते हुए महर्षि अरविन्द गीता, उपनिषद्, पुराण का अध्ययन करते हैं, जेल में रहते हुए योग-साधना में लगे रहते हैं, यहीं जेल में रहते हुए महर्षि अरविन्द 'सर्वघट में नारायाण है', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' को अनुभव करते प्रतिफल, उन्हें जेल भी जेल जैसा नहीं लगता है। जेल से रिहा होने के बाद महर्षि अरविन्द ने अपने कारावास के आध्यात्मिक अनुभवों को 'उत्तरपाड़ा संबोधन' में सार्वजनिक किया। इसी 'वासुदेव सर्वमिति' (हर जगह वासुदेव/ईश्वर हैं) के आध्यात्मिक अनुभव को कारा कहानी में भी व्यक्त करते हैं। इस प्रकार से श्री अरविन्द के मानव एकता का सूत्र, राष्ट्रवाद, सर्वांगींण योग आदि सभी तत्वों पर वेद, उपनिषद् आदि भारतीय आध्यात्म का स्पष्ट प्रभाव है।

वास्तव में भारतीय आध्यात्म कल्याणकारी जीवन जीने का एक तरीका है , श्री अरविन्द के विचार एवं शिक्षा का प्रभाव पांडिचेरी में स्पष्टत: अनुभव किये जा सकते हैं। इस प्रभाव के मूल्यांकन के संदर्भ में 10, दिसंबर 2022 ई. के दिन पांडिचेरी में स्थित श्री अरविन्द आश्रम अभिलेखागार एवं शोध पुस्तकालय के छियत्तर वर्षीय निदेशक, श्रीमान बाँब ज्विकर जिनका जन्म यू.एस.ए. में हुआ था का साक्षात्कार का वर्णन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। श्रीमान बाँब ने साक्षात्कार के दौरान बताया कि भारतीय आध्यात्मिकता की खोज में, एक बेहतर मानव बनने की कुंजी की तलाश में वह सबसे पहले उत्तराखंड के ऋषिकेश में चार माह बिताते हैं और फिर यहाँ से पांडिचेरी चले जाते हैं, 1971 ई. में वह पहली बार पांडिचेरी आये थे और तब से आज तक यहीं रहते हैं, उन्होंने बताया कि सबसे पहले श्री अरविन्द के विषय में उन्होंने फ्रांस में अपने किसी मित्र से सुना था एवं जब प्रथम बार उन्होंने श्री अरविन्द साहित्य को पड़ा था तो उनकी अंर्तआत्मा से एक आवाज आयी कि यही वह स्थान है, जिसे मुझे तलाश है! श्रीमान बाँब ज्विकर भारत की आध्यात्मिक विरासत की बात करते हुए भारत को अन्य देशों से श्रेष्ठ बताते हैं। इस संबंध में वे कहते हैं कि एक अच्छा इंसान बनने के लिए वे भारत आये और फिर यहीं के होकर रह गये।

अपने पांडिचेरी भ्रमण के दौरान मैंने श्री अरविन्द के द्वारा प्रतिपादित कर्मयोग के सिद्धान्त का मूल्यांकन भी किया। यहाँ आश्रम के विभिन्न विभागों के कर्मचारियों ने बताया कि वह अपने सभी कार्यों को श्री अरविन्द एवं श्री माँ को समर्पित करते हैं, वे सभी कार्यों को प्रसन्न भाव से करते हैं, इस प्रकार से उनके कार्य में दिव्यता के साथ कुशलता आते रहती है। श्री अरविन्द का आध्यात्म, खुशहाल एवं अवसादमुक्त जीवन जीने का एक मार्ग है, जिसकी आवश्यकता आज संपूर्ण मानवजाति को है। 1960 ई. में जब श्री अरविन्द सोसायटी की स्थापना की गयी तो उसके उद्देश्यों में एक उद्देश्य उनके सर्वांगीण योग से सबको परिचित कराना भी शामिल था, जिसके लिये सोसायटी निरन्तर प्रयासरत है।

श्री अरविन्द चिन्तन : वर्तमान के संदर्भ में मूल्यांकन

वर्तमान में संपूर्ण संसार का मानव एक आन्तरिक कष्ट से

i. छान्दोग्य उपनिषद्,'सब ब्रह्म ही है'

ii. 30 मई 1909 ई. के दिन श्री अरविन्द ने, उत्तरपाड़ा धर्म रक्षिणी सभा के आमंत्रण पर उत्तरपाड़ा पब्लिक पुस्तकालय मैदान में एतिहासिक भाषण दिया।

गुजर रहा है, यह कष्ट है दैहिक-मानसिक। भारत और पश्चिमी देशों की तुलना यदि की जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमी देशों में भौतिक उन्नति अपने चरम पर जा चुकी है, किन्तु व्यक्ति के शारीरिक-मानसिक, रोग, बीमारी, मृत्यु आदि दुख अभी भी बने हुए हैं। पिछले दो वर्षों के अन्तर्गत अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय घटनाक्रम पर एक नजर डालें तो हम पाएंगे कि संपूर्ण मानव समाज शारीरिक-मानसिक दु:खों से गुजर रहा है। रूस-यूक्रेन संकट में दोनों देशा के बीच छह माह से अधिक चल रहे युद्ध ने मानवजाति पर सर्वांगीण विनाशकारी प्रभाव डाले हैं। कोरोना वैश्विक महामारी ने एक बार फिर यह साबित कर दिया है कि वैज्ञानिक उपलब्धियों की भी सीमा है, वैज्ञानिकों को भी आविष्कार के लिए समय चाहिये और आधिभौतिक कष्ट से विज्ञान भी नहीं बचा सकता, महामारी काल में समस्त मानवजाति, तनाव, अवसाद, भय आदि से गुजरी और लोगों ने एक नये सत्य को महसूस किया और वह था आन्तरिक विकास, शारीरिक के साथ मानसिक मजबूती। अफगानिस्तान संकट - अगस्त 2021 ई. से तालिबान के सत्ता में आने से अफगानिस्तान में मानवीय संकट उत्पन्न हो रखा है, तालिबान के शासन में आर्थिकी मामले निराशाजनक हैं, प्रतिफल गृहयुद्ध और हिंसक संघर्ष की स्थिति पैदा हो सकती है। इसके अलावा श्रीलंका आर्थिक संकट, पाकिस्तान में महंगाई, बाढ़ या ऐसे सैकड़ों घटनाक्रम हैं, जहाँ संपूर्ण मानव समाज त्राहि-त्राहि कर रहा है और आधिभौतिक दु:खों से गुजर रहा है। भारत में महिलाओं के प्रति बड़ते अपराध, हर स्तर पर बढ़ता भ्रष्टाचार, जिसके अंतर्गत उत्तराखंड में भर्ती घोटाला। ऐसे बहुत से मुद्दे हैं, जिनको देखने से लगता है कि मनुष्य की अंतरात्मा क्षीण हो गयी है या नष्ट हो गयी है, मानव अत्यंत स्वार्थी हो गया है। परिणामत: धन का लालच इतना बड़ गया है कि हर स्तर पर घोटाले और भ्रष्टाचार व्याप्त हैं। ऐंसे में समय आ गया है, जब मनुष्य को अपने मन एवं विचारों के शोधन की आवश्यकता है, अपने अंदर के नकारात्मक भावों को समाप्त करने की आवश्यकता है, उच्च सद्गुणों को विकसित करने की आवश्यकता है और इसका मार्ग है श्री अरविंद दर्शन। रामधारी सिंह 'दिनकर', 'संस्कृति के चार आध्याय' पुस्तक में यह कहते हैं कि 'विज्ञान ने मनुष्यों के चरणों पर जो अपरिमेय शक्ति रख दी है, उससे मनुष्य का आधिभौतिक जीवन तो एक हो गया है, किन्तु उसके आभ्यांतर जीवन की एकता का मार्ग उसे नहीं सूझ रहा है। संसार में सर्वत्र व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सुख, आनंद और संतोष प्राप्त करने के परस्पर-विरोधी अधिकारों को लेकर आपस में टकरा रहे हैं।' आज सर्वत्र समाज अशांत है, मानव एकता गायब है, हिंसक आंदोलनों का विकास हुआ है, असंतोषी जीवन शैली का विकास सर्वत्र व्याप्त है। इन सभी आधिभौतिक कष्टों से छुटकारे का मंत्र, श्री अरविन्द के चिन्तन में है, जिससे वर्तमान में उनके विचारों की प्रासंगिकता अपरिहार्य रूप से स्वीकार की जाती है।

मानव एकता के प्रेमी

'श्री अरविन्द के शरीर छोड़ने और यहाँ से विदा लेने के बहुत बाद इन्हें देश-प्रेम के कवि, राष्ट्रीयता के पैगम्बर और मानवजाति के प्रेमी के रूप में देखा जाएगा।'

- देशबंधु चितरंजन दास

श्री अरविन्द संपूर्ण मानवता के एकीकरण के पक्षधर थे, 15 अगस्त 1947 ई. को देश की स्वतंत्रता के अवसर पर उन्होंने अपने संदेश में अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि एशिया के सभी राष्ट्रों का पुनर्जागरण हो इसके अलावा मानव सभ्यता के विकास में जुड़े उसकी भूमिका रही है, उसकी पुन: वापसी हो। संपूर्ण मानवजाति के कल्याण के लिए एक विश्वसंघ का निर्माण हो, जो सुन्दरतर, उज्ज्वलतर, और महत्तर जीवन के लिये आधार तैयार करे। युद्धों से संपूर्ण समाज आर्थिक, सांस्कृतिक,राजनीतिक, नैतिक मूल्यों के स्तर पर पतित होता है, इससे मानवता के जो चिथड़े होते हैं, उनकी भरपाई युगों तक नहीं होती है, ''श्री अरविन्द कदाचित् यह मानते हैं कि मानवता के वस्त्र बिल्कुल चिथड़े-चिथड़े हो गये हैं और आवश्यक है कि उसे कोई नया परिधान दिया जाए।'' श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी में सहभागी अवलोकन करने पर देखा गया कि रंग-रूप, पहनावा, भाषा, क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, जातीय विविधता होने पर भी सभी लोग एकता के सूत्र में बँधे हैं, इन सभी लोगों को एक अदृश्य शक्ति आपस में संगठित

किये हुए थी और वह अदृश्य शक्ति थी श्री अरविन्द एवं श्री माँ की। श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी में इस एकता के छोटे से मॉडल को सहज ही अनुभव किया जा सकता है, अब जरूरत है तो इस बात की कि श्री अरविन्द दर्शन को जन-जन तक पहुँचाया जाए। श्री अरविन्द के मानव एकता के सूत्र पर आधारित एक नगर का उद्घाटन श्री माँ के द्वारा 28 फरवरी 1968 ई. को पांडिचेरी से दस किमी दूरी पर किया गया है, इस नगर का नाम है आँरोविल और यह स्थित है तमिलनाडु राज्य में। यह नगर आध्यात्मिक अनुसंधान के द्वारा मानव एकता के लिएनिरंतर प्रयोग कर रहा है, वर्तमान में यहाँ पर लगभग पैंतालीस देशों के लोग, राष्ट्रीयता, जाति, भाषा, ऊँच-नीच आदि भेदभाव से परे निवास कर रहे हैं। इस प्रकार श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी, श्री अरविन्द सोसायटी एवं आँरोविल मानव एकता, मानवजाति के कल्याण के लिए एक विश्वसंघ के लिए निरंतर कार्य कर रहे हैं, जिससे वर्तमान एवं आने वाले कल के लिए इन संस्थाओं की प्रसांगिकता सिद्ध होती है।

आन्तरिक विकास एवं दिव्य जीवन का मार्ग

भारतीय आध्यात्म के आधार, वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, महाभारत आदि का अध्ययन करके श्री अरविन्द ने जो सीखा, उसकी शिक्षा से आज संपूर्ण मानवजाति लाभान्वित हो रही है। कुछ विद्वानों का मानना है कि, राष्ट्रीय आंदोलन में साथ देने के बजाय श्री अरविन्द पलायन करके पांडिचेरी चले गये, लेकिन यह सत्य नहीं है। श्री अरविन्द इस पलायनवादी सोच पर कहते हैं कि 'मैं पहले जो कर रहा था वह अपर्याप्त था। अब जो कर रहा हूँ वह पर्याप्त है। जब मैं करने में लगा था तब मुझे पता नहीं था कि कर्म तो ऊपर- ऊपर है, उससे दूसरों को नहीं बदला जा सकता। दूसरों को बदलना हो तो स्वयं के भीतर प्रवेश कर जाना जरूरी है। स्वयं को जाने बिना कोई भी आंदोलन अधूरा है।' श्री अरविन्द का यह विचार आन्तरिक विकास की प्रेरणा देता है और यह प्राचीन योग परंपरा से इस अर्थ में भिन्न है, क्योंकि इसमें निवृत्ति का विचार नहीं है। अर्थात् इसका उद्देश्य संसार से पलायन करना सिखाना नहीं है बल्कि संसार के सभी कार्यों को करते हुए जीवन को परिवर्तन करना शामिल है। यह योग मानव प्रकृति को रूपांतरित करने की एक विधि है और मानव प्रकृति को दिव्य बनाकर ही वर्तमान के मानव की आधिभौतिक कष्टों को समाप्त या कम किया जा सकता है। एक पंक्ति में यदि कहा जाये तो योग द्वारा आन्तरिक विकास एवं आन्तरिक विकास द्वारा दिव्य जीवन।

निष्कर्ष :

श्री अरविन्द के चिन्तन का अध्ययन, बहुआयामी ज्ञानगंगा का अध्ययन है,जिसकी भाषा को समझना साधारण पाठकों के लिये आसान कार्य नहीं है, लेकिन खुशी की बात यह है कि हिन्दी सहित अन्य मुख्य भाषाओं में श्री अरविन्द साहित्य मौजूद है। दूसरा पक्ष यह है कि आन्तरिक विकास एवं मानव एकता की सिद्वि के लिये श्री अरविन्द साहित्य को बार-बार पढ़ना आवश्यक है एवं उनके द्वारा बताये हुये मार्ग का अनुसरण करना आवश्यक है। इस ज्ञानगंगा के अंतर्गत समाहित है, दार्शनिक चिन्तन, राष्ट्रवादी चिन्तन, साहित्यिक चिन्तन, योग एवं आध्यात्मिक चिन्तन आदि। इस प्रकार श्री अरविन्द एक व्यक्ति नहीं अपितु एक 'संस्था' हैं, जिसमें है प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा एवं पश्चिम का भौतिक चिन्तन का समावेश। श्री अरविन्द भारत के संबंध में एक नयी संस्कृति का विचार प्रस्तुत करते हैं, जिसमें हो पश्चिम का समृद्ध विज्ञान और विकास का पौधा एवं उसका मूल हो भारतीय आध्यात्म। इस दृष्टि से श्री अरविन्द का चिन्तन सूत्र शारीरिक एवं मानसिक चेतना विकास को प्रथमिकता देता हुआ अत:दृष्टि के विकास की बात करता है। इस अर्थ में अरविन्द पश्चिम के विकास को नकार नहीं रहे बल्कि भारतीय आध्यात्म को आधार बनाकर उस पर आरोपित कर रहे हैं, क्योंकि ऐसा मार्ग अपना कर ही मानवजाति परम आनंद को प्राप्त कर सकती है। वर्तमान समय में जब संपूर्ण संसार में समस्त मानवजाति शारीरिक, मानसिक, युद्ध, महामारी, अलगाव आदि कष्ट से गुजर रही है तो ऐसे में श्री अरविन्द के मानव एकता, अहिंसा एवं दिव्य जीवन के सूत्र अपरिहार्य रूप से प्रासंगिक हैं। ❑

संदर्भ

1. दिनकर, रामधारी सिंह, 2010, संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 447
2. रवींन्द्र, 1994, लाल कमल, पृ0 369
3. दिनकर, रामधारी सिंह, 2010, संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 389
4. https://www.amarujala.com/india-news/150th-birth-anniversary-of-sri-aurobindo
5. खेतान, चंद्रप्रकाश (संकलनकर्ता), बगड़िया, पंकज (हिन्दी अनुवाद), 2015, भारत और उसकी संस्कृति की महानता (श्री माँ व श्री अरविन्द के शब्दों में), पृ0 368
6. आश्रम ट्रस्ट, श्री अरविन्द, 2017, भारतीय संस्कृति का आधार, पृ0 154
7. श्री अरविन्द, 2006, कारावास की कहानी, पृ0 36
8 .रे, त्रिजा, 2017, श्री औरोबिन्दो एण्ड उत्तरपाड़ा स्पीच, पृ0 22
9. साक्षात्कार श्रीमान बाँब ज्विकर,निदेशक श्री अरविन्द आश्रम शोध पुस्तकालय एवं अभिलेखागार,पाँडिचेरी,दिनांक 10.12.2022
10. दिनकर, रामधारी सिंह, पूर्वोक्त, पृ0 445
11. रवींद्र, 1994, लाल कमल, पृ0 299
12. विजय, 2019, श्री अरविन्द तथा श्री माँ, पृ0 56
13. रवीन्द्र, 2015, श्री अरविन्द: जीवन और दर्शन, पृ012
14. दिनकर, रामधारी सिंह, पूर्वोक्त, पृ0 448
15. http://en.wikipedia.org/wiki/Auroville
16. कुमार किशोर, 15 अगस्त 2017, http://blogs.navbharattimes.indiatimes.com

21वीं सदी के प्रथम दो दशकों के हिन्दी गीतकाव्य में आर्थिक जीवन-मूल्य

कल्पना जैन

शोधार्थी (हिन्दी)
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय,
भोपाल, मध्य प्रदेश
मो. 8802868383
ईमेल: kalpanajainindia@gmail.com

डॉ. कृष्णगोपाल मिश्र

शोध निर्देशक
विभाग अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
शासकीय नर्मदा महाविद्यालय
नर्मदापुरम, मध्य प्रदेश

सारांश

गीतकाव्य हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। गीतों के माध्यम से गीतकार सहज ही जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति करने में सफल हो पाता है। जीवन-मूल्य लोगों का सही मार्गदर्शन कर जीवन में उच्च आदर्श स्थापित करने में सहायक होते हैं। जीवन-मूल्यों को समाज की आर्थिक परिस्थितियाँ प्रभावित करती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, परंतु स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद औद्योगीकरण और तकनीकी विकास तीव्रता से हुआ है, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था का एक बहुत बड़ा भाग औद्योगीकरण पर आधारित हो गया है। किसी भी देश की उन्नति के लिए औद्योगिक और तकनीकी विकास अत्यंत आवश्यक है। औद्योगिक विकास से जहाँ राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी होती है और देश संपन्न बनता है वहीं कुछ समस्याएँ भी जन्म ले लेती है, जैसे आर्थिक विषमता, बेरोजगारी, लोगों में संवेदनशीलता की कमी, घुटन, अवसाद और नवधनपतियों का जन्म आदि। गीतकार समाज में व्याप्त आर्थिक परिवर्तनों और उनके प्रभावों को अनुभूत कर गीत में व्यक्त करता है। वर्तमान समाज अर्थोन्मुखी हो गया है। मानव, धन को आपसी रिश्तों और मानवता से अधिक महत्वपूर्ण मानने लगा है। समाज में आर्थिक विषमता और निर्धनता तथा बेरोजगारी का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा, महत्वाकांक्षाएँ व्यक्ति को अंतर्मन से कठोर बना रही हैं और रिश्तों की गरमाहट, उनके प्रति कर्तव्यों में कमी आ रही है तथा संवेदनाएँ आर्थिक प्रभाव के कारण मरने लगी है। बाजारवादी भौतिक आकर्षण और अति सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने की होड़ ने व्यक्ति को कुंठित, एकांकी और अवसरवादी बना दिया है, जिससे उच्च जीवन-मूल्यों का तेजी से क्षरण हो रहा है। व्यक्ति गरीबी से त्रस्त होकर अनैतिक कार्यों को करने की तरफ उन्मुख होता है। वहीं अमीर वर्ग और अधिक धन अर्जन की चाह में धर्म विमुख, अनैतिक साधनों से धन अर्जन करने से भी नहीं चूकता है। धन प्राप्ति की इच्छा ने उच्च जीवन-मूल्यों को लोगों के जीवन से विस्मृत कर दिया है। लोगों का एकमात्र उद्देश्य धन कमाना बनता जा रहा हैं। आज आवश्यकता है उच्च जीवन-मूल्यों के संरक्षण की, जिससे समाज उचित आर्थिक साधनों से नैतिक मूल्यों के अंतर्गत रहकर धन

अर्जन करें, जिससे समाज की उन्नति हो तथा स्वस्थ मानसिकता के साथ नव पीढ़ी को धनोपार्जन का सही मार्गदर्शन मिल सके।

संकेत शब्द : गीतकाव्य, समाज, आर्थिक, जीवन-मूल्य।

प्रस्तावना

गीतकाव्य हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। रस्किन के शब्दों में 'गीतिकाव्य कवि की निजी भावनाओं का प्रकाश होता है। सहजशुद्ध भाव, स्वच्छंद कल्पना, तर्कवाद और न्यायमूलकता से मुक्त विचार, ये ही गीतिकाव्य की वास्तविक विशेषताएँ हैं।'[1]

मयंक श्रीवास्तव के अनुसार ''गीत अनादि काल से पृथ्वी पर उसके विभिन्न स्वरूपों में उपस्थित रहा है। गीत हृदय के असीम सागर की गहराई से निकलने वाली प्रतिध्वनि है, गीत का स्वरूप हर काल में बदलता रहा है, इसके रूप रंग में परिवर्तन होता रहा है, किंतु इसके मूल में उसकी सच्चाई, सरलता और यथार्थ रहा है।''[2]

गीतों के माध्यम से गीतकार सहज ही जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति करने में सफल हो पाता है। जेम्स. वी. शेवर तथा विलियम्स स्टांग के अनुसार 'मूल्य महत्व के बारे में निर्णय के मापदंड तथा नियम है। ये वे मापदंड है, जो लोगों, क्रियाओं, वस्तुओं, विचारों, परिस्थितियों के अच्छा होने, महत्वपूर्ण व वांछनीय होने अथवा खराब, महत्त्वहीन व अवांछनीय होने या तिरस्करणीय होने के बारे में निर्णय करते हैं।'[3]

जीवन-मूल्य लोगों का सही मार्गदर्शन कर जीवन में उच्च आदर्श स्थापित करने में सहायक होते हैं। जीवन-मूल्यों को समाज की आर्थिक परिस्थितियाँ प्रभावित करती है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, परंतु स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद औद्योगीकरण और तकनीकी विकास तीव्रता से हुआ है, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था का एक बहुत बड़ा भाग औद्योगीकरण पर आधारित हो गया है। किसी भी देश की उन्नति के लिए औद्योगिक और तकनीकी विकास अत्यंत आवश्यक है। औद्योगिक विकास से जहाँ राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी होती है और देश संपन्न बनता है, वहीं कुछ समस्याएँ भी जन्म ले लेती है। जैसे आर्थिक विषमता, बेरोजगारी, लोगों में संवेदनशीलता की कमी, घुटन, अवसाद और नवधनपतियों का जन्म आदि समस्याएँ समाज के सामने आने लगती हैं। उद्योग धंधों के बढ़ने से नगरीकरण का विकास होता है और गाँवों की भूमि नगरीय विस्तार के कारण नगरों में सम्मिलित होती जा रही है। गीतकार समाज में व्याप्त आर्थिक परिवर्तनों और उनके प्रभावों को अनुभूत कर गीत में व्यक्त करता है।

मनोज जैन 'मधुर' ने गीत 'महँगाई की मार' में नगरीकरण से उत्पन्न आर्थिक प्रभाव के कारण उत्पन्न समस्याओं और मानव पर पड़ने वाले प्रभावों को गीत में रचा है। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार, आर्थिक व्यवस्था का कुशासन तंत्र, पूंजीवादी के वर्चस्व आदि के कारण बढ़ती महँगाई आम आदमी को त्रस्त कर देती है। व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा, दवाई आदि को भी प्राप्त करना आम व्यक्ति के लिए कठिनाई का कारण बन जाता है। महँगाई के दिन-प्रतिदिन बढ़ते जाने के कारण लोग अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं को ही पूरा करने में लगे रहते हैं, सुख-सुविधाओं की पूर्ति करने की तो बारी ही नहीं आ पाती है। कड़ी मेहनत के बाद भी बढ़ती महंगाई और आवश्यकताओं की पूर्ति के समक्ष व्यक्ति का वेतन कम ही पड़ जाता है।

आर्थिक प्रभावों से उत्पन्न बाजारवाद के अंतर्गत विज्ञापन और चमक-दमक करके वस्तु की आवश्यकता लोगों में जागृत की जाती है। लोग वस्तु के विज्ञापनों की चमक-दमक से इतने प्रभावित हो जाते हैं कि उस वस्तु की गुणवत्ता और उपयोगिता को भी नहीं देखते हैं बस भौतिकवाद से प्रभावित हो बाजारवाद के चक्रव्यूह में फँस जाते हैं। वस्तुओं और सुख-सुविधाओं की चाह इतनी बलवती हो जाती है कि उन्हें प्राप्त न कर पाने की कुंठा व्यक्ति के मन में घर कर जाती है और व्यक्ति निराशा और अवसाद से घिर जाता है। ऐसे में लोग सुख-सुविधाएँ और वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए धन अर्जन के नैतिक और अनैतिक साधनों का विचार तक

नहीं करते हैं। लोगों का धनोपार्जन प्रवृत्ति की तरफ प्रवृत्त होने के कारण उनका उद्देश्य केवल धन अर्जन करना रह जाता है, चाहे वह धन अनैतिक साधनों से ही क्यों न अर्जित किया गया हो। गीत 'महँगाई की मार' का कुछ अंश दृष्टव्य है :

सिर के ऊपर
कुंठा की
तलवार लटकती है
मँहगाई की मार
कमर को
जमकर तोड़ रही
और पेट को पीट
भूख के घुटने जोड़ रही
सुख सुविधा की गंध
न अपने पास फटकती है
नींदों में भी
विज्ञापन का
प्रेत उभरता है
लोहे को सोना,
राई को
पर्वत करता है
इच्छा को बेबसी बुलाकर
रोज हटकती है[4]

डॉ. सुनील अग्रवाल ने 'दीपावली आई और गई' गीत में समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता को दर्शाया है। वर्तमान समाज में आर्थिक विषमता की खाई और भी गहरी होती जा रही है। कारीगरों को उनके परिश्रम का उचित मूल्य नहीं मिलता हैं और वे अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए ही संघर्ष करते रह जाते हैं, जबकि नवधनपतियों के धन में वृद्धि होती रहती है। पूँजीपतियों के द्वारा किए जाने वाले शोषण के कारण आर्थिक विषमता में वृद्धि हो रही है।

मजदूर, कारीगर, श्रमिक आदि परिश्रम करने वाले दिन-रात परिश्रम करके भी अपनी आर्थिक स्थिति को ऊँचा नहीं उठा पाते हैं। गीतकार ने गीत में दिये और बताशे बनाने वाले श्रमिक की व्यथा को गीत में प्रस्तुत किया है। दिये बनाने से श्रमिक को बड़ी मुश्किल से रोटी का जुगाड़ हो पाता है, जबकि अमीर वर्ग में हजारों दिये जलाने की सामर्थ्य है। बताशे बनाने वाला श्रमिक अपने बच्चे के लिए मिठाई का खिलौना भी उपलब्ध करने की आर्थिक स्थिति में नहीं है, जबकि अमीर वर्ग दीवाली पर मिठाई बाँटता और खाता है। जहाँ लोग दीपावली पर पटाखे चलाते हैं, वहीं किसी का ध्यान उन मजदूरों पर नहीं जाता है, जो अपनी जान जोखिम में डालकर उन पटाखों को बनाते हैं। अमीर, गरीब के प्रति संवेदनशून्यता का भाव रखने लगा है। इस तरह दीपावली व अन्य पर्वों पर, धन अर्जन के अवसरों पर जहाँ नव पूंजीपतियों और उद्योगपतियों को तो अत्यधिक लाभ होता है, परंतु श्रमिक वर्ग पूँजीपतियों के शोषण के कारण गरीब ही बना रहता है। गीत 'दीपावली आई और गई' प्रस्तुत है :

दीपावली पर उन्होंने
अपनी आलीशान ड्योढ़ी पर
टाँग दी दर्जन कंदीलें
सजा दिये हजारों दीये
जिसने मिट्टी गूँथी, बनाये और तपाये दिये
उसके हाथ में इतना भी न आया कि
रख सके अपने घर की टूटी दीवार पर भी
एक जलता हुआ दिया
जो मजदूर रात-दिन एक करके
मिट्टी के आगे बैठ
चीनी के खिलौने-बताशे बनाता
उसके बच्चों के हाथ एक मीठा खिलौना भी न आता।
पड़ौसी बहुत खुश
छोड़ रहे हैं बम, शहतीर, अनार, आतिशबाजी
कौन जीते आपस में होड़,
मुझे आ रही है, माँस जलने की गंध
प्रातः अखबार में पढ़ा था
'शिवकाशी में आतिशबाजी फैक्ट्री में विस्फोट
पचार मजदूर मरे, दस घायल हुए'
दीपावली आई और गई
कर गई कुछ को और अमीर
कुछ को और गरीब।[5]

कृष्ण मोहन 'अम्भोज' ने गीत 'महंगाई के हाथ' में

आम आदमी की आर्थिक स्थिति की त्रस्तता को गीत में रचा है। वर्तमान समाज में आर्थिक संसाधनों, सुविधाओं और भौतिक संसाधनों की तो प्रचुर मात्रा में उपलब्धता है, लेकिन आर्थिक संकट से जूझता आम आदमी बहुत त्रस्त और बेबस है। आम आदमी महंगाई की मार के कारण इतना धन भी संचय नहीं कर पाता कि अपने घर की आवश्यक मरम्मत करा सके। उसका सम्पूर्ण वेतन प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने में भी अक्षम रहता है। अत्यधिक परिश्रम करने के पश्चात भी आम आदमी लगातार बढ़ती महंगाई के कारण अभावों से सदैव त्रस्त रहता है तथा अपना कोई महत्वपूर्ण दिवस या खुशी नहीं मना पाता है और रोज एक-सा जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाता है। आर्थिक अभाव के कारण व्यक्ति के सपने केवल सपने ही बनकर रह जाते हैं, जिससे उसके मन में कुंठा और अवसाद की कीलें चुभती रहती हैं। आम आदमी छोटे से घर में जीवन यापन करते हुए गरीबी में त्रस्त रहता है। ऐसी परिस्थिति में राशन के लिए भी उसे उधारी नहीं मिल पाती है। गरीब व्यक्ति का जीवन अति संघर्षपूर्ण होता है तथा सुख-सुविधाएँ उसे दूर की बात लगती है, जबकि सरकारी नीति और योजनाएँ समय-समय पर उद्घोषित होती रहती हैं, लेकिन गरीब तक उनका लाभ नहीं पहुँच पाता है। ऐसी सरकारी योजनाएँ केवल भविष्य की सुनहरी आशाएँ बनने का दंभ भर्ती हैं। गीत 'महंगाई के हाथ' प्रस्तुत है :

हरियाले मौसम में
अपना चेहरा पीला है,
बादल सी छतें
टपकती है, हर कोना गीला है।...
जैसी ढलती है साझें
वैसी ही तो उगती भोर,
मंहगाई के हाथ बंधी
अपनी दिनचर्या की डोर,
सपनों के पावों
ठुका हुआ, अब भी तो कीला है।...
बहुत उधारी से
करता है, लाला आना कानी,
पहली बारिश में
भीजा सारा राशन पानी,
फूलों की बस्ती
दूर अभी, जीवन पथरीला है ।...
घर में बस दो कमरे हैं
लगते जैसे डबरे हैं,
मूल भूत सुविधाओं की
कितनी मोहक खबरें हैं,
नई योजनाएँ बता
रही, भविष्य चमकीला है ।...[6]

वीरेंद्र आस्तिक ने 'बुझना नहीं है' गीत में वर्तमान समय में मानव के अधिक धनोपार्जन की इच्छा और उससे उत्पन्न समस्याओं को गीत में रचा है। वर्तमान युग में समाज अर्थोन्मुखी होता जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति भौतिकतावादी पदार्थों, वस्तुओं की मृगतृष्णा में उन्हें प्राप्त करने की होड़ में, अधिक से अधिक धन अर्जन की होड़ में भागता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में मानव के अपने रिश्ते और मानवता कहीं पीछे छूटते जा रहे हैं और व्यक्ति धन कमाने की दौड़ में कब अपने प्रियजनों से विमुक्त हो अकेला रह जाता है, उसे आभास ही नहीं हो पाता है। कामयाबी के शिखरों को प्राप्त करने और सुख-सुविधाओं को जुटाने में उसकी जिंदगी आपाधापी वाली बन जाती है और वह कुछ भी करके चाहे वह उचित हो या अनुचित या दूसरों का हक मारकर ही क्यों न हो, वह केवल अपनी सफलता और लाभ के बारे में ही सोचता है। यह सब करके जब वह यदि अपनी कामयाबी के शिखर पर पहुँच भी जाता है तो उसकी संवेदनशून्यता, रिश्तों के ठंडेपन, धनलोलुप्सा और अनैतिक व्यवहार के कारण वह अपने को नितांत अकेला पाता है। जिंदगी का वास्तविक सुख जोकि अपनों के साथ मिलता है, वह उससे वंचित रह जाता है, जिसकी कसक, कमी उसे अंदर ही अंदर व्यथित करती रहती है और उसका मन पीड़ा और दु:ख से ध्वस्त हो जाता है। गीत 'बुझना नहीं है' की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :

ये हाँफती कवायद
ये हाँफते जिगर हैं
हर ओर छीना-झपटी

सब चाहते शिखर हैं
देखा, शिखर भी तनहा
फिर क्यों वहाँ दहे मन [7]

निष्कर्ष :

वर्तमान समाज अर्थोन्मुखी हो गया है। मानव, धर्म को आपसी रिश्तों और मानवता से अधिक महत्वपूर्ण मानने लगा है। समाज में आर्थिक विषमता और निर्धनता तथा बेरोजगारी का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा, महत्वाकांक्षाएँ व्यक्ति को अंतर्मन से कठोर बना रही हैं और रिश्तों की गरमाहट, उनके प्रति कर्तव्यों में कमी आ रही है तथा संवेदनाएँ आर्थिक प्रभाव के कारण मरने लगी है। बाजारवादी भौतिक आकर्षण और अति सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने की होड़ ने व्यक्ति को कुंठित, एकांकी और अवसरवादी बना दिया है, जिससे उच्च जीवन-मूल्यों का तेजी से क्षरण हो रहा है। व्यक्ति गरीबी से त्रस्त होकर अनैतिक कार्यों को करने की तरफ उन्मुख होता है। वही अमीर वर्ग और अधिक धन अर्जन की चाह में धर्म विमुख, अनैतिक साधनों से धन अर्जन करने से भी नहीं चूकता है। धन प्राप्ति की इच्छा ने उच्च जीवन-मूल्यों को लोगों के जीवन से विस्मृत कर दिया है। लोगों का एकमात्र उद्देश्य धन कमाना बनता जा रहा हैं। आज आवश्यकता है, उच्च जीवन-मूल्यों के संरक्षण की, जिससे समाज उचित आर्थिक साधनों से नैतिक मूल्यों के अंतर्गत रहकर धन अर्जन करें, जिससे समाज की उन्नति हो तथा स्वस्थ मानसिकता के साथ नव-पीढ़ी को धनोपार्जन का सही मार्गदर्शन मिल सके। ❑

सन्दर्भ सूची

1. वर्मा, सं. डॉ. धीरेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य कोश', ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1958 ई., पृष्ठ 262
2. शुक्ल, सं0 निर्मल, 'शब्दायन', उत्तरायण प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, सन् 2012 ई., पृष्ठ 59
3. मदान, पूनम और रामशक्ल पांडे, 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार', अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, प्रथम संस्करण, सन 2015-16 ई., पृष्ठ 368
4. जैन, मनोज 'मधुर', 'एक बूँद हम', पहले पहल प्रकाशन, भोपाल, प्रथम संस्करण, सन् 2011 ई., पृष्ठ 58-59
5. दिवाकर, सं. महेश और सं. मोहन राम 'मोहन', 'नई शती के नाम', अखिल भारतीय साहित्य कला मंच, मुरादाबाद, प्रथम संस्करण, सन् 2001 ई., पृष्ठ 629
6. सक्सेना, कृष्ण मोहन 'अम्भोज', 'संवेदन के बस्ते', नर्मदा प्रकाशन, पचोर, प्रथम संस्करण, सन् 2013 ई., पृष्ठ 60
7. आस्तिक, वीरेंद्र, 'गीत अपने ही सुने', के0 के0 पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 2017 ई., पृष्ठ 88
8. पाठक, सं. पंडित रामचंद्र, 'भार्गव आदर्श हिंदी शब्दकोश', भार्गव बुक डिपो, वाराणसी, संस्करण सन् 1995 ई.

अटल जी की कविताएँ

अटल बिहारी वाजपेयी की जयंती पूरा देश मना रहा है। 25 दिसंबर 1924 को ग्वालियर में जन्मे वाजपेयी जी ने तीन बार देश के प्रधानमंत्री की कुर्सी संभाली। वाजपेयी जी को सन् 2015 में देश के सर्वोच्च सम्मान भारत रत्न से सम्मानित किया गया था। राजनेता होने के साथ ही वे एक कोमल हृदय के कवि भी थे। उनकी पावन जयंती पर प्रस्तुत उनकी कुछेक कविताएँ...

मैं न चुप हूँ न गाता हूँ

न मैं चुप हूँ न गाता हूँ
सवेरा है मगर पूरब दिशा में
घिर रहे बादल
रूई से धुंधलके में
मील के पत्थर पड़े घायल
ठिठके पाँव
ओझल गाँव
जड़ता है न गतिमयता
स्वयं को दूसरों की दृष्टि से
मैं देख पाता हूं
न मैं चुप हूँ न गाता हूँ
समय की सदर साँसों ने
चिनारों को झुलस डाला,
मगर हिमपात को देती
चुनौती एक दुर्ममाला,
बिखरे नीड़,
विहँसे चीड़,
आँसू हैं न मुस्कानें,
हिमानी झील के तट पर
अकेला गुनगुनाता हूँ।
न मैं चुप हूँ न गाता हूँ ❑

आओ फिर से दीया जलाएँ

आओ फिर से दीया जलाएँ
भरी दुपहरी में अँधियारा
सूरज परछाई से हारा
अंतरतम का नेह निचोड़ें -
बुझी हुई बाती सुलगाएँ।
आओ फिर से दीया जलाएँ
हम पड़ाव को समझे मंजिल
लक्ष्य हुआ आँखों से ओझल
वर्तमान के मोहजाल में -
आने वाला कल न भुलाएँ।
आओ फिर से दीया जलाएँ।
आहुति बाकी यज्ञ अधूरा
अपनों के विघ्नों ने घेरा
अंतिम जय का वजर बनाने -
नव दधीचि हड्डियाँ गलाएँ।
आओ फिर से दीया जलाएँ ❑

न दैन्यं न पलायनम्

कर्तव्य के पुनीत पथ को
हमने स्वेद से सींचा है,
कभी-कभी अपने अश्रु और—
प्राणों का अर्घ्य भी दिया है।
किंतु, अपनी ध्येय-यात्रा में—
हम कभी रुके नहीं हैं।

किसी चुनौती के सम्मुख
कभी झुके नहीं हैं।
आज,
जब कि राष्ट्र-जीवन की
समस्त निधियाँ,
दाँव पर लगी हैं,
और,
एक घनीभूत अंधेरा—
हमारे जीवन के
सारे आलोक को
निगल लेना चाहता है;
हमें ध्येय के लिए
जीने, जूझने और
आवश्यकता पड़ने पर—
मरने के संकल्प को दोहराना है।
आग्नेय परीक्षा की
इस घड़ी में—
आइए, अर्जुन की तरह
उद्घोष करें
''न दैन्यं न पलायनम्।'' ❑

मैंने जन्म नहीं मांगा था!

मैंने जन्म नहीं मांगा था,
किन्तु मरण की मांग करूँगा।
जाने कितनी बार जिया हूँ,
जाने कितनी बार मरा हूँ।
जन्म मरण के फेरे से मैं,
इतना पहले नहीं डरा हूँ।
अन्तहीन अंधियार ज्योति की,
कब तक और तलाश करूँगा।
मैंने जन्म नहीं माँगा था,
किन्तु मरण की मांग करूँगा।
बचपन, यौवन और बुढ़ापा,
कुछ दशकों में खत्म कहानी।
फिर-फिर जीना, फिर-फिर मरना,
यह मजबूरी या मनमानी?
पूर्व जन्म के पूर्व बसी—
दुनिया का द्वारचार करूँगा।
मैंने जन्म नहीं मांगा था,
किन्तु मरण की मांग करूँगा। ❑

मौत से ठन गई

ठन गई!
मौत से ठन गई!
जूझने का मेरा इरादा न था,
मोड़ पर मिलेंगे इसका वादा न था,
रास्ता रोक कर वह खड़ी हो गई,
यों लगा जिन्दगी से बड़ी हो गई।
मौत की उमर क्या है? दो पल भी नहीं,
जिन्दगी सिलसिला, आज कल की नहीं।
मैं जी भर जिया, मैं मन से मरूँ,
लौटकर आऊँगा, कूच से क्यों डरूँ?
तू दबे पाँव, चोरी-छिपे से न आ,
सामने वार कर फिर मुझे आज़मा।
मौत से बेख़बर, जिन्दगी का सफ़र,
शाम हर सुरमई, रात बंसी का स्वर।
बात ऐसी नहीं कि कोई ग़म ही नहीं,
दर्द अपने-पराए कुछ कम भी नहीं।
प्यार इतना परायों से मुझको मिला,
न अपनों से बाक़ी हैं कोई गिला।
हर चुनौती से दो हाथ मैंने किये,
आंधियों में जलाए हैं बुझते दिए।
आज झकझोरता तेज़ तूफ़ान है,
नाव भँवरों की बाँहों में मेहमान है।
पार पाने का क़ायम मगर हौसला,
देख तेवर तूफ़ाँ का, तेवरी तन गई।
मौत से ठन गई। ❑❑❑

প্রবন্ধ

অসমৰ সমাজ-সংস্কৃতিলৈ মহাপুৰুষ মাধৱদেৱৰ অৱদান

ড° স্বপ্নালী দাস

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
ম'বাইল ঃ ৯৩৬৫৫৭০৬৪০
ইমেইল ঃ swapnalidasghy@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

পঞ্চদশ শতিকাত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ সবল নেতৃত্বত গঢ় লৈ উঠা ভক্তি আন্দোলনক অধিক শক্তিশালী আৰু ফলপ্রসূ কৰি তোলাত তেওঁৰ একান্ত অনুগত শিষ্য মাধৱদেৱৰো সমান কৃতিত্ব আছিল বুলি ক'লে নিশ্চয় অত্যোক্তি কৰা নহ'ব। শংকৰদেৱক লগ পোৱাৰ প্রাক্ মুহূৰ্তলৈকে শাক্ত ধর্মত বিশ্বাসী পণ্ডিত মাধৱে শংকৰদেৱৰ পদমূলত বীনা যুক্তিত আত্মসমর্পণ কৰা নাছিল। চল্লিছ বছৰীয়া পূর্ণবয়স্ক, যুক্তিবাদী, আগম শাস্ত্রত বিশাৰদ মাধৱে তিনিপৰ বেলি (গুৰুচৰিতৰ মতে) আগমৰ যুক্তিৰে শংকৰদেৱক পৰাজিত কৰিবলৈ আপ্রাণ চেষ্টা চলাইছিল; কিন্তু শংকৰদেৱৰ শাস্ত্রসম্মত অকাট্য যুক্তিত মাধৱ পৰাস্ত হ'ল। শংকৰৰ মুখনিশ্রিত 'তৰুমূল শ্লোক' শুনাৰ লগে লগে মাধৱৰ মনৰ সমস্ত সংশয় আৰু তমসা আঁতৰি গ'ল। সেইদিনা ধুৱাহাট বেলগুৰিত সংঘটিত হোৱা সেই ঐতিহাসিক ঘটনাই অসমৰ আকাশত এক নতুন আলোকৰ সঞ্চাৰ কৰিলে। মাধৱৰ জীৱনৰ পট পৰিৱর্তন হ'ল।

কাল মায়াৰ অধিকাৰী পৰম পুৰুষৰ লগত আত্মাৰ পৰিচয় ঘটিল। ইহকাল, পৰকালৰ পৰম গুৰু শংকৰদেৱৰ চৰণত আত্মোৎসর্গা কৰিলে বিনা চর্তে। তেওঁ ভক্তিধর্ম প্রচাৰ-প্রসাৰত শংকৰদেৱৰ একান্তত সহযোগী হৈ পৰিল। প্রভাৱশালী ব্যক্তিত্ব, বিচক্ষণতা আৰু দূৰদর্শীতাৰ মিশ্রণেৰে মাধৱদেৱে গঢ় দিছিল ভক্তিমার্গৰ প্রকৃত সংগঠন। লগতে তেওঁ নিকপকপীয়াকৈ বান্ধি উলিয়াইছিল তাৰ ভিতৰুৱা প্রতিটো ৰীতি-নীতি।

অসমীয়া মানুহৰ সামাজিক জীৱনচর্যাত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ দৰেই মাধৱদেৱৰো অফুৰন্ত অৱদানৰ কথা অনস্বীকার্য। দুয়োজনা মহাপুৰুষৰ বাৰেৰহনীয়া অৱদানৰ ফলশ্রুতিতেই আজি অসমীয়া জাতিয়ে বিশ্বত নিজৰ এখ সুকীয়া পৰিচয় দিবলৈ সক্ষম হৈছে। এই আলোচনা পত্রত অসমৰ সমাজ জীৱনলৈ মাধৱদেৱৰ অৱদান সম্পর্কে আলোকপাত কৰাৰ প্রয়াস কৰা হ'ব।

বীজশব্দ ঃ শংকৰদেৱ, মাধৱদেৱ, সমাজ, ভক্তিধর্ম, শাক্ত।

অৱতৰণিকা ঃ

মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ পৰম বান্ধৱ, প্রপন্ন শিষ্য মাধৱদেৱ আছিল এক

বিশাল ব্যক্তিত্বৰ অধিকাৰী। শংকৰদেৱৰ দৰেই তেওঁ আছিল একেধাৰে ধৰ্মপ্ৰচাৰক, সংগঠক, সুকণ্ঠী গায়ক আৰু অনেক গুণৰ অধিকাৰী। মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ লগত ধুৱাহাট বেলগুৰিত হোৱা ধৰ্মীয় তৰ্কযুদ্ধত পৰাজিত হোৱা সেই ক্ষণটোৱেই আছিল মাধৱদেৱৰ জীৱনৰ মাহেন্দ্ৰ ক্ষণ। সেই পৰাজয়েই অসমৰ আধ্যাত্মিক ক্ষেত্ৰখনৰ বাবে কঢ়িয়াই আনিছিল বিজয় গৌৰৱ। শংকৰদেৱৰ মোহনীয় তথা আকৰ্ষণীয় ব্যক্তিত্বৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱান্বিত হৈ মাধৱদেৱে জীৱন, যৌৱন, শক্তি, ভক্তি সকলো তেওঁতেই সমৰ্পিত কৰিলে। শাক্ত মাধৱ হৈ পৰিল একান্ত কৃষ্ণভক্ত। কৃষ্ণ ভক্তি আৰু গুৰু সেৱাকেই তেওঁ জীৱনৰ একান্ত ব্ৰত কৰি ল'লে। গুৰুজনাৰ ধৰ্মীয় জীৱন, সামাজিক জীৱন আৰু সাংসাৰিক জীৱনৰ তেওঁ সহায়ক হৈ পৰিল। শংকৰদেৱৰ আজ্ঞা আৰু অনুপ্ৰেৰণাত তেওঁ ভক্তিধৰ্ম প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰৰ কামত হাত দিয়াৰ লগতে ভক্তিমাৰ্গৰ সকলো কৰ্মতে গুৰুজনাৰ সহায়ক হৈ পৰিল।

শংকৰদেৱে প্ৰজ্জ্বলিত কৰা ভক্তি প্ৰদীপ গছি তেল, শলিতাৰে মাধৱদেৱে চিৰ যুগমীয়াকৈ উজলাই ৰাখিলে। সেয়েহে শংকৰদেৱৰ নাতি পুৰুষোত্তম ঠাকুৰে ন-ঘোষাত লিখিছে এনেদৰে—

শংকৰ স্বৰূপে হৰি নিজ অংশে অৱতৰি
ভকতি প্ৰদীপ জ্বলাই থৈলা।
মাধৱ স্বৰূপে হৰি তাতে তৈল বস্তি দিয়া
অজ্ঞান আন্ধাৰ দূৰ কৈলা।।

শংকৰদেৱৰ দৰেই অসমৰ সমাজ জীৱনলৈ মাধৱদেৱৰ অৱদান আছিল অপৰিসীম। গুৰুজনাৰ সুযোগ্য উত্তৰাধিকাৰী স্বৰূপে মাধৱদেৱেও সাহিত্য, নৃত্য, নাট, গীত, কাব্য আদি সৃষ্টি কৰাৰ লগতে অনেক সমাজ কল্যাণকৰ কৰ্ম কৰিছিল।

এই আলোচনা পত্ৰত অসমৰ সমাজ জীৱনলৈ মাধৱদেৱৰ অৱদান সমূহৰ এক বিশ্লেষণ আগবঢ়োৱাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

মহাপুৰুষ দুজনাৰ আকাশলংঘী অৱদানৰ দ্বাৰা সমগ্ৰ অসমীয়া জাতি পুষ্ট হৈ আছে। আধ্যাত্মিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিক আদি সকলো দিশতেই মহাপুৰুষ দুজনাৰ অৱদান অনস্বীকাৰ্য। অসমীয়া জাতিৰ নক্সা গুৰু দুজনাৰ অবিহনে অকল্পনীয়। এই আলোচনা পত্ৰৰ উদ্দেশ্য হ'ল শংকৰদেৱৰ অৰ্ধশৰীৰ স্বৰূপ মাধৱদেৱে অসমৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰখনলৈ আগবঢ়োৱা অৱদান সন্দৰ্ভত আলোকপাত কৰা।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ'ব।

অধ্যয়নৰ উৎস ঃ

আলোচনা পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰিবৰ বাবে মুখ্য আৰু গৌণ দুয়োটা উৎসৰ সহায় লোৱা হৈছে। গুৰুচৰিত আৰু মাধৱদেৱৰ জীৱনকীৰ্তি বিষয়ক কেইবাখনো গ্ৰন্থৰ সহায় লোৱাৰ লগতে মুখ্য উৎস স্বৰূপে মাধৱদেৱৰ ৰচনাসমূহতো সম্যক দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

মূল বিষয় ঃ

পঞ্চদশ শতিকাত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে গুৰি ধৰা ভক্তি আন্দোলনৰ দ্বিতীয়গৰাকী মহান হোতা আছিল মহাপুৰুষ মাধৱদেৱ। জীৱনৰ আঠেকুৰি বছৰ বয়সলৈকে শাক্ত পন্থ অনুশীলন কৰা মাধৱে শংকৰদেৱৰ সান্নিধ্য পোৱাৰ পিছতেই জীৱনৰ গতিপথ সলনি কৰিলে। আগমপন্থী ৰীতি-নীতি, আচাৰ-বিচাৰ পৰিত্যাগ কৰি একশৰণ নামধৰ্মত দিক্ষিত হৈ কৃষ্ণভক্তি আৰু গুৰু সেৱাকেই জীৱনৰ প্ৰধান ব্ৰত হিচাপে মানি ল'লে। সেই সময়ছোৱাত অলেখ ভক্ত বৈষ্ণৱে গুৰুজনাৰ একশৰণ ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰাৰ লগতে ভক্তিধৰ্ম প্ৰচাৰ প্ৰসাৰতো মনোনিৱেশ কৰিছিল যদিও মাধৱদেৱ আছিল সকলোতকৈ ব্যতিক্ৰম। শংকৰদেৱক লগ পোৱাৰ পিছতেই তেওঁ জোৰোণ পিন্ধাই থোৱা কন্যাক কৌশলেৰে পৰিত্যাগ কৰি বাছি ল'লে চিৰকুমাৰৰ কঠিন পথ আৰু গুৰুজনাতে জীৱনৰ সৰ্বস্ব বিলীন কৰি দিলে। গুৰুৰ অকৃত্ৰিম আশীৰ্বাদ আৰু অনুপ্ৰেৰণাৰে পুষ্ট হৈ তেৱোঁ "সাৰেখানি শক্তি, ভক্তি, বল পৰাক্ৰম'ৰ অধিকাৰী হৈ পৰিল। গুৰুচৰিতত উল্লেখ আছে—

অকপটে যিটো গুৰুসেৱাক কৰয়
গুৰুৰ সমান শক্তি শিষ্যত হোৱয়।
মাধৱে ভজিয়া শংকৰক শুদ্ধভাৱে।
শংকৰ মাধৱ দুইৰো কীৰ্তি লোকে গাৱে।।

অকপট গুৰুসেৱাৰ দ্বাৰাই মাধৱদেৱে জীৱনৰ

ৰাজআলি নির্মাণ কৰিলে। গুৰুৰ আজ্ঞা আছিল তেওঁৰ বাবে শিলৰ ৰেখা। ভক্তিধর্ম প্রচাৰ প্রসাৰৰ আহিলা স্বৰূপে শংকৰদেৱে সাহিত্য সৃষ্টি কৰিছিল আৰু মাধৱদেৱকো সেই কার্যত অগ্রসৰ হ'বলৈ আজ্ঞা প্রদান কৰিছিল। গুৰুচৰিতত উল্লেখ আছে যে, প্রথম অৱস্থাত মাধৱদেৱে সাহিত্য কর্মত হাত দিবলৈ সংকোচবোধ কৰিছিল যদিও গুৰুৰ নির্দেশ মর্মে সেই কর্মত হাত দিয়ে আৰু স্বকীয় প্রতিভাৰ পৰিচয় দি গুৰুৰ প্রশংসাৰ পাত্র হয়। গুৰুচৰিতত এনেদৰে উল্লেখ আছে— **"গুৰুজনে বোলে বৰাপো; জন্ম পুৰাণৰ শ্লোকখানি ৰাজা দিছে ঃ পদ কৰি দিয়া জাকঃ বোলে বাপ কি কৈ কৰিম ঃ বোলে কিয় ঃ আমি দহো কৰো একা ঃ বোলে আপুনি কৰে ঈশ্বৰ শক্তি ঃ বোলে তোমাৰ জানো নহয় ঈশ্বৰ শক্তি ঃ নিয়া পাৰিবা ঃ তেহে গুৰুৱাক্য শিৰে ধৰি আনি কৰিল ঃ গুৰুজনে চাই বোলে ঃ তেওঁ বোলা ঃ মোৰ ঈশ্বৰ শক্তি নাই ঃ আমি বঢ়াবহে পাৰো টুটাব নো�ৱাৰো ঃ তুমি হ্রস্ব-দীর্ঘ সবে পাৰা দহো।"**

মাধৱদেৱে গুৰুজনাৰ আজ্ঞা শিৰোগত কৰি ভক্তিধর্মৰ অনুকূল গ্রন্থৰাজি নিৰৱচ্ছিন্ন গতিৰে লিখি গ'ল; যিসমূহ গ্রন্থই অসমীয়া সমাজক আজীৱন ভক্তি প্রদীপ হৈ পথ দেখুৱাই আহিছে।

তেওঁৰ গ্রন্থৰাজিক ৰচনাৰ গঢ় অনুসৰি চাৰিটা ভাগত ভগাব পাৰি—

(১) **আখ্যানমূলক**, যেনে— আদিকাণ্ড ৰামায়ণ আৰু ৰাজসূয় কাব্য

(২) **তত্ত্বমূলক গ্রন্থ,** যেনে— জন্ম ৰহস্য, নামমালিকা, ভক্তি ৰত্নাৱলী আৰু নামঘোষা

(৩) **নাট,** যেনে— অর্জুন ভঞ্জন, চোৰধৰা, পিম্পৰা গুচোৱা, ভূমি লেটোৱা, ভোজন বিহাৰ, ব্রহ্মামোহন। ইয়াৰোপৰি ৰাসঝুমুৰা, ভূষণ হৰণ আৰু কোটোৱা খেলা আদি নাটকেইখনো তেওঁৰ নামত পোৱা যায় যদিও ইয়াত সন্দেহৰ অৱকাশ আছে।

(৪) **গীত,** যেনে— বৰগীত, ভটিমা।

মাধৱদেৱৰ ৰচনাৰাজি আছিল স্ব-মহিমাৰে মণ্ডিত।

মাধৱ কন্দলিৰ সপ্তকাণ্ড ৰামায়ণৰ আদি আৰু উত্তৰাকাণ্ড লুপ্ত হোৱাৰ কাৰণে শংকৰদেৱৰ আজ্ঞা অনুসৰি মাধৱদেৱে আদিকাণ্ড ৰামায়ণ প্রণয়ন কৰে আৰু শংকৰদেৱে উত্তৰাকাণ্ড প্রণয়ন কৰি ৰামায়ণখন সম্পূর্ণ কৰি তোলে। দুয়োজনা মহাপুৰুষে ৰামায়ণখনৰ মাজে মাজে ভক্তিমূলক কথাৰ আচুফুল দি ৰামায়ণখন বৈষ্ণৱ

আদর্শৰে পৰিপূর্ণ কৰিলে। আদিকাণ্ড ৰামায়ণৰ মূল হ'ল বাল্মিকী ৰামায়ণৰ 'বাল কাণ্ড'। মাধৱদেৱৰ যাদুকৰী হাতৰ স্পর্শত ই নৱৰূপ পৰিগ্রহ কৰিছে। অনুবাদৰ ক্ষেত্রত তেওঁ 'এৰা ধৰা নীতি' গ্রহণ কৰিছিল। মূলৰ ৭৭ টি সর্গক মূলৰ দৰেই বিভাজন নকৰি তেওঁ মুঠ ১৪৯১ টি পদত কাহিনীভাগ সামৰিছে। প্রয়োজন সাপেক্ষে মূলৰ কাহিনীত আঘাত নোহোৱাকৈ সংযোগ, বিয়োগ ঘটাইছে। তেওঁৰ বর্ণনা নিপুনতাই আদিকাণ্ড ৰামায়ণক এক নতুন মাত্রা প্রদান কৰিলে।

মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ ৰুক্মিণীহৰণ, কুৰুক্ষেত্র আদি কাব্যৰ আদর্শৰে মাধৱদেৱেও ৰাজসূয় কাব্য ৰচনা কৰিছিল। এই কাব্য মূলত ভাগৱতৰ দশম স্কন্ধৰ ৭০-৭৫ অধ্যয়ৰ আধাৰত ৰচিত যদিও তেওঁ ইয়াত মহাভাৰতৰ সভাপর্ব আৰু মাঘৰ শিশুপাল বধ কাব্যৰো কিছু সহায় লৈছে। এই কাব্যখনিৰ মূল উদ্দেশ্য হ'ল কৃষ্ণৰ মহিমা ব্যক্ত কৰা। ৰজা যুধিষ্ঠিৰৰ ৰাজসূয় যজ্ঞ সম্পাদনাৰ বাবে কৃষ্ণৰ দ্বাৰা ছলনা কৰি ৰজা জৰাসন্ধৰ নিধন, বন্দী ৰাজসকলক মুক্তি প্রদান, শিশুপাল বধ আৰু ৰজা যুধিষ্ঠিৰৰ অভিষেক সম্পাদন আদিৰ কাহিনী কাব্যখনত বর্ণিত হৈছে। এই কাব্যৰ অনুবাদ কৰোঁতে মাধৱদেৱে ঠাই বিশেষে বিস্তৃত আৰু ঠাই বিশেষে সংক্ষিপ্ত কৰিছে। কৃষ্ণৰ বীৰত্ব, শ্রেষ্ঠত্ব, ভক্তিৰ দৃঢ়তা আৰু শ্রেষ্ঠত্ব আদি একশৰণৰ প্রতিপাদ্য বিষয়ৰ প্রতি জনসাধাৰণৰ মন আকর্ষিত কৰাতহে তেওঁ গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে। 'ৰাজসূয়' কাব্যত কৃষ্ণকেই একমাত্র ভজনীয় দেৱতাৰূপে কৃষ্ণৰ শ্রেষ্ঠত্ব প্রতিপাদন আৰু ভক্তিৰ মহিমাকে প্রতিষ্ঠিত কৰিছে যদিও কাব্যৰসিক মাধৱদেৱে শান্ত, বীৰ, ৰৌদ্র আৰু ভয়ানক আদি ৰসৰো সঞ্চাৰ ঘটাইছে।

মাধৱদেৱৰ বৰগীতসমূহ অসমীয়া গীতিসাহিত্যৰ এক অমূল্য সম্পদ। মহাপুৰুষ গুৰুজনাৰ আদেশ শিৰোধার্য্য কৰি মাধৱদেৱে বৰগীত ৰচনা কৰিছিল। গুৰুজনাৰ দ্বাৰা ৰচিত বৰগীতসমূহ বৰপেটাৰ কমলা বায়নে আওৰাবলৈ নি লগত ৰখাত বনপোৰা জুয়ে পুৰি বিনষ্ট কৰাত গুৰুজনে খেদ কৰি 'গীত আৰু নকৰোঁ' বুলি মাধৱদেৱক গীত ৰচিবলৈ ক'লে।

আধ্যাত্মিকভাৱেৰে পুষ্ট বৰগীতৰ বিষয়বস্তু কৃষ্ণ বা ৰামচন্দ্রৰ লীলা প্রধান। বৰগীতসমূহত কোনো লৌকিক বিষয় বা তৰল বিষয়ৰ স্থান নাই। শৃংগাৰ ৰসৰ পৰা সম্পূর্ণ মুক্ত বৰগীতসমূহক ভাৰতীয় ধ্রুপদী সংগীতৰ লগতহে তুলনা কৰিব পাৰি। মাধৱদেৱৰ গীতসমূহৰ প্রধান ৰস হ'ল বাৎসল্য। পৰমার্থ, বিৰহ, বিৰক্তিৰ গীত ৰচনা কৰিছে যদিও মাধৱদেৱৰ অধিকখিনি বৰগীততে শিশু কৃষ্ণৰ চল, চাতুৰি যশোদাৰ অকৃত্রিম পুত্রস্নেহ আদিৰ চিত্র নিখুঁটভাৱে ফুটি উঠিছে। নির্দিষ্ট ৰাগ, তালে গীতসমূহ অধিক মনোগ্রাহী কৰি তুলিছে।

বৰগীতৰ দৰে ভটিমাসমূহো মহাপুৰুষ দুজনাৰ অনুপম সৃষ্টি। শংকৰদেৱতকৈ মাধৱদেৱৰ ভটিমাৰ সংখ্যা তাকৰ। শংকৰদেৱৰ নাটসমূহত একাধিক ভটিমা প্রয়োগ কৰা দেখা যায়। কিন্তু মাধৱদেৱে কেৱল 'ভোজন বিহাৰ' ঝুমু�ৰাৰ আদিতে এটি ভটিমা ব্যৱহাৰ কৰিছে। এই ভটিমাটিৰ বাহিৰে বাকীবোৰ ভটিমাক একোটি গাইগুটীয়া গীতহে বুলিব পাৰি। মাধৱদেৱৰ সবাতোকৈ উত্তম আৰু উল্লেখযোগ্য ভটিমাটি হ'ল গুৰুজনাৰ মহিমাৰে মণ্ডিত গুৰুভক্তিৰ প্রকৃষ্ট নিদর্শন স্বৰূপ গুৰু-ভটিমাটি।

মাধৱদেৱৰ বাবে শংকৰদেৱেই আছিল তেওঁৰ ইহকাল, পৰকালৰৰ গুৰু, যি ভগৱানৰ সমানেই ভজনীয়। এই ভটিমাটিত গুৰুভক্তিৰ চূড়ান্ত প্রকাশ ঘটিছে। শংকৰদেৱৰ প্রতিভা, পাণ্ডিত্য, যশ, গুণ, দৈহিক সৌন্দর্য্য আৰু গৌৰৱৰ বিচিত্র ছবি গুৰুভটিমাটিত প্রকাশ পাইছে।

ঝুমুৰাসমূহ মাধৱদেৱৰ একক আৰু অনন্য সৃষ্টি। ভক্তিধর্ম প্রচাৰ আৰু প্রসাৰৰ উদ্দেশ্যেই শংকৰদেৱৰ আর্হিতে তেওঁ সমস্ত সাহিত্য কর্ম গঢ় দিছিল যদিও তেওঁৰ নাটকসমূহত গুৰুজনাৰ নাটকতকৈ পৃথক শৈলী ব্যৱহাৰ কৰা দেখা যায়। মাধৱদেৱৰ নাটসমূহ হ'ল— অর্জুন ভঞ্জন, চো�ৰধৰা, পিম্পৰা গুচোৱা, ভূমি লেটোৱা, ভোজন বিহাৰ আৰু ব্রহ্মামোহন। অর্জুন ভঞ্জনখনিহে শংকৰদেৱৰ আর্হিত লিখা পূর্ণাঙ্গ নাট। বাকীকেইখন নাটক ঝুমুৰা আখ্যা দিয়া হৈছে। একোটি সামান্য পৰিস্থিতি লৈ নাটকৰ কাহিনীভাগ সজোৱা হৈছে। তেওঁ নাটসমূহত প্রস্তাৱনা, প্রৱেশ শ্লোক, পয়াৰ আৰু মুক্তিমংগল ভটিমা নাই। ভোজন বিহাৰ নাটতহে মাথোন এটি ভটিমা দিয়া হৈছে। তেওঁৰ নাটসমূহত বিল্ব মংগলৰ স্তোত্রৰ প্রভাৱ দেখা যায়। ঝুমুৰাসমূহ বাৎসল্য ৰস প্রধান। ঝুমুৰাসমূহত শিশু কৃষ্ণৰ দুমুখীয়া ব্যক্তিত্ব প্রকাশ পাইছে। মানৱ শিশুৰ চল-চাতুৰি, দুষ্টালিৰে

গোপ-গোপী আৰু মাতৃ-যশোদাৰ মন-প্ৰাণ জুৰ পেলাই ৰখা ব্ৰজবাসীৰ প্ৰাণ স্পন্দন স্বৰূপ কৃষ্ণৰ ঐশ্বৰিক মহিমাৰ কথা মাধৱদেৱে কৌশলপূৰ্ণভাৱে দাঙি ধৰিছে। হিন্দী বৈষ্ণৱ কবি সুৰদাসৰ দৰে মাধৱদেৱৰ ৰচনাতো যশোদা আৰু কৃষ্ণৰ মাতৃ-পুত্ৰৰ মাজৰ অপত্য স্নেহ, মান, অভিমান আদিৰ সুন্দৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। মাধৱদেৱৰ ঝুমুৰাসমূহ স্বমহিমাৰে শোভিত আৰু মণ্ডিত।

মাধৱদেৱ কৃত চাৰিখন তত্ত্বমূলক গ্ৰন্থৰ ভিতৰত 'ভক্তি-ৰত্নাৱলী' আৰু 'নামঘোষা'কেই বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ চাৰি পুথিৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে। ভক্তি ধৰ্মৰ গুৰু, দেৱ, নাম আৰু ভকত এই চাৰি মূল তত্ত্ব দুজনা গুৰুৰ চাৰি গ্ৰন্থত প্ৰতিভাত হৈছে। 'দশম'ত দেৱতত্ত্ব, 'কীৰ্তন'ত গুৰুতত্ত্ব, 'ভক্তিৰত্নাৱলী'ত ভকত আৰু 'নামঘোষা'ত নামতত্ত্বৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। এই চাৰিখন গ্ৰন্থ দুয়োজনা মহাপুৰুষৰ মূৰ্ত্তিৰ লগত তুলনা কৰা হয়। গুৰুচৰিতত উল্লেখ আছে যে, যিদিনা গণককুছিত মাধৱদেৱৰ ওপৰত ধৰ্মৰাজ্যৰ ভাৰ অৰ্পণ কৰিছিল, সেইদিনা বৰ আতুৰ হৈ মাধৱদেৱপুৰুষে গুৰুজনাক সুধিছিল "বাপ কৃপালু গুৰু, তোমাৰাসৰ শ্ৰীশংকৰ সূৰ্য্য থাকোঁতেও পৃথিৱী পোহৰ কৰা টান, তোমাৰাসৰ অবিহনে আমি এই ধৰ্মৰাজ্য কেনেকৈ পোহৰাম।" তেতিয়া গুৰুজনাই আশ্বাস দি মাধৱদেৱক কৈছিল - 'চিন্তা নকৰিবা, আমিও থাকিম'। বাপ ক'ত থকা হ'ব? তেতিয়া শংকৰদেৱে উত্তৰ দিছিল।

শুনিও মাধৱ মোৰ থাকিবাৰ মন।
কীৰ্তন দশম মোৰ মূৰ্ত্তিৰ সমান।।
নিপুণে মোহোক গুৰু যিজনে বোলয়।
কীৰ্তনতে দশমতে দেখিব নিশ্চয়।।

শংকৰদেৱে পুনৰ ক'লে - 'কেৱল আমি থাকিলেই নহ'ব তুমিও থাকিব লাগিব। মাধৱদেৱে সুধিলে - 'পিছে বাপ, আমি ক'ত থকা হ'ব?

'ঘোষা নামে শাস্ত্ৰ খনি তুমিও লিখিবা।
ৰত্নাৱলী ঘোষা মধ্যে তুমিও থাকিবা।।

কীৰ্তন-দশম শ্ৰীমন্ত শংকৰ গুৰুৰ মূৰ্ত্তি স্বৰূপ, ঘোষা-ৰত্নাৱলী শ্ৰীমাধৱপুৰুষৰ মূৰ্ত্তি স্বৰূপ। ভাগৱতৰ চাৰিতত্ত্ব এই চাৰি পুথিয়ে বহন কৰিছে।

বিষ্ণুপুৰী পৰম হংসদেৱৰ 'কান্তিমালা টীকা'ৰ আধাৰত গুৰুৱাক্য শিৰোধাৰ্য্য কৰি মাধৱদেৱে 'ভক্তিৰত্নাৱলী' গ্ৰন্থ প্ৰণয়ন কৰিছিল। গুৰুজনাই বেহাৰলৈ যোৱাৰ আগতে 'ভক্তিৰত্নাৱলী'খন ৰচনা কৰিছিল যদিও নামঘোষা ৰচনাৰ কামত তেতিয়াও হাত দিয়া নাছিল। আগতে শংকৰদেৱে তেওঁৰ প্ৰাণসম শিষ্য মাধৱদেৱক 'নামঘোষা'ৰ বিষয়বস্তুৰ সম্পৰ্কে এক সংকেত দিছিল।

শংকৰদেৱৰ মহাপ্ৰয়াণৰ পিছত মাধৱদেৱে 'নামঘোষা' লিখাৰ কামত হাত দিয়ে। গুৰুজনাৰ অনুপস্থিতিত মাধৱদেৱৰ জীৱন একপ্ৰকাৰ দিশহাৰা হৈ পৰিছিল। গুৰুজনাৰ অনাথ পৰিয়ালটিৰ দায়িত্বৰ লগতে গুৰুৰ স্মৃতিয়ে মাধৱদেৱক দগ্ধ কৰি তুলিছিল। এই সময়খিনি মাধৱদেৱৰ জীৱনৰ আটাইতকৈ দুঃসময় আছিল। মাধৱদেৱৰ প্ৰতি এচাম লোক ঈৰ্ষান্বিত হৈ পৰাৰ ফলত তেওঁ ধৰ্মপ্ৰচাৰৰ কামত স্থৱিৰ হৈ পৰিছিল। এই সময়ত গুৰুজনাৰ আন এজন একান্ত সেৱক শ্ৰীনাৰায়ণ দাস ঠাকুৰ আতাই জনিয়া থানৰ পৰা সুন্দৰীদিয়ালৈ গৈ মাধৱদেৱক যথেষ্ট প্ৰবোধ বাণী শুনালে। ঠাকুৰ আতাৰ প্ৰবোধ বাণী শুনি মাধৱদেৱে পুনৰ ভক্তিধৰ্ম প্ৰচাৰ কৰিবৰ বাবে দৃঢ় সংকল্প গ্ৰহণ কৰিলে আৰু প্ৰথম কাম হিচাপে 'নামঘোষা' গ্ৰন্থ সংকলনৰ কামত হাত দিলে। এই শাস্ত্ৰ সংকলনত প্ৰায় চৈধ্য বছৰ ছমাহ কাল লাগিল। এই 'নামঘোষা'ৰ এহেজাৰ এটা ঘোষাৰ প্ৰায় চাৰিশ, পাঁচশ মান ঘোষা একশৰণ হৰিনাম ধৰ্মৰ সমৰ্থনত ভাৰতবৰ্ষৰ সংস্কৃত গ্ৰন্থসমূহত বিচাৰি পোৱা প্ৰায়বোৰ শ্লোক সংগ্ৰহ কৰি তাৰ ভাবাৰ্থৰ আধাৰত প্ৰণয়ন কৰিছে। নামঘোষা তেওঁ জীৱনজোৰা সাধনাৰ ফলশ্ৰুতি বুলি ক'ব পাৰি। তেওঁ তিনিটা ধাৰাৰে ঘোষাসমূহ লিপিৰদ্ধ কৰিছে—

গুৰুসেৱা কৰি মই যিবা সত্য পালোঁ।
সমস্তকে আনি ঘোষা শাস্ত্ৰত লিখিলোঁ।।
শাস্ত্ৰ বিচাৰিয়া মই যিবা তত্ত্ব পালোঁ।
সমস্তকে আনি ঘোষা শাস্ত্ৰত লিখিলোঁ।।
হৃদিশ্বৰ উপদেশে যিবা সত্য পাইলোঁ।
সমস্তকে আনি ঘোষা শাস্ত্ৰে নিবন্ধিলোঁ।।
পৃথিৱীত ধৰ্ম শাস্ত্ৰ আছে যত যত।
সমস্তৰে সাৰ আছে ঘোষাৰ মধ্যত।।

একান্ত গুৰুসেৱা, শাস্ত্ৰমন্থন আৰু অবিৰত কৃষ্ণভক্তি এই তিনিটা ধাৰাৰে 'নামঘোষা'ৰ এহেজাৰ এটা ঘোষা মণ্ডিত হৈ আছে। চিৰকুমাৰ মাধৱদেৱক দাস্য ভাক্তিৰ

মূর্তিমান স্বৰূপ বুলিব পাৰি। তেওঁ সমগ্ৰ ৰচনাৰ মাজতেই দাস্যভাৱ প্ৰকট হৈ উঠা দেখা যায়। বিশেষকৈ নামঘোষাৰ পাতে পাতে 'আত্মলঘিমা'ৰ ভাৱ পৰিস্ফুট হৈ উঠিছে। জীৱনৰ শেষৰ ফালে ৰচনা কৰা 'নামঘোষা' গ্ৰন্থক ড° বাণীকান্ত কাকতিদেৱে 'পৰমানন্দ সাগৰত উটি যোৱা মাধৱদেৱৰ মহাপ্ৰস্থানিক গীত বুলি অভিহিত কৰিছে।

"হে হৰি মোক দুৰাচাৰ বুলি নকৰিবা পৰিহাৰ, তুমি বিনে মহা পতিতপাৱন কোন দেৱ আছে আৰ!" বুলি যেতিয়া কোনো পাঠকে নামঘোষাৰ পদ আওঁৰাই তেতিয়া শ্ৰীকৃষ্ণৰ চৰণত কাতৰভাৱে আত্মনিৱেদন কৰা মাধৱদেৱৰ ভক্তি বিগলিত কাৰুণ্যভৰা ছবি এখন সেই পাঠক আৰু শ্ৰোতাৰ মনত দোলা দি যায়।

'নামঘোষা' অসমীয়া মানুহৰ হৃদয়ত সংস্থাপিত হৈ থকা এখন অমূল্য গ্ৰন্থ। মাধৱদেৱৰ বাকীবোৰ গ্ৰন্থক একাষৰীয়া কৰি ৰাখিও এটা কথা দৃঢ়তাৰে ক'ব পাৰি যে অকল 'নামঘোষা'ই মাধৱদেৱক যুগ যুগলৈ অমৰত্ব প্ৰদান কৰিব।

মাধৱদেৱৰ জীৱনৰ আন এক যুগমীয়া কীৰ্তি হ'ল মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ 'কীৰ্তন-পুথি'খনি ভাগিনিয়েক ৰামচৰণ ঠাকুৰৰ দ্বাৰা একত্ৰে সংগ্ৰহ কৰি সংকলিত কৰাটো। 'কীৰ্তন'ৰ খণ্ডসমূহ মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে বিভিন্ন স্থানত, বিভিন্ন সময়ত লিখিবলগীয়া হোৱাৰ কাৰণে খণ্ডবোৰ সিঁচৰিত হৈ আছিল। মাধৱদেৱৰ আজ্ঞাত ৰামচৰণ ঠাকুৰে অলেখ কষ্ট কৰি আটাইবোৰ খণ্ড গোটাই আনি একত্ৰে সংকলিত কৰিলে।

মাধৱদেৱৰ ওপৰত অৰ্পণ কৰা ধৰ্মাচাৰ্যৰ গুৰুভাৰ তেওঁ অতি নিষ্ঠা সহকাৰে পালন কৰিছিল। গুৰুজনাৰ মহাপ্ৰয়ানৰ পাছত মাধৱদেৱৰ প্ৰতি ঈৰ্ষান্বিত হৈ বহুলোকে তেওঁৰ বিৰুদ্ধাচৰণ কৰি আঁতৰি গৈছিল। দামোদৰদেৱেও গুৰুজনাৰ আদৰ্শৰ পৰা ফালৰি কাটি গৈ নিজা সত্ৰ পাতি বহুলোকক তেওঁৰ ফলীয়া কৰিলে। এনে সন্ধিক্ষণত মাধৱদেৱে নাৰায়ণ দাস ঠাকুৰ আতাৰ লগত সমাজখন সংগঠিত কৰি ৰাখিবৰ কাৰণে এক অভিনৱ কৌশল অৱলম্বন কৰিলে। মহাপুৰুষ গুৰুজনাই মাধৱদেৱক বৰঘৰ সাজি নটুৱা নচুৱাবলৈ বাধা কৰি গৈছিল। যদিও তেওঁ মহাপুৰুষীয়া সমাজখনক সংগঠিত কৰি ৰাখিবৰ কাৰণে এটি আটকধুনীয়া 'হৰি মন্দিৰ' নিৰ্মাণ কৰিলে। হেঙুল, হাইতাল, বালিচন্দাৰ বুলনিত অতি মনোৰমকৈ সজাই তোলা গৃহটিক 'ৰঙিয়াল ঘৰ' বা 'নটুৱা ঘৰ' বোলা হৈছিল। এই ৰঙিয়াল গৃহতে অনুষ্ঠিত হৈছিল ঝুমুৰা আৰু নটুৱা নাচ। এনে সংস্কৃতিবান কাৰ্যই অলেখ লোকক আকৰ্ষিত কৰিছিল আৰু সকলোৱে বিস্ময় আনন্দত অভিভূত হৈ মাধৱদেৱৰ কায চাপিছিল। সেই সময়ছোৱাত মাধৱদেৱে অসংখ্য গীত, পদ ৰচনা কৰাৰ লগতে ভক্তসকলৰ মাজৰ পৰা প্ৰতিভাসম্পন্ন লোকসকলক অনুপ্ৰাণিত কৰি নাট, গীত আদি সৃষ্টি কৰাৰ লগতে সাংগঠনিক কাৰ্যতো নিয়োগ কৰিছিল। মাধৱদেৱে বাৰ জন নিষ্ঠাবান কৰ্মী আৰু উপযুক্ত শিষ্যক বিভিন্ন ঠাইত সত্ৰ পাতি ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ ভাৰ অৰ্পণ কৰিছিল যদিও তেওঁলোকৰ মাজত গুৰুৰ আজ্ঞা ল'ব পৰা কোনো এজন ব্যক্তি বাছি উলিওৱাটো তেওঁৰ পক্ষে কঠিন হৈ পৰিছিল। তেওঁৰ অনুগতসকলৰ প্ৰায় কেইজনে আছিল সমপৰ্যায়ৰ। সেয়ে তেওঁ আধ্যাত্মিক জীৱনৰ সমস্ত অভিজ্ঞতাৰেই ৰচনা কৰা ভক্তিধৰ্মৰ সকলো শিক্ষা তথা উপদেশ সম্বলিত 'নামঘোষা' শাস্ত্ৰখনকে ভক্তসমাজলৈ তেওঁৰ প্ৰতিনিধি হিচাপে অৰ্পণ কৰিলে।

মাধৱদেৱে সত্ৰ প্ৰতিষ্ঠা কৰাই নহয়, সত্ৰৰ ভকতসকলে পালিবলগীয়া ধৰ্মীয় আচাৰ-নীতিসমূহক কেইটামান ৰীতিত বিভাজিত কৰি দিছিল। যাতে পৰৱৰ্তী সময়ত ভক্তসমাজত কোনো আওল নালাগে। তদুপৰি সুন্দৰীদিয়াত থকা কালছোৱাত মাধৱদেৱে বৰপেটাৰ কীৰ্তনঘৰত গুৰু আসন প্ৰতিষ্ঠা, চৈধ্য প্ৰসংগৰ আৰ্হি আৰু ভকতৰ বহা শাৰীও নিৰ্ধাৰিত কৰি থৈ যায়।

গুৰুৰ মধুৰ স্মৃতি হৃদয়ত, গুৰুৰ আজ্ঞা শিৰত আৰু একান্ত কৃষ্ণ ভক্তিৰে টৌত মাধৱদেৱে গুৰুজনে প্ৰতিষ্ঠা কৰি থৈ যোৱা ভক্তিবাদী সমাজখন অক্ষুন্ন ৰাখিবৰ বাবে অহোপুৰুষাৰ্থ কৰিছিল। গুৰুজনৰ দৰেই তেওঁৰো আদৰ্শ আছিল "ব্ৰাহ্মণ চণ্ডালৰ নিবিচাৰি কুল। দাতাত চোৰত যাৰ দৃষ্টি একতুল।।" সেয়ে তেওঁ কৈছিল— 'পৰম নিৰ্মল ধৰ্ম হৰি নাম কীৰ্তনত সমস্ত প্ৰাণীৰ অধিকাৰ।

সমাজৰ সকলো স্তৰৰ, সকলো বৰ্ণৰ মানুহৰ বাবে তেওঁ ভগবৎ ভক্তিৰ দ্বাৰ মুকলি কৰি দিছিল। ভগৱান কৃষ্ণক যাগ-যজ্ঞ, বলি-বিধান একোকে নালাগে। লাগে

মাথোন একান্ত ভক্তি। মাধৱদেৱে এই নির্মল ভক্তি প্রচাৰ প্রসাৰতেই সমগ্র জীৱন উচর্গা কৰিলে।

'মুক্তিত নৃঃস্পৃহ' সংসাৰ ত্যাগী ভক্ত মাধৱদেৱৰ সমগ্র জীৱনেই আছিল এখন মহাকাব্যৰ দৰে। আজন্ম কবি, সংগীতজ্ঞ, নাট্যকাৰ, সুকণ্ঠী গায়ক, নর্টক, সুদক্ষ অভিনেতা, সু-সংগঠক, মহাপণ্ডিত শাস্ত্র বিশাৰদ মাধৱদেৱৰ জীৱনজোৰা, শ্রম, সাধনা আৰু ত্যাগৰ আদর্শই অসম আৰু অসমীয়া জাতিক যুগ-যুগান্তৰলৈ পথ দেখুৱাই যাব। তেওঁ অসমৰ সমাজ জীৱনলৈ যি অতুলনীয় অৱদান আগবঢ়ালে; তাৰ বাবে অসমীয়া জাতি তেওঁৰ ওচৰত চিৰঋণী হৈ ৰ'ব।

উপসংহাৰ ঃ

আলোচনা পত্রখনিত অতি সীমিত পৰিসৰত অসমৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক ক্ষেত্রখনলৈ মাধৱদেৱৰ অৱদানসমূহৰ এটি চমু আভাস দিয়াৰ প্রয়াসহে কৰা হৈছে। অসমীয়া সমাজেইনহয় সমগ্র মানৱজাতিৰ বাবে এনে এটা মহাকাব্যিক জীৱন বন্দনীয় আৰু অনুকৰণীয়। শংকৰদেৱৰ পদাংক অনুকৰণ আৰু অনুসৰণ কৰি জীৱন পথত আগবাঢ়ি যোৱা মাধৱদেৱৰ অৱদান আছিল চিৰস্মৰণীয়। দুয়োজনাৰ মিলনৰ পিছতহে ভক্তিধর্ম আন্দোলনে এক নতুন আৰু শক্তিশালী মাত্রা লাভ কৰিছিল। উল্লেখযোগ্য কথা যে বিশ্বত একেলগে এটা জাতিৰ দুজন মহাপুৰুষ বা দুজনা গুৰু থকাটো অতি বিৰল। এই ক্ষেত্রত অসমীয়া জাতিৰ সৌভাগ্য যে এই জাতিৰ ভাগ্যাকাশত দুজন মহাপুৰুষ একেলগে আবির্ভাৱ হৈছিল। শংকৰদেৱৰ হাজাৰ বিজাৰ অনুগামী শিষ্যৰ মাজত এগৰাকী এনেকুৱা শিষ্য আৱিস্কাৰ হৈছিল যিগৰাকী শিষ্যই নিজৰ কর্তব্যনিষ্ঠা, ত্যাগ, বিশ্বাস, শক্তি আৰু একান্ত গুৰুভক্তিৰ দ্বাৰা গুৰুৰ সমমর্যাদা লাভ কৰিছিল। তেওঁৰ বাবে ভোগ-বিলাস, সুখ-সম্ভোগ আছিল একেবাৰে তুচ্ছ। জগতৰ কল্যাণৰ বাবে উৎসর্গিত এনে এটা মহাজীৱনৰ বিষয়ে সীমিত সময় আৰু সীমিত পৰিসৰত আলোচনা কৰাটো দুৰুহেই নহয় দুঃসাধ্যও। এই আলোচনা পত্রত মাধৱদেৱৰ কর্মৰাজিৰ বিষয়ে এটি থুলমুল আভাসহে দিয়া হৈছে। শংকৰদেৱৰ দৰেই মাধৱদেৱৰ বিষয়ে গৱেষণা কৰাৰ বিস্তৰ থল আছে। ❑

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী ঃ

১। চলিহা, ভৱপ্রসাদ (সম্পা.) ঃ মাধৱদেৱৰ সাহিত্য; দ্বিতীয় প্রকাশ, ২০২০, শ্রীমন্ত শংকৰদেৱ সংঘ (সর্বস্বত্ব সংৰক্ষিত)।

২। ডেকা হাজৰিকা, কৰবী ঃ মাধৱদেৱ ঃ সাহিত্য, কলা আৰু দর্শন, দ্বিতীয় প্রকাশ, ১৯৯১, ডিব্রুগড়, বনলতা প্রকাশন, শাখা পাণবজাৰ, গুৱাহাটী।

৩। দত্তবৰুৱা, হৰিনাৰায়ণ (সম্পা.) ঃ গুৰুচৰিত (ৰামচৰণ ঠাকুৰ বিৰচিত), ২৪ শ প্রকাশ, ২০১৫, প্রকাশক ঃ শ্রীজ্যোতিন্দ্র নাৰায়ণ দত্তবৰুৱা।

৪। দাস, ইলাৰাম ঃ নাম-ঘোষা ৰসামৃত, তৃতীয় প্রকাশ, ২০১৪, লয়ার্ছ বুক ষ্টল (সর্বস্বত্ব সংৰক্ষিত)।

৫। শাসমল, সুভাষচন্দ্র ঃ জাতীয় জীৱনৰ প্রেক্ষাপটত নামঘোষা। প্রথম প্রকাশ, ১৯৯২, প্রকাশক ঃ শ্রীকালীপ্রসাদ শর্মা, কোকৰাঝাৰ।

প্রবন্ধ

ধর্মশাস্ত্রৰ দৃষ্টিৰে নাৰীৰ সুৰক্ষা

(অসমৰ প্ৰেক্ষাপটত এক বিশ্লেষণ)

ড° বিভূতি লোচন শর্মা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
বড়োলেণ্ড বিশ্ববিদ্যালয়
বি. টি. আৰ, কোকৰাঝাৰ, অসম
ভ্ৰাম্যভাষঃ 9435364570
Email-bls.nalbari@gmail.com

প্রস্তাৱনা ঃ

বর্তমান বিশ্বৰ সমাজবিজ্ঞানী সকলৰ চিন্তাক আলোঞ্জতি কৰা বিষয়বিলাকৰ অন্যতম বিষয় হিচাপে চিহ্নিত হোৱা বিষয়টো যে নাৰীৰ সুৰক্ষা বিষয়ক সেইটো অনস্বীকার্য। নাৰীবিষয়ক অপৰাধৰ পৰিবর্ধনৰ বিষয়টোৱে পৃথিৱীৰ সকলো সচেতন ব্যক্তিক চিন্তান্বিত কৰি তুলিছে।

প্রতিবছৰৰ মার্চ মাহৰ আঠ তাৰিখে উদ্যাপিত হোৱা বিশ্ব-নাৰীদিৱসত নাৰীসৱলীকৰণৰ বিষয়টোৱে অত্যধিক চর্চিত হোৱাৰ সময়তে অনেকৰ অন্তৰত সৃষ্টি হয় দুটা প্রশ্ন "নাৰীসকল দুর্বল নেকি ? নাইবা পুৰুষতান্ত্রিক সমাজব্যৱস্থাৰ কুঠাৰাঘাতেৰে নাৰীশক্তি মর্দিত হৈছে নেকি ?

সমগ্র বিশ্বৰ পৰিবর্ধিত নাৰীবিষয়ক অপৰাধৰ ৩০%)[১] পৰিসংখ্যাত ভাৰতৰ স্থিতি লক্ষণীয় NCRB (National Crime Record Bureau, Govt. of India)ৰ সমীক্ষা অনুসৰি ২০২০ চনত সমগ্র ভাৰতবর্ষৰ ৩,৭১,৫০৩ টা[২] পঞ্জীভুক্ত নাৰীজনিত অপৰাধৰ ৪৩১৯৬ টাই[৩] ধর্ষণৰ অভিযোগ। তাৎপর্যপূর্ণ ভাৱে এই অভিযোগৰ আৰোপ পত্র (Charge Sheet) ৰ সংখ্যা ২৩৬৯৩(৮২.২), ৩৮১৪ সংখ্যক বিচাৰৰহে নিস্পত্তি ৩৯.৩ হৈছে।[৩]

সর্বভাৰতীয় প্রেক্ষাপটত অসমৰ স্থানো চিন্তাজনক। কোভিদ কালিন পৰিস্থিতিতো ২০২০ বর্ষত অকল ধর্ষণৰ গোচৰৰ সংখ্যাই হৈছে ১৬৫৭টা।[৫] ২০২০ চনত এই সংখ্যা সর্বভাৰতীয় পৰিসংখ্যাত ৫ম।[৬] মানৱীয় চিন্তাক ভ্রূকুটি কৰা এনেবোৰ পৰিসংখ্যাই অপৰাধিৰ সাহসক স্তিমিত কৰাৰ বিপৰীতে অপৰাধৰ প্রবণতাক উৎসাহিত কৰিব বুলি শঙ্কা হোৱাটো স্বাভাবিক। অপৰাধৰ বিপৰীতে শাস্তি নাইবা বর্তমান শিক্ষাব্যৱস্থাৰ পৰিবর্তনেও ৰোধ কৰিব নোৱাৰা এই জটিল পৰিস্থিতিয়ে সমগ্র বিশ্বক ত্রাসিত কৰিছে।

যিখন প্রাচীন অসমত শক্তিৰ অধিস্থাতৃ দেৱীৰ অর্চনাৰ পৰম্পৰা অছে সেইখন অসমত নাৰীসুক্ষাৰ বিষয়টো চর্চাৰ বিষয় হোৱাটো উদ্বেগজনক। নাৰীজনিত অপৰাধৰ প্রসংঙ্গত শাস্ত্রোক্ত দণ্ডব্যৱস্থাই প্রাচীন ভাৰতবর্ষৰ অপৰাধ নিয়ন্ত্রণৰ ক্ষেত্রত বিশেষ ভূমিকা গ্রহণ কৰিছিল। প্রাচীন কালৰ ধর্মশাস্ত্রসমূহে

অপৰাধ অনুসৰি উপযুক্ত দণ্ড বা শাস্তিৰ বিধানেৰে অপৰাধীৰ অপৰাধক নিয়ন্ত্রণ কৰি এখন সুস্থ সমাজৰ পৰিকল্পনা কৰিছিল। সেয়ে দণ্ডৰ প্রসংগত মনুসংহিতাত কোৱা হৈছিল যে "দণ্ড (বিচাৰ)ৰ দ্বাৰা হে সকলো লোক নিয়ন্ত্রণত থাকে, কিয়নো নিস্কপট লোক পোৱাটো অতিশয় দুর্লভ"[৭]।

অতীতৰ ভাৰতবর্ষৰ অপৰাধ নিয়ন্ত্রণৰ বাবে কৰা ব্যৱস্থাৱলীৰ অধ্যয়নে স্ত্রীসুৰক্ষাৰ বিষয়ত নতুন পথৰ সন্ধান দিব বুলি আশা কৰিব পাৰি। স্ত্রীসুৰক্ষাৰ বিষয়ত ধর্মশাস্ত্র নাইবা স্মৃতিশাস্ত্র সমূহত কোৱা উপায়বোৰৰ প্রাসঙ্গিকতা বর্তমান কালতো লোপ পোৱা নাই। বিশেষভাৱে মনুসংহিতা, শুক্রনীতিসাৰ, অর্থশাস্ত্র জাজ্ঞবল্ক্যস্মৃতি, পদ্মপুৰাণ, শ্রীমদ্ভগৱদগীতা আদি শাস্ত্রত কথিত নাৰীসুৰক্ষাবিষয়ক কথাবোৰ সাম্প্রতিক কালতো প্রাসংঙ্গিক হৈ পৰিছে।

আমাৰ আলোচনাত ওপৰোক্ত শাস্ত্রসমূহত নিহিত নাৰীসুৰক্ষাবিষয়ক উপায়সমূহৰ দৃষ্টিকোণেৰে নাৰীসকলৰ সুৰক্ষাবিষয়ক প্রমুখ সমস্যাসমূহৰ সমাধানৰ উপায়বোৰৰ বিশ্লেষণ কৰা হ'ব শ্র প্রসঙ্গক্রমে অন্য ধর্মশাস্ত্র, অর্থশাস্ত্র, তথা প্রাচীন আৰু নৱীন গ্রন্থসমূহত প্রাপ্ত উপযোগী তথ্যসমূহৰ বিশ্লেষণেৰে অসমৰ নাৰীসকলৰ অতীত অৰু বর্তমানৰ স্থিতিৰ বিষয়সমূহৰ মন্থনেৰে নাৰীসকলৰ সমস্যাসমূহৰ সমাধানৰ উপায়সমূহ অন্বেষণ কৰা হ'ব।

নাৰীবিষয়ক অপৰাধত বিশ্বীয় স্থিতি ঃ

অতি আত্মীয় বন্ধু নাইবা অন্য কোনো ব্যক্তিৰ দ্বাৰা শাৰিৰীক নাইবা যৌনবিষয়ক উৎপীঞ্জণৰ অভিজ্ঞতা বিশ্বৰ তিনিগৰাকী নাৰীৰ ভিতৰত এগৰাকীৰ (৩০%) থকা বুলি বিশ্ব স্বাস্থঞ্জযসংস্থাৰ অভিমত। একেদৰে অতি আত্মীয় বন্ধুৰ দ্বাৰা শাৰিৰীক নাইবা যৌনভাৱে বিশ্বৰ প্রায় এক তৃতীয়াংশ মহিলা উৎপীড়িতা হয়। বিশ্বৰ হত্যা হোৱা নাৰীৰ ৩৮% নাৰীয়েই অতি আত্মীয় পুৰুষ বন্ধুৱে হত্যা কৰে। এই বিস্ফোৰক অভিমতবোৰো বিশ্ব স্বাস্থ্যসংস্থাৰ।[৮]

আমেৰিকা যুক্তৰাষ্ট্রৰ নাৰীবিষয়ক অপৰাধৰ স্থিতি ঃ

প্রগতিৰ শিখৰত থকা আমেৰিকা যুক্তৰাষ্ট্রত সংঘটিত নাৰীবিষয়ক অপৰাধৰ তথ্যবোৰে যুক্তৰাষ্ট্রখনৰ আভ্যন্তৰীণ কদর্য ৰূপটোক উন্মোচিত কৰে। তাত প্রতি পাঁচগৰাকী মহিলাৰ এগৰাকী মহিলা ধর্ষণৰ বলী হয়, আনহাতে প্রতি তিনিগৰাকী মহিলাৰ এগৰাকী যৌন উৎপীড়ণৰ অভিজ্ঞতা থকা মহিলা। ধর্ষিতা মহিলা সকলৰ ভিতৰত অতি আত্মীয় পুৰুষ বন্ধুৰ দ্বাৰা ৫১.১ শতাংশ মহিলাই আৰু কোনো পৰিচিতৰ দ্বাৰা ৪০.৮ শতাংশ মহিলাই ধর্ষিতা হোৱা বুলি অভিযোগ কৰে। ৯১ শতাংশ মহিলাই ধর্ষণ আৰু উৎপীড়ণৰ স্বীকাৰ হয় আমেৰিকা যুক্তৰাষ্ট্রত।[৯]

নাৰীবিষয়ক অপৰাধত অসম প্রদেশৰ স্থিতি ঃ

অসমত ২০১৬ চনৰ পৰা ২০১৮ চনৰ জনুৱাৰী মাহলৈ ৩০০৯ সংখ্যক নাৰীধর্ষণৰ অভিযোগ কৰা হৈছিল যদিও কেবল ১৭৮৬ সংখ্যক লোকক হে আৰক্ষীয়ে ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। ২০১৬ চনৰ পৰা ২০১৭ চনলৈ ৪৭৯৪ সংখ্যক মহিলা অপহৃত হৈছে, ২০১৭ চনত সেই সংখ্যা ৪৩১৪ আছিল বুলি Times of India নামৰ বাতৰি কাকতখনে অভিমত পোষণ কৰে। শেহতীয়া কোভিদ কালিন পৰিস্থিতিতো ২০২০ বর্ষত অসমৰ অকল ধর্ষণৰ গোচৰৰ সংখ্যাই আছিল ১৬৫৭টা।[১০]

নাৰী বিষয়ক অপৰাধৰ বিষয়ত ধর্মশাস্ত্রীয় অভিমত ঃ

যেতিয়াই কোনো এটা সমূহ আন কোনো এটা সমুহৰ দ্বাৰা পীঞ্জতি হয় তেতিয়াই সেই পীড়িত সমূহটোৰ সুৰক্ষাৰ বিষয়ত চিন্তা-চর্চা হয়। নাৰীৰ সুৰক্ষাৰ বিষয়ত চিন্তা-চর্চাও তেনেদৰেই প্রাচীন কালত হৈছিল বুলি অনুমান হয়। আধুনিক কালৰ দৰেই প্রাচীন কালতো বিভিন্ন প্রকাৰে নাৰী-সকল লাঞ্চিতা, বঞ্চিতা, ধর্ষিতা আৰু অপমানিতা হৈছিল। সেয়েহে নাৰীৰ অপমানকাৰীৰ বাবে শাস্তিবিধান কৰি নাৰীসকলৰ সুৰক্ষাৰ ব্যৱস্থাটোও পৰিকল্পনা কৰা হৈছিল। প্রাচীন ভাৰতবর্ষত ছয় প্রকাৰৰ আততায়ীৰ ভিতৰ নাৰী অপহৰণকাৰিকো আততায়ী বুলি গণ্য কৰা হৈছিল। মনুস্মৃতি, বশিষ্ঠস্মৃতি, আৰু শুক্রনীতিসাৰত নাৰীৰ অপহৰণকাৰীক আততায়ী বুলি গণ্য কৰা হৈছে। মনুসংহিতাত উল্লেখ থকা ছয় প্রকাৰৰ আততায়ী হৈছে - ঘৰত অগ্নিসংযোগ কৰোতা, বিষ প্রদানকর্তা, হাতত অস্ত্র লৈ থাকোতা, ধনৰ আত্মসাৎ কৰোতা, তথা কৃষিক্ষেত্র আৰু স্ত্রীৰ অপহর্তা। উল্লেখনীয়-

অগ্নিদো গৰদশ্চৈৱ শস্ত্রপাণির্ধনাপহঃ।
ক্ষেত্রদাৰাপহর্তা চ ষড়েতে হ্যাততায়িনঃ ।।[১১]

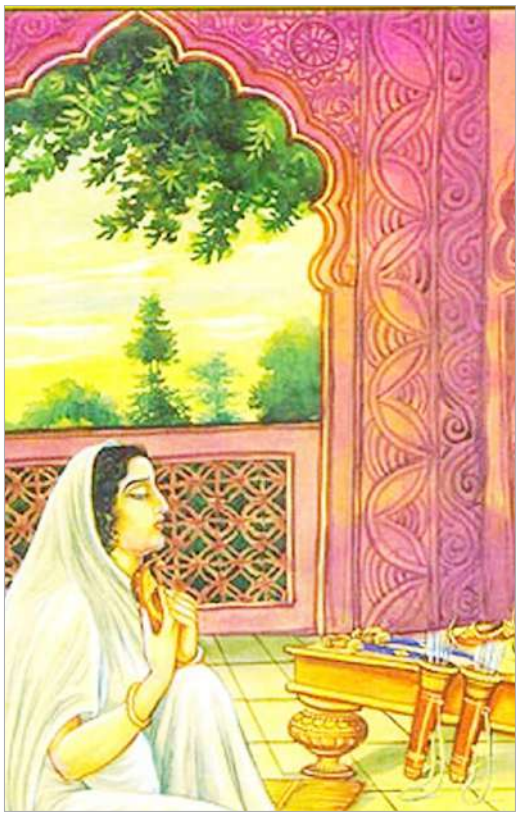

আততায়ীৰ প্ৰসঙ্গত বশিষ্ঠস্মৃতিতো একেদৰেই কোৱা হৈছে-

অগ্নিদো গৰদশ্চৈৱ শস্ত্রোন্মত্তো ধনাপহঃ।
ক্ষেত্রদাৰাপহর্তা চ ষড়েতে হ্যাততায়িনঃ ।।[১২]

শুক্রনীতিসাৰতো প্ৰায় একেদৰেই কোৱা হৈছে-

অগ্নিদো গৰদশ্চৈৱ শস্ত্রোন্মত্তো ধনাপহঃ।
ক্ষেত্রদাৰৱশ্চৈতান্ ষড় বিদ্যাদাততায়িনঃ।।[১৩]

আততায়ীৰ ক্ষেত্রত জাতি ধৰ্ম পৰিয়ালৰ কথা বিচাৰ নকৰি তৎক্ষণাত আততায়ীক নিধন কৰিব লাগে বুলি মনুসংহিতাত কোৱা হৈছে। প্ৰণিধান যোগ্য যে গুৰু, বালক, বৃদ্ধ অথবা প্ৰখ্যাতব্ৰাহ্মণ হলেও আততায়ীক অনতিবিলম্বে বধ কৰিব লাগে বুলি মনুস্মৃতিত উল্লেখ কৰা হৈছে।[১৪] আনকি আততায়ীৰ বধত কোনো দোষ নাই বুলিও মনুসংহিতাত কোৱা হৈছে-

" নাততায়িৱধে দোষো হন্তুর্ভৱতি কশ্চন"[১৫]

এই ক্ষেত্রত আমাৰ বক্তব্য হৈছে অতীতত আততায়ীৰ বিষয়ত ৰাষ্ট্রব্যৱস্থা অতিশয় কঠোৰ আছিল। ক্ষীপ্রগতিত দোষীৰ শাস্তিবিধান হ'লে ন্যায়ব্যৱস্থাৰ প্রতি আস্থা বৃদ্ধি পোৱাৰ লগতে অপৰাধীৰ অপৰাধপ্রৱণতা হ্রাস পায়। ধৰ্ষণকাৰীক অনতিবিলম্বে মৃত্যুদণ্ডৰ শাস্তি দিব লাগে বুলি মনুৱে নিজৰ অভিমত ব্যক্ত কৰিছে -

"য়াঞ্জকামাং দূষয়েৎ কন্যাং স সদ্যো বধমর্হতি"[১৬]

অর্থাৎ যিজনে ইচ্ছাৰ বিপৰিতে কোনো ছোৱালীক দুষিত কৰে (ধৰ্ষণ কৰে) সেইজনক অনতিবিলম্বে বধ কৰিব লাগে। ইয়াত 'সদ্যো' পদটিয়ে অনতিবিলম্বে অর্থ প্রকাশ কৰিছে।

Times of Indiaত প্রকাশিত চৰকাৰী তথ্য অনুসৰি ২০১৬-২০১৮ চনলৈ অসমত সর্বমুঠ ৩০০৯ ধৰ্ষণৰ অভিযোগৰ পৰিপ্রেক্ষিতত ১৭৮৬ জনক হে আৰক্ষীয়ে গ্রেপ্তাৰ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে, তাৰো ১৬৯৭ জনৰ বিপক্ষেহে আৰোপপত্র লিখা হৈছিল, তাৰে মাত্র ৭৬ জন হে দোষী সাব্যস্ত হৈছে। তাৎপর্যপূর্ণ ভাৱে ২০১৬-২০১৭বর্ষত ৮৭৭১ সংখ্যক আৰু ২০১৭-২০১৮ বর্ষত ৮৩৩৫ সংখ্যক নাৰীবিষয়ক অপৰাধ পঞ্জীয়নভুক্ত হৈছে অসমত। ২০১৬-২০১৮ বর্ষলৈ অসমত সর্বমুঠ ৯১০৮ সংখ্যক নাৰী অপহৰণৰ ঘটনা সংঘটিত হৈছে।[১৭]

সংঘটিত ঘটনা আৰু ঘটনাৰ অনুসন্ধানৰ সমান্তৰাল ভাৱে দোষীসাব্যস্তকৰণ ব্যৱস্থাটোৰ ক্ষীপ্র গতিয়ে অপৰাধীৰ অপৰাধপ্রৱণতা হ্রাস কৰে। এনে ক্ষেত্রত ওপৰোক্ত তথ্যত পোৱা অপৰাধ আৰু শাস্তিৰ পৰিসংখ্যাই ভুক্তভোগীক নিৰুৎসাহিত কৰাৰ লগে লগে প্রশাসন ব্যৱস্থাটোৰ প্রতি আস্থাহীন কৰি তুলিব।

মনুস্মৃতি আৰু যাজ্ঞবলক্যস্মৃতিত উল্লিখিত নাৰীবিষয়ক অপৰাধৰ বিবিধ দণ্ড ঃ

কোনো নাৰীক শাৰীৰিক ভাৱে নাইবা যৌনভাৱে যদি কোনোবাই উৎপীড়ণ কৰে তেনেহলে অপৰাধীৰ কাৰণে অংগুলিকর্তন আৰু ৬০০ পণ[১৮] ধনদণ্ড নির্দিষ্ট আছিল।[১৯] একেদৰে পৰস্ত্রীগমন আদি বিষয়ক অপৰাধৰ গুপ্তাঙ্গকর্তন, তপত লোহাৰ বিচনাত পেলাই দিয়া, খেৰৰ জুইত পুৰি মৰা, সকলো সম্পত্তি বাজেয়াপ্ত কৰা, ধনদণ্ড, আৰু প্রাণদণ্ডৰ বিধান কৰা হৈছিল মনুসংহিতাত।[২০] আনহাতে মাতৃ, পিতৃ, পত্নী নাইবা পুত্রক পৰিত্যাগ কৰাসকলৰ বাবে ৬০০ পণ ধনদণ্ডৰ বিধান কৰা হৈছিল।

মনুস্মৃতিত কোৱা হৈছে -

ন মাতা ন পিতা ন স্ত্রী ন পুত্রস্ত্যাগমর্হতি।
ত্যজন্নপতিতানেতান ৰাজ্ঞা দণ্ড্য শতানি ষট্ ।।[২১]

যাজ্ঞবল্ক্যস্মৃতিতো ব্যৱহাৰাধ্যায়ৰ স্ত্রীসংগ্রহণ প্রকৰণত নাৰীবিষয়ক অপৰাধৰ বাবে হস্তকর্তন মৃত্যুদণ্ড আদি বিবিধ দণ্ডৰ বিধান কৰা হৈছিল।[২২]

শাস্ত্রোক্ত নাৰীৰ সুৰক্ষা বিষয়ক উপদেশ ঃ

সূক্ষ্মাতিসূক্ষ্ম দুঃখজনক প্রসঙ্গৰ পৰাও স্ত্রীসকলক ৰক্ষা কৰিব লাগে; অন্যথা পিতৃকুল আৰু পতিকুল দুয়োটা কুলৰে দুঃখ হয় বুলি কোৱা মনুৰ বচনৰ প্রাসঙ্গিকতা আজিও আছে।[২৩] নাৰীৰ প্রতি এনেকুৱা সুৰক্ষাবিষয়ক শাস্ত্রীয় বিধানে সেই সময়ৰ সচেতন আৰু ব্যৱস্থিত ৰাজতন্ত্রৰ আভাস দিয়ে। স্ত্রী, বালক, ৰোগ, দাস, পশু, ধন, বিদ্যাভ্যাস, আৰু সৎ লোকৰ সেৱাক কেতিয়াও উপেক্ষা কৰিব নালাগে তথা এইকেইটা বিষয়ত সকলোৱে মনোযোগ দিব লাগে বুলি শুক্রনীতিসাৰত কোৱা হৈছে।[২৪] স্ত্রীৰ সুৰক্ষাৰ দ্বাৰা সন্ততিসকল সুৰক্ষিত হয়, সন্ততি সকলৰ ৰক্ষাৰ দ্বাৰা নিজৰ ৰক্ষা হয় বুলি মনুৱে মত পোষণ কৰিছে। উল্লেখনীয়-

ভার্য়ায়াং ৰক্ষ্যমাণায়াং প্রজা বৱতি ৰক্ষিতা।
প্রজায়াং ৰক্ষ্যমাণায়ামাত্মা ভৱতি ৰক্ষিতঃ।।[২৫]

অপৰাধনিয়ন্ত্রণৰ প্রসঙ্গত শাস্ত্রীয় উপদেশ ঃ

অকল দণ্ডবিধানেৰেই অপৰাধ নিয়ন্ত্রণ কৰিব নোৱাৰি। যেতিয়ালৈকে অপৰাধ প্রৱণতা ভিতৰৰ পৰা নোহোৱা হৈ নাযায় তেতিয়ালৈ অপৰাধৰ সম্ভাৱনা থাকি যায়। সেয়েহে বাল্যকালৰ পৰাই কেনেদৰে একাদশ ইন্দ্রিয়ৰ সমুচিত জ্ঞানপ্রদানেৰে মানসিক দৃঢ়তা উৎপন্ন কৰি কৰণীয় আৰু অকৰণীয় কার্যৰ শিক্ষা প্রদানেৰে ভবিষ্যত প্রজন্মৰ মাজত অপৰাধপ্রৱণতাক বিলুপ্ত কৰিব পৰা যায় তাৰ উপায় চিন্তা কৰিব লাগে। সকলো ধৰণৰ কর্মৰ আৰম্ভণিতে সেই কর্মই বীজ ৰূপে মনত থিতাপি লাভ কৰে। অপৰাধীৰ মনত অপৰাধপ্রৱণতাই বাহ লোৱাৰ পিছত হে অপৰাধ সম্পন্ন হয়। ইন্দ্রিয়নিগ্রহেৰে সেই প্রৱণতাক ৰোধ কৰিব পৰা যায়। পঞ্চজ্ঞানেন্দ্রিয় (চকু, কাণ, নাক, জিভা, নাক) আৰু পঞ্চকর্মেন্দ্রিয় (বাক্ পাণি, পাদ, পায়ূ, উপস্থ) তথা একাদশ ইন্দ্রিয় 'মন'ৰ ভিতৰত যিকোনো এটাও যদি বিষয়াসক্ত হৈ থাকে তেনেহ'লে সেই ইন্দ্রিয়ৰ দ্বাৰা মনুষ্যৰ বুদ্ধি সেইদৰে বিনাসপ্রাপ্ত হয় যিদৰে পানীৰ মোনাত এটা ছিদ্র থাকিলেই সকলো পানী বৈ যায়।[২৬] বুদ্ধি বিনষ্ট হ'লে কৰণীয় কি অকৰণীয় কি সেইটো মানুহে ধৰিব নোৱাৰে। সেয়েহে একাদশটা ইন্দ্রিয়ৰ ভিতৰত প্রথমে মন নামৰ ইন্দ্রিয়টোক জয় কৰিব লাগে। মনক জয় কৰিব পাৰিলে অন্য সকলো ইন্দ্রিয়ক জয় কৰিব পাৰি আৰু ইন্দ্রিয়সমূহ জয় কৰিলে সিদ্ধি লাভ হয়। দ্রষ্টব্য -

একাদশং মনো জ্ঞেয়ং স্বগুণেনোভয়াত্মকং।
য়স্মিঞ্জিতে জিতাৱৈতে ভৱতঃ পঞ্চকৌ গুণৌ।।
ইন্দ্রিয়াণাং প্রসংঙ্গেন দোষমৃচ্ছত্যসংশয়ম্।
সংনিয়ম্য তু তান্যেৱ ততঃ সিদ্ধিং নিয়চ্ছতি।।[২৭]

জীতেন্দ্রীয় আৰু অজিতেন্দ্রিয় দুয়োজনৰে দুৰৱস্থাৰ কথাও শুক্র নীতিসাৰত কোৱা হৈছে। তাত কৈছে যে স্ত্রীসকলৰ আহ্লাদযুক্ত নামেও মনত বিকাৰ উৎপন্ন কৰে; বিলাসেৰে উল্লাসিত ভ্রূযুগলেৰে তেওলোকৰ দর্শনততো কথাই নাই। মুনিৰো মনক ৰাগসহিতে অংগণাই বশীভূত কৰিব পাৰে জিতেন্দ্রিয়ৰ কি কথা? আকৌ অজিতেন্দ্রিয়ৰ ক্ষেত্রত সেইটো তেনেই সহজ।[২৮]

ওপৰোক্ত প্রসঙ্গত স্ত্রীৰ ভ্রূবিক্ষেপাদি কার্যক কামনাৰ উদ্দীপক বুলি কোৱা হৈছে ইয়াৰ অন্তর্নিহিত অর্থটো হৈছে উদ্দিপন বিভাৱেই ৰাগ দঞ্জৰেষাদিৰ প্রকটনৰ কাৰণ। এই ক্ষেত্রত আলম্বন বিভাৱ স্ত্রীয়েই হওক বা পুৰুষেই হওক। গতিকে ইন্দ্রিয়নিগ্রহৰ অভ্যাসেৰেই হ'বলগীয়া অশিষ্টকার্যৰ পৰা নিবৃত্ত হ'ব পৰা যায়।

ইন্দ্রিয়ৰ বিষয়সমূহৰ অনুকুলতা আৰু প্রতিকুলতাৰ মান্যতা অনুসৰি ৰাগ আৰু দ্বেষ ব্যৱস্থিত হৈ আছে। ৰাগ আৰু দ্বেষৰ অভিভূত হৈ যিসকলে কর্ম কৰে তেওলোকৰ প্রকৃতি (স্বভাৱ) অশুদ্ধ। গতিকে বিষয়ৰ অনুকলতাৰ বাবে আশক্তি আৰু প্রতিকুলতাৰ বাবে ক্রোধ উৎপন্ন হয় তাৰ পিছতহে অপৰাধ সম্পন্ন হয়।

গীতাতো কোৱা হৈছে-

ইন্দ্রিয়স্যেন্দ্রিয়স্যার্থে ৰাগদ্বেষৌ ব্যৱস্থিতৌ
তয়োর্ন ৱশমাগচ্ছেত্তৌ হ্যস্য পৰিপন্থিনৌ।।[২৯]

বিষয়ৰ প্রতি আসক্ত ইন্দ্রিয়বোৰ জ্ঞানৰ দ্বাৰাহে নিয়ন্ত্রণলৈ আনিব পাৰি। সেই কথাটোৱে মনুসংহিতাত কোৱা হৈছে-

"ন তথৈতানি শক্যন্তে সংনিয়ন্তুমসেৱয়া শ্ৰ ৱিষয়েষু প্ৰযুষ্টানি য়থা জ্ঞানেন নিত্যশঃ।।"[৩০]

ইন্দ্ৰিয়ৰ বিষয়ত অতিশয় আশক্তিৰ বাবে মানুহে বিষয়বশীভূত হৈ অনেক অপৰাধ কৰে। বিষয়ৰ অতিশয় আশক্তিৰ অভাবেই ইন্দ্ৰিয়বিজয় বুলি কোৱা কৌটিল্যৰ অভিমতটো ইয়াত প্ৰণিধান যোগ্য-

"কৰ্ণত্বক্ষিজিহ্বাঘ্ৰাণেন্দ্ৰিয়াণাং
শব্দস্পৰ্শৰূপৰসগন্ধেষ্ববিপ্ৰতিপত্তিৰিন্দ্ৰিয়জয়ঃ"[৩১]

দণ্ডৰ লক্ষণ আৰু দণ্ডৰ লাভৰ প্ৰসংগত শুক্ৰনীতিসাৰত কোৱা হৈছে যে- অসৎ আচৰণৰ পৰা নিবৃত্তি আৰু দণ্ডৰ দ্বাৰা দমন আৰু যাৰ দ্বাৰা জন্তুও বশীভূত হয় সেই উপায়েই হৈছে দণ্ড। এই দণ্ডৰ ভয়তেই প্ৰজাসকল ধৰ্মপৰায়ণ হয়; ধৃষ্টতা ত্যাগ কৰে আৰু অসত্য ভাষণ নকৰে। নিষ্ঠুৰ প্ৰকৃতিৰ প্ৰজাও শান্ত স্বভাৱৰ হয়; দুষ্টলোকে দুষ্টতা পৰিত্যাগ কৰে। আনকি পশুও বশীভূত হয় তথা দস্যুৱেও স্বস্থান পৰিত্যাগ কৰে। উল্লেখনীয়-

নিবৃত্তিৰসদাচাৰাদ্ দমনং দণ্ডতশ্চ তৎ। য়েন সংদম্যতে জন্তুৰুপায়ো দণ্ড এৱ সঃ।।

জায়তে ধৰ্মনিৰতা প্ৰজা দণ্ডভয়েন চা কৰোত্যাধৰ্ষণং নৈৱ তথা চাসত্যভাষণম্।।

ক্ৰুৰাশ্চ মাৰ্দৱং য়ান্তি দুষ্টা দৌষ্ট্যং ত্যজন্তি। পশৱোঽপি ৱশং য়ান্তি ৱিদ্ৰৱন্তি চ দস্যৱঃ।।

পিশুনা মুকতাং য়ান্তি ভয়ং য়ান্ত্যাততায়িনঃ। কৰদাশ্চ ভৱন্ত্যন্যে ৱিত্ৰাসং য়ান্তি চাপৱে।।[৩২]

দণ্ড বা বিচাৰ ব্যৱস্থাৰ প্ৰতি এটা ভয় সকলোৰে থাকিলে অপৰাধ নিয়ন্ত্ৰণ সহজ হৈ পৰে। নাৰীৰ সুৰক্ষাৰ বিষয়ত বিচাৰ ব্যৱস্থাৰ কঠোৰতাৰ লগতে ক্ষীপ্ৰতাৰে সম্পন্ন কৰাৰ সময়ত অনাহকত কাৰো যাতে অনিষ্ট নহয় তাৰ প্ৰতিও লক্ষ্য ৰাখিব লাগিব। নিজৰ বাবে প্ৰতিকূল যিটো বিষয় সেইটো আনৰ কাৰণে প্ৰয়োগ কৰা অনুচিত। এই প্ৰসঙ্গত সকলো অপৰাধী আৰু সাধাৰণ লোকৰ বাবেও অতি মুল্যবান পদ্মপুৰাণত উক্ত হোৱা শ্লোক এটাৰ নীতিয়ে অকল নাৰীসুৰক্ষাৰ বিষয়তেই নহয় সকলো অপৰাধ নিয়ন্ত্ৰণৰ ক্ষেত্ৰতো সহায়াক হ'ব পাৰে-

শ্ৰূয়তাং ধৰ্মসৰ্ৱস্ৱঞ্চৱং শ্ৰুতঞ্চৱা চৈৱাৱধাৰ্যতাম্।
আত্মনঃ প্ৰতিকূলানি পৰেষাং ন সমাচৰেৎ। [৩৩]

অৰ্থাৎ ধৰ্মৰ সাৰ কথা শুনাহক আৰু শুনিয়েই সেই কথাটো নিজৰ বাবে অৱধাৱন কৰি ল'ব যিটো নিজৰ বাবে প্ৰতিকূল সেইটো আনৰ বাবে প্ৰয়োগ নকৰিব।

প্ৰাচীন ভাৰতীয় সংস্কৃতিত নাৰীৰ অৱদান আৰু মহত্ব অপৰিসীম আছিল। অসমৰ সংস্কৃতিয়েও সেই একেই ধাৰণাৰে পুষ্টি কৰে। কিন্তু আধুনিক অসমত নাৰীৰ প্ৰগতি আৰু সুৰক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত যেন কিবা এটা যেন বাধা অহি পৰিছে। এই ক্ষেত্ৰত সমাজবিজ্ঞানী তথা সকলো সচেতন লোকে এক হৈ সমাধাৰ সূত্ৰ উলিয়াব লাগিব। নাৰীৰ সুৰক্ষাৰ বিষয়ত নিম্নলিখিত উপায়বোৰ আমাৰ দৃষ্টিকোণেৰে আগবঢ়োৱা হ'ল-

১। শিক্ষা ব্যৱস্থাত নৈতিক শিক্ষাৰ প্ৰয়োগ।

২। ইন্দ্ৰিয়ৰ বিষয়ত যথোচিত জ্ঞান প্ৰদান।

৩। বিকৃতি সম্পন্ন আন্তৰ্জালিক সূত্ৰ আৰু অশ্লীল ৱেৱ চাইট বোৰ বন্ধ কৰিব লাগে।

৪। নাৰীবিষয়ক গোচৰবোৰৰ শীঘ্ৰাতিশীঘ্ৰ নিস্পত্তি হ'ব লাগে।

৫। ধৰ্ষণকাৰীৰ বাবে প্ৰাণদণ্ডৰ বিধান হ'ব লাগে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

১. https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/violence-against-women
২. CII 2020 Volume 1.pdf Book Page No-xii
৩. CII 2020 Volume 1.pdf Book Page No-xvii
৪. CII 2020 Volume 1.pdf Book Page No-xvii
৫. CII 2020 Volume 1.pdf Book Page No-31
৬. CII 2020 Volume 1.pdf Book Page No-31
৭. সর্ব দণ্ডজিতো লোকো দুর্লভো হি শুচির্নৱঃ
দণ্ডস্য হি ভয়াৎ সর্ৱং জগদ্ভোগায় কল্পতে মনুস্মৃতি-৭/২২

/

৮. https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/violence-against-women
৯. https://www.nsvrc.org/statistics
১০. CII 2020 Volume 1.pdf Book Page No-31
১১. মনুস্মৃতি-৮/৩৫০,২৩
১২. https://mysanskritsubhashit.wordpress.com/2020/10/
১৩. শুক্রনীতিসাৰ-৩ ৪০
১৪. গুৰু ৰা বালবৃদ্ধৌ ৰা ব্রাহ্মণং ৰা বহুশ্রুতম্
আততায়িনমায়ান্তং হন্যাদেৱৰিচাৰয়ন্
মনুস্মৃতি-৮/৩৫০
১৫. মনুস্মৃতি-৮/৩৫১
১৬. মনুস্মৃতি-৮/৩৬৪
১৭. https://timesofindia.indiatimes.com/city/guwahati/3000-rape-cases-in-assam-since-2016/articleshow/62995840.cms
১৮. 'পণ' হৈছে এটা ধনৰ পৰিমাপক। আশীটা কৰিশ্চবৰাটকগ্ণ লগ হৈ এক পণ হয়। উল্লেখনীয় অশিতিভির্বৰাটকৈঃ পণঃ ইত্যভিধীয়তে
১৯. মনুস্মৃতি-৮/৩৬৭
২০. মনুস্মৃতি-৮/৩৬৭-৩৭৪
২১. মনুস্মৃতি-৮/৩৮৯
২২. যাজ্ঞবল্ক্যস্মৃতি- ২/২৪/২৮৮
২৩. মনুস্মৃতি-৯/৫
২৪. নোপেক্ষেত স্ত্রিয়ং বালং ৰোগং দাসং পশুং ধনম্। ৱিদ্যাভ্যাসং ক্ষণমপি সৎসেৱাং বুদ্ধিমান্নৰঃ। শুক্রনীতিসাৰ-৩/৪১
২৫. মনুস্মৃতি-৯/৫,১
২৬. ইন্দ্রিয়াণাং তু সর্ৱেষাং য়দ্যেকং ক্ষৰতীন্দ্রিয়ম্।
তেনাস্য ক্ষৰতি প্রজ্ঞা দতেঃ পাদাদিৱোদকম্।।
মনুস্মৃতি-২/৯৯
২৭. মনুস্মৃতি-২/৯২,৯৩
২৮. শুক্রনীতিসাৰ-১/১১০,১১২
২৯. শ্রীমদ্ভগৱদ্গীতা-৩/৩৪
৩০. মনুস্মৃতি-২/৯৬
৩১. অর্থশাস্ত্র-১/৬/১-২
৩২. শুক্রনীতিসাৰ-৪/৪৪,৪৭-৪৯
৩৩. পদ্মপুৰাণ ১৯/৩৫৫-৩৫৬

প্রবন্ধ

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ ‘পদুম কুঁৱৰী’ উপন্যাস

বনজিৎ শর্মা

সহকাৰী অধ্যাপক
বি.এইচ্. কলেজ, হাউলী
ডাক ঃ হাউলী, পিন ঃ ৭৮১৩১৬
জিলা ঃ বৰপেটা
ম'বাইল ঃ ৮৮৭৬০৪৬৯৪৭
ই-মেল ঃ banjitnishasarma@gmail.com

আৰম্ভণি ঃ

অসমীয়া সাহিত্য জগতত লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা এটি প্ৰাতঃস্মৰণীয় নাম। তেখেতৰ বিভিন্ন ৰচনাৰাজীৰ ভিতৰত প্ৰথম আৰু একমাত্ৰ উপন্যাস হৈছে ‘পদুম কুঁৱৰী’। এই উপন্যাসখন প্ৰথমে জোনাকী আলোচনীত ছোৱা-ছোৱাকৈ প্ৰকাশ হৈ ওলাইছিল। কিতাপৰ আকাৰত উপন্যাসখন প্ৰকাশিত হৈছিল ১৯০৫ খ্ৰীষ্টাব্দত। কাল্পনিক ঘটনা, পৰিৱেশ আৰু চৰিত্ৰ-চিত্ৰণৰ জৰিয়তে বেজবৰুৱাদেৱে উপন্যাসখনিত বাস্তৱৰ ৰহণ সানিছিল। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাদেৱে যি সময়ত উপন্যাস ৰচনাত মনোনিৱেশ কৰিছিল সেই সময়ত অসমীয়া উপন্যাসৰ ভেটি নিৰ্মাণৰ প্ৰস্তুতি পৰ্বৰ সময়হে আছিল। সেই দিশৰ পৰা চালে দেখা যায়, ‘পদুম কুঁৱৰী’ উপন্যাসৰ ঐতিহাসিক মূল্য নিশ্চয়কৈ আছে। মাত্ৰ ২৭ বছৰ বয়সতে বেজবৰুৱাদেৱে একমাত্ৰ ঐতিহাসিক উপন্যাস ‘পদুম কুঁৱৰী’ লিখাত নিজক আত্মনিয়োগ কৰিছিল।

বেজবৰুৱাদেৱে কলিকতাত এ. এছ. এল. ক্লাৱ বা অ. ভা. উ. সা. সভাৰ এজন নেতৃস্থানীয় সভ্য আছিল, সেই সভাৰ আদৰ্শতে অসমীয়া জাতি, ভাষা, সাহিত্য, সংস্কৃতিৰ গঠন আৰু উৎকৰ্ষৰ বাবে সাহিত্য ৰচনাত অৱতীৰ্ণ হৈছিল। তেখেতে অসমীয়া সাহিত্যৰ ভঁৰাল টনকিয়াল কৰিবলৈ অসমীয়া সাহিত্যৰ প্ৰায়বোৰ শাখাতে হাত দিছিল। উপন্যাস ৰচনাৰ উদ্দেশ্যও একে ধৰণৰেই আছিল। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ প্ৰথম আৰু একমাত্ৰ উপন্যাস ‘পদুম কুঁৱৰী’ যদিও সাৰ্থক বা সফল উপন্যাস বুলি গণ্য কৰিব নোৱাৰি তথাপি উপন্যাসখনত ধৰা পৰা স্বদেশ প্ৰেম আৰু অসমীয়া জাতিৰ উন্নতি বা মঙ্গলৰ চিন্তা প্ৰশংসনীয়।

উপন্যাসখনৰ বিষয়বস্তু ঃ

বেজবৰুৱাৰ ‘পদুম কুঁৱৰী’ উপন্যাসৰ কাহিনীভাগ অষ্টাদশ শতিকাৰ শেষছোৱা সময়ত ঘটা ঐতিহাসিক ঘটনা আৰু এটি প্ৰেমমূলক ঘটনাৰ মিশ্ৰণত গঢ়ি উঠিছে। উত্তৰ কামৰূপৰ প্ৰবল প্ৰতাপী ভাতৃদ্বয় হৰদত্ত আৰু বীৰদত্তৰ বিদ্ৰোহৰ লগত সূৰ্য-পদুমৰ প্ৰণয়ে এক শোকাবহ পৰিণতিলৈ কাহিনীভাগ আগবঢ়াই নিছে। ঔপন্যাসিকে উপন্যাসখনৰ কাল্পনিক কাহিনীটোৰ ওপৰত বেছি গুৰুত্ব দিয়া যেন লাগিলেও সূৰ্য আৰু পদুমৰ অকৃত্ৰিম ভালপোৱাই বিকশিত

ৰূপ লাভ কৰিব নোৱাৰিলে। তথাপিও ইতিহাসৰ কাহিনীৰ লগত সূর্য, পদুম আৰু ফুলৰ প্রণয় কাহিনীৰ মাজেদি প্রেমৰ গভীৰতাক উপলব্ধি কৰিব পাৰি।

'পদুম কুঁৱৰী'ৰ প্রথম প্রকাশৰ সময় অনুসৰি (১৮৯১-৯২ খ্রীঃৰ জোনাকী আলোচনী), ই অকল অসমীয়া সাহিত্যৰ দ্বিতীয় উপন্যাসেই নহয়; এই উপন্যাসখন বেজবৰুৱাৰ আদিস্তৰৰ ৰচনা। সেইপিনৰ ফালৰ পৰা সাহিত্যকৃতি হিচাপে উপন্যাসখনত দুর্বলতা ধৰা পৰা স্বাভাৱিক।

বেজবৰুৱাৰ 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনত দেখুওৱা হৈছে, প্রাক্-বৃটিছ অসমৰ আহোম ৰাজত্বত উজনি আৰু নামনিৰ প্রজাৰ মাজৰ অনৈক্য আৰু বিদ্বেষ। এই অনৈক্য আৰু বিদ্বেষ অষ্টাদশ শতিকাৰ শেষ আৰু ঊনবিংশ শতিকাৰ আদিভাগত চৰম সীমাত উঠিছিল। সেই সময়ছোৱাত উজনি অসমৰ আহোম ৰাজসিংহাসনত কমলেশ্বৰ সিংহ আৰু কামৰূপত তেওঁৰে ৰাজপ্রতিনিধি প্রথমে কলীয়া ভোমোৰা আৰু তাৰ পিছত বদন বৰফুকন বহে। আনহাতে কমলেশ্বৰ সিংহৰ এজনা মন্ত্রী হ'ল পূর্ণানন্দ বুঢ়াগোঁহাই। আহোম ৰজাই মোৱামৰীয়া বিদ্রোহৰ পিছত উজনি অসম থানথিত লগাইছিল যদিও নামনি অসম অৱহেলিত হৈ ৰ'ল। উপন্যাসখন অনুসৰি আহোম ৰজাৰ প্রতিনিধি কলীয়া ভোমোৰা বৰফুকনে কামৰূপত সাধাৰণ প্রজাক অতি তুচ্ছ জ্ঞান কৰি বিভিন্ন ধৰণে অত্যাচাৰ কৰিছিল। এনে সময়তে কামৰূপৰ উচ্চাকাঙ্খী লোক হৰদত্তই দৰং আৰু কোচবিহাৰৰ ৰজাৰ সৈতে একেলগ হৈ আহোমৰ পৰা কামৰূপ উদ্ধাৰ কৰিবলৈ যুদ্ধত নামি পৰিল। কামৰূপী প্রজাৰ সমর্থন হৰদত্তই লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হ'ল, লগতে ভায়েক বীৰদত্তক সেনাপতিৰ ভাৰ অর্পণ কৰিলে। আনহাতে আহোম ৰজাই বিদ্রোহ দমন কৰিবলৈ সৈন্য পঠিয়াই দিলে। হৰদত্তই আহোম সৈন্যৰ সন্মুখত পোনে পোনে থিয় নহৈ বিদ্রোহী অনুগামীসকলৰ সৈতে ভোটৰ পর্বতলৈ পলাই গ'ল। আনহাতে ভায়েক, সেনাপতি বীৰদত্তই পঞ্জাৱৰ ৰজাৰ সাহার্য্য বিচৰাৰ প্রস্তাৱ ককায়েকৰ আগত দাঙি ধৰিলে। এই প্রস্তাৱৰ উত্তৰত হৰদত্তই যি কোৱা বুলি উপন্যাসখনত দেখুওৱা হৈছে, সেয়াই এই উপন্যাস ৰচনাৰ স্বদেশপ্রেমিক উদ্দেশ্যৰ লগত উজনি-নামনিৰ ঐক্য, দোহাৰা উদ্দেশ্যটিও তুলি ধৰে। হৰদত্তই আহোমৰ বিপক্ষে পঞ্জাৱৰ সাহার্য্য বিচৰাৰ বিৰুদ্ধে যুক্তি দাঙি ধৰিছে এনেধৰণে— "স্বর্গাদপি গৰীয়সী জন্মভূমি যে তেওঁ বিশ্বাসঘাটক হৈ এজন বিদেশী ৰজাৰ হাতত সমর্পণ কৰিব এনে কথা তেওঁ স্বপ্নতো ঠাই দিব নোৱাৰে। ...হৰদত্তৰ মাতৃভূমি অচিনাকী পঞ্জাৱৰ হাতত সমর্পণ কৰাতকৈ পুৰণি চিনাকী আহোমৰ হাতত এৰি থৈ হৰদত্তই আপোনাক ধন্য মানিব।" ইয়াৰ পিছত ভূটানৰ হাবিতেই কলীয়া ভোমোৰা বৰফুকনৰ আহোম সৈন্যই হৰদত্ত, বীৰদত্ত আৰু হৰদত্তৰ পুত্রক নিষ্ঠুৰভাৱে হত্যা কৰি কামৰূপী বিদ্রোহ দমন কৰিলে।

বেজবৰুৱাদেৱে একেটা কাহিনীৰ মাজেদি তেতিয়াৰ নামনি অসমৰ আহোম ৰজাৰ প্রতিনিধি গৰাকীৰ বিদ্বেষ আৰু নিষ্ঠুৰতা তুলি ধৰি এনে বিদ্বেষৰ বাবেই সামগ্রিক অসমৰ ঐক্য ব্যাহত হয় বুলি উপন্যাসত দেখুৱাবলৈ সক্ষম হৈছে। আনহাতে, ৰাজনৈতিক পর্যায়ত এনে অনৈক্য থকাৰ পিছতো, উজনি-নামনিৰ সাধাৰণ লোকৰ মাজত ঐক্যৰ টান যে বর্তমান তাকো ঔপন্যাসিক গৰাকীয়ে কাহিনীত দেখুৱাইছে।

বেজবৰুৱাদেৱে হৰদত্তৰ একমাত্র জীয়ৰী পদুমৰ সৈতে অনা-আহোম সূর্যকুমাৰৰ এটি প্রণয় কাহিনীৰ সংযোগ ঘটাই উপন্যাসখনিক উপজীব্য কৰাৰ লগতে এক কাৰুণ্যৰো অৱতাৰণা কৰিছে। হৰদত্তৰ পত্নীয়ে পাঁচবছৰীয়া সূর্যক তুলি-তালি ডাঙৰ-দীঘল কৰিছিল। সূর্যৰ সৈতে

সৰুৰে পৰা উমলি-জামলি একেখন ঘৰতে ডাঙৰ-দীঘল হোৱা পদুমৰ মাজত যৌৱনত ভালপোৱালৈ পৰ্যবসিত হয়। কিন্তু এই ভালপোৱাৰ প্ৰতিশ্ৰুতি এক ৰাজনৈতিক দ্বন্দ্বৰ মাজত আউল লাগিল। পদুম আৰু সূর্য বিৰহ বিচ্ছেদত ম্ৰিয়মান হ'ল। সূর্যকুমাৰে হৰদত্তৰ ঘৰৰ পৰা ওলাই গৈ কলীয়া ভোমোৰা বৰফুকনৰ ঘৰত আশ্ৰয় ল'লে আৰু তাতেই বৰফুকনৰ একমাত্ৰ ছোৱালী 'ফুল'ক লগ পালে। ফুলৰ পাহিৰ দৰে কোমল সুন্দৰী 'ফুলে' প্ৰথম দৰ্শনতে সূর্যকুমাৰৰ প্ৰতি আকৰ্ষিত হ'ল। দুয়োৰে মাজত গভীৰ আত্মীয়তা বাঢ়িল। কিন্তু ফুলৰ অকৃত্ৰিম ভালপোৱাইও সূর্যৰ প্ৰেয়সী পদুমক পাহৰাব পৰা নাছিল। ফুলে সকলো কথা জানে, তথাপিও উজনি অসমৰ জীয়ৰীয়ে নামনি অসমৰ কোঁৱৰজনৰ আশা ত্যাগ কৰিব নোৱাৰে। আনহাতে সূর্যকুমাৰৰ কোনো খবৰ নেপায় পদুমো প্ৰায় বাউলিৰ দৰে হৈ পৰিছিল। পিছত বৰফুকনৰ হাতত হৰদত্ত, বীৰদত্তৰ মৃত্যুৰ সংবাদ জানিব পাৰি সূর্যকুমাৰে পদুমক দেখাৰ আশাৰে তালৈ লৰ দিয়ে। বৰফুকনৰ সেনাপতি কুমেদান বঙালে পদুম কুঁৱৰীক অপমান কৰিবলৈ উদ্যত হোৱা দেখি সূর্যকুমাৰে হৰদত্তৰ মৃতদেহৰ কাষত পৰি থকা তৰোৱালেৰে কুমেদানৰ মূৰটো কাটি দিলে। আনহাতে, সূর্যক দেখাৰ লগে লগে পদুম কুঁৱৰীৰ মনৰ আশা পূৰণ হোৱাত তাই আঁচলত বান্ধি ৰখা বিহ খাই প্ৰাণ বিসৰ্জন দিলে। পদুম কুঁৱৰীৰ এনে ধৰণৰ অস্বাভাৱিক মৃত্যুৰ যন্ত্ৰণা সহ্য কৰিব নোৱাৰি সূর্যকুমাৰেও তৰোৱালেৰে খুচি নিজৰ দেহ ত্যাগ কৰিলে।

ইয়াৰ পিছতো পৰাজিত আৰু নিহত কামৰূপ কোঁৱৰৰ প্ৰতি বিজয়ী আহোম শাসক কলীয়া ভোমোৰাৰ জীয়ৰীৰ প্ৰেম অটুট থাকিল। ফুলে শাসক দেউতাকক মৰম আৰু কৌশলৰ ডোলেৰে বান্ধি, পিতাকৰ হাউলিৰ ভিতৰতে মৈদাম খন্দাই পদুম আৰু সূর্যৰ মৃতদেহ দুটা সৎকাৰ কৰিলে আৰু সেই মৈদামতে ফুলেও আত্মহত্যা কৰি অনন্ত শয্যাত শয়ন কৰিলে। উজনি-নামনিৰ মাজত বিদ্বেষ আৰু ঘৃণাৰ এই সমাধিত এনেদৰেই যেন ঐক্য আৰু প্ৰেমৰ ফুল ফুলি উঠিল। 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনৰ শেষ অধ্যায়ত এটাৰ পিছত আন এটা মৃত্যুৰ ধুৱলী-কুঁৱলি ঘটনাৰ মাজেৰে উপন্যাসখনৰ পৰিসমাপ্তি ঘটিছে।

বেজ বৰুৱাৰ 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনৰ কাহিনীভাগৰ আগছোৱা সাৱলীলভাৱে আগবাঢ়ি গৈছে আৰু শেষৰছোৱা তীব্ৰগতিৰে সামৰণি পৰিছে। উপন্যাসখনৰ বিয়োগাত্মক যৱনিকাই ৰোমিঅ' জুলিয়েটৰ শেষ পৰিণতিলৈ মনত পেলাই দিলেও উপন্যাসখনক আবেদনক্ষম কৰি তুলিব পৰা নাই। উপন্যাসখনৰ কাহিনী এখন সার্থক ট্ৰেজিক উপন্যাস নহৈ গতানুগতিকধৰ্মী হৈয়ে ৰ'ল। তথাপি 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনত ঐতিহাসিক ঘটনা আৰু প্ৰণয় কাহিনীৰ এক মিশ্ৰণ ঘণীভূত হৈ উঠিছে বুলি ক'ব পাৰি।

উপন্যাসখনৰ চৰিত্ৰ চিত্ৰণ ঃ

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনে অসমীয়া সাহিত্যৰ দ্বিতীয় উপন্যাস হৈ, অসমীয়া সাহিত্য টনকিয়াল কৰাত সহায় কৰিছে যদিও গুণগত দিশত উপন্যাস হিচাপে ই বৰ চহকী নহয়। উপন্যাসখনৰ চৰিত্ৰবোৰৰ কলীয়া ভোমোৰা, হৰদত্ত, বীৰদত্ত, সূর্যকুমাৰ, পদুম, ফুল আইদেউ, ৰঘু, কোৰ্মা আৰু কুৰ্মী— কোনোটিয়েই তেজ মঙহৰ মানুহ হিচাপে জীৱন্ত নহয়। উপন্যাসখনৰ কোনো এটা চৰিত্ৰই প্ৰয়োজনীয় বিকাশ লাভ কৰিব নোৱাৰিলে। আনকি উপন্যাসখনত সংঘাতপূর্ণ চৰিত্ৰৰ সৃষ্টিও সম্ভৱ হৈ নুঠিল। তথাপিও বেজবৰুৱাৰ 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসৰ কেইটিমান চৰিত্ৰই আমাৰ মনত দোলা দি যায়।

উপন্যাসখনত নামনি অসমৰ হৰদত্তৰ আশ্ৰিত ডেকা অনা-আহোম সূর্যকুমাৰ এজন তীক্ষ্ণ বুদ্ধিসম্পন্ন ডেকা। কিন্তু হৰদত্তৰ লগত কলীয়া ভোমোৰা বৰফুকনৰ শত্ৰুতা থকাৰ কথাটো এনে এজন বুদ্ধিমান ডেকাই নজনাটোৱে উপন্যাসখনত সকলোকে আচৰিত কৰি তুলিছে। সূর্যকুমাৰৰ চৰিত্ৰৰ মাজত প্ৰেমৰ অন্তৰ্দ্বন্দ্বই কিছু পৰিমাণে প্ৰকট হৈ উঠিছিল যদিও কাহিনীৰ অস্বাভাৱিক পৰিণতিয়ে আকৰ্ষণ কৰিব নোৱাৰিলে। সূর্যকুমাৰে কুমেদান বঙালৰ মূৰটো তৰোৱালেৰে কাটি বীৰত্বৰ পৰিচয় দেখুৱালে যদিও সূর্য চৰিত্ৰই নিজকে চম্ভালি ল'ব নোৱাৰা কার্যত মানসিক শক্তিৰ অভাৱ দেখিবলৈ পোৱা যায়। সূর্যকুমাৰ উপন্যাসখনৰ নায়ক চৰিত্ৰ; কিন্তু নায়ক এজনৰ আৱশ্যকীয় গুণবোৰ সূর্যকুমাৰৰ গাত ফুটি উঠা নাই। তথাপিও সূর্যকুমাৰৰ চৰিত্ৰত সৰলতা আৰু পদুম কুঁৱৰীৰ প্ৰতি থকা গভীৰ প্ৰেমৰ আভাস জানিব পাৰি।

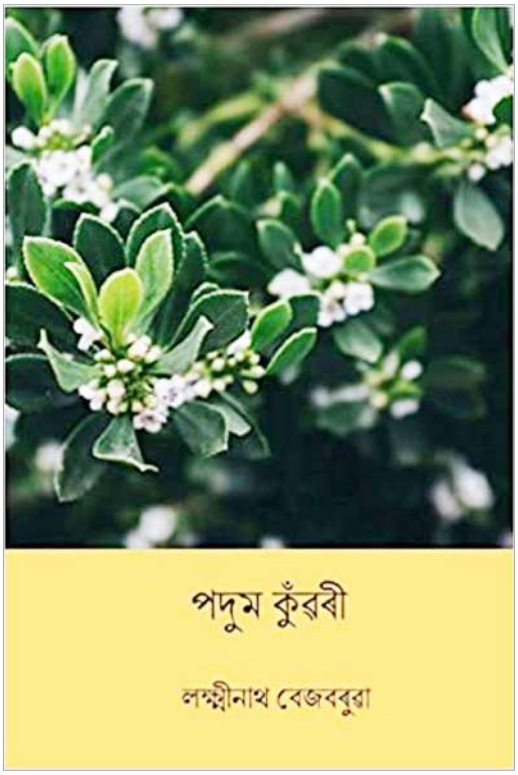

উপন্যাসখনৰ আন এটি উল্লেখযোগ্য চৰিত্ৰ হ'ল নায়িকা পদুম কুঁৱৰী। পদুম, পদুম ফুলৰ দৰেই পৱিত্ৰ আৰু লাজুকী লতাৰ দৰে অলপতে জঁয় পৰি যোৱা বিধৰ চৰিত্ৰ। পদুমে সৰুৰে পৰা মৰমৰ মাজত ডাঙৰ-দীঘল হৈছিল। সেইবাবে দুখ-যন্ত্ৰণা সহ্য কৰিবলৈ টান পাইছিল। মাকৰ মৃত্যুৰ পিছত পদুম পাগলীৰ দৰে হৈ পৰিছিল। আনহাতে, পিতৃ হৰদত্ত আৰু খুড়াক বীৰদত্তৰ মৃত্যুত পদুম ইমান অধীৰ হৈ পৰিছিল যে বহুদিনৰ মূৰত সূর্যকুমাৰক পায়ো নিজৰ মনৰ স্থিৰতা ঘূৰাই আনিবলৈ সক্ষম নহ'ল। সেইবাবে পদুমে সূর্যকুমাৰক পায়ো বিষ খাই প্ৰাণ ত্যাগ কৰিলে। এনেধৰণৰ কথা-বার্তাৰ বাবে বেজবৰুৱাৰ 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনৰ উল্লেখযোগ্য নায়িকা 'পদুম' চৰিত্ৰৰ মাজত অস্থিৰতা আৰু দুর্বল মনৰ পৰিচয় দেখিবলৈ পোৱা যায়।

উপন্যাসখনৰ আন এটি নাৰী চৰিত্ৰ হ'ল কলীয়া ভোমোৰা বৰফুকনৰ একমাত্ৰ মাউৰী ছোৱালী ফুল আইদেউ। ফুল আইদেউ ফুলৰ দৰে কোমল, সুন্দৰী, সর্বগুণী, সুলক্ষ্মী গাভৰু ছোৱালী। নামনিৰ ডেকা অনা-আহোম সূর্যকুমাৰক উজনিৰ গাভৰু ফুলে দেখাৰ লগে লগে প্ৰথম দৃষ্টিতে সূর্যৰ প্ৰতি অনুৰাগ জন্মিল। ফুল আৰু সূর্যৰ মাজত গঢ়ি উঠিল গভীৰ আত্মীয়তা। কিন্তু ফুলৰ অন্তৰত উথলি থকা অকৃত্ৰিম মৰম-চেনেহৰ মাজতো সূর্যকুমাৰে প্ৰথম প্ৰেয়সী পদুম কুঁৱৰীক পাহৰিব পৰা নাছিল। ফুল আইদেৱে সকলো জানি বুজিও সূর্যক নিঃস্বার্থহীনভাৱে ভাল পাইছিল। উপন্যাসখনৰ শেষত হৰদত্তৰ জীয়ৰী পদুমে আহোম এজনৰ হাততে সতীত্ব হেৰুওৱাৰ উপক্ৰম হোৱাত মুৰ্চ্ছিত হ'ল। পিছত আত্মহত্যা কৰিলে। তেতিয়াও ফুল আইদেউ চৰিত্ৰৰ মাজত বুদ্ধিমত্তা আৰু কার্য তৎপৰতা দেখা যায়। ফুলৰ অনুৰোধমর্মে কলীয়া ভোমোৰা বৰফুকনে সূর্য আৰু পদুমৰ মৃতদেহ দুটা গুৱাহাটীলৈ আনি মৈদাম খন্দাই সৎকাৰ কৰিছিল। সেই মৈদামতে ফুল আইদেৱেও আত্মহত্যা কৰি অনন্ত শয্যাত শয়ন কৰিছিল। ফুলৰ এই কার্যই ভাৰতীয় আদর্শত ত্যাগৰ মহিমাক প্ৰকট কৰি তুলিছে।

উপন্যাসখনত কলীয়া ভোমোৰা বৰফুকন এটি মনোৰম চৰিত্ৰ। চৰিত্ৰটিত কুটনীতিজ্ঞ, দূৰদর্শী, নিষ্ঠুৰ, অত্যাচাৰী, বিশ্বাসঘাতক আদি দিশ স্পষ্টভাৱে প্ৰতিফলিত হৈছে। বৰফুকন নিষ্ঠুৰ, কিন্তু জীয়েক ফুলৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰযোজ্য নহয়। হৰদত্তক বধ কৰিবলৈ সূর্য গোটালে বুলি ভাবি সূর্যকুমাৰক তেওঁ ঘৰৰ দলিচা পাৰি দিলে। এনে কার্যত বৰফুকন চৰিত্ৰটোৰ বিচক্ষণতা প্ৰকাশ পাইছে। কিন্তু কোনো ধৰণৰ আঁতিগুৰি নোলোৱাকৈ জীয়েক ফুলক কিছুমান অসাধ্য সাধন কৰিবলৈ দিয়া কার্যত চৰিত্ৰটোত দুই এটি দোষ ৰৈ গৈছে। তথাপিও চৰিত্ৰটিত কুট কৌশলৰ দূৰদর্শিতা ভালদৰে প্ৰতিফলিত হৈ নুঠিল। আনহাতে, বুৰঞ্জীমতে হৰদত্ত স্বেচ্ছাচাৰী বুলি জনা যায় যদিও পদুম কুঁৱৰী উপন্যাসখনত চৰিত্ৰটোৰ বীৰত্ব, স্বাধীনচিতীয়া আৰু বাৎসল্য স্নেহ প্ৰকাশ পাইছে। হৰদত্তৰ বিপদৰ সময়ত ধীৰ-স্থিৰ হৈ কাম কৰিব পৰা ক্ষমতা আছে। ধৈর্য আৰু আত্মৰক্ষাৰ কৌশল তেওঁ ভালদৰে জানে। আনহাতে, বীৰদত্ত আৰু ৰঘু চৰিত্ৰৰ মাজত অদূৰদর্শিতা আৰু উদণ্ডতা প্ৰকাশ পাইছে। বীৰদত্তৰ উক্তিবোৰত বীৰত্ব প্ৰকাশ পালেও কাজে-কামে তাৰ উপযুক্ত প্ৰতিফলন নঘটিল। সেইবাবে হৰদত্ত-বীৰদত্ত বিদ্রোহী দলৰ নেতৃত্ব কৰিব পৰা ক্ষমতা, বীৰত্ব আৰু সংগঠন কৌশল থকাৰ পিছতো ভালদৰে ফুটি নুঠিল।

বেজবৰুৱাদেৱে 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনৰ চৰিত্ৰ চিত্ৰণত বিশেষ গুৰুত্ব আৰোপ কৰা নাছিল। উপন্যাসখনৰ প্ৰায়বোৰ প্ৰধান চৰিত্ৰই ঠাই বিশেষে ত্ৰুটিপূৰ্ণ হৈ পৰিছিল। কিন্তু উপন্যাসখনত অপ্ৰধান চৰিত্ৰ হিচাপে কোৰ্মা আৰু কুৰ্মী নামৰ দুটা চৰিত্ৰ আছে। ঔপন্যাসিকে এই চৰিত্ৰ দুটা সুন্দৰভাৱে অংকন কৰিছে। কোৰ্মা আৰু কুৰ্মী চৰিত্ৰ দুটাই উপন্যাসখনৰ কাহিনীক পৰিণতিৰ ফালে আগবঢ়াই নিয়াত উল্লেখযোগ্য ভূমিকা লৈছে। চৰিত্ৰ দুটিৰ শোকাৱহ পৰিণতিয়ে পাঠকৰ সহানুভূতি লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

উপন্যাসখনৰ সামাজিক চিত্ৰ ঃ

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অসমীয়া মানুহৰ সাধাৰণ ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, সাজ-পাৰ, ধৰ্মৰ প্ৰভাৱ আদিৰ চিত্ৰ সুন্দৰভাৱে উপস্থাপন কৰিছে। উপন্যাসখনৰ উল্লেখযোগ্য নাৰী চৰিত্ৰ পদুম আৰু ফুল আইদেউ আদৰ্শ অসমীয়া গাঁৱলীয়া ছোৱালী। পদুম আৰু ফুল দুয়োটা চৰিত্ৰৰ মাজতে দৰা-কইনা খেলা কাৰ্য, মেকুৰী মইনা আদি পোহা, বস্তু খোৱাৰ শৃংখলা, কামৰ পৰিপাটী আদিত নিভাঁজ অসমীয়া ছোৱালীৰ পৰিচয় দেখিবলৈ পোৱা যায়। পদুম কুঁৱৰীৰ মানসিক অৱস্থাৰ লগত মিলাই নিশাৰ ভয়লগা বৰ্ণনা দাঙি ধৰা, অসমীয়া ছোৱালী পদুমৰ শোৱা কোঠাৰ বৰ্ণনা, ফুল আইদেউৰ ফুলনিবাৰীত ঘটা কপৌ চৰাইৰ ঘটনা আদিত অসমীয়া সমাজৰ ছৱি দেখিবলৈ পোৱা যায়। উপন্যাসখনৰ প্ৰথম আধ্যাত পদুমৰ শোৱা খোটালিত থোৱা বস্তুবোৰৰ বৰ্ণনা তলত দাঙি ধৰা হৈছে এনেদৰে— "তেওঁৰ মূৰ শিতানৰ ওচৰতে এটা সৰিয়হৰ তেলৰ চাকি ঢিমিক-ঢিমিককৈ জ্বলিব লাগিছে। চাকিটোত যে তেল নথকা বাবে হৈছে এনে নহয়। তাত তেল আছে, কেৱল সলাকানি ডালৰ আগটো কাটি বঢ়াই দিয়া হোৱা নাই বাবেহে তেনেকৈ সি কলমটিয়াব লাগিছে। চাকিটোৰ পৰা অলপমান আঁৰত, সেইফালেই বেৰত আঁৰি থোৱা এটা কাঠৰ হেঙুলীয়া সৰুকৰণিত এখন হেজাৰী ঘোষা পুথি। ভৰি পথানৰ ফালে দুটা বেতৰ কাপোৰ থোৱা জপা আৰু হাতনি পেৰা এখন বাঁহৰ চাঙৰ ওপৰত আছে। ... শোৱাপাটীৰ ওচৰতে এটা বটাত চেনী, কটাৰী আৰু তামোলপাণ। পাটীখন সৰ্বসাধাৰণ মানুহৰ যেনেকুৱা, তেনে এখন হেঙুলীয়া কুন্দা খুৰাৰে কঁঠাল কাঠৰ চালপীৰা, এখন কঠ, এখন তুলি, এখন তলত পৰা, এটা গাৰু আৰু এখন কাপোৰ। এই খোটালিটোত কাপোৰ থোৱা দাঁড়, পিকদান চৰিয়া, লেটা আৰু বাটি প্ৰভৃতি ভালেমান বস্তু আছে।" উপন্যাসখনত এনে দীঘলীয়া বৰ্ণনাই পুৰণি অসমীয়া সম্ভ্ৰান্ত পৰিয়ালৰ জীয়ৰীৰ শোৱা খোটালিৰ এটি নিখুঁত চিত্ৰ দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হয়। ঠিক তেনেকৈ উপন্যাসখনত ব্যৱহৃত নামঘোষাৰ ফাঁকি, বৰগীতৰ ফাঁকি, কৃষ্ণক চিন্তা কৰা কথা আদিয়ে অসমীয়া সমাজত বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰভাৱ সম্পৰ্কীয় কথাখিনিৰ সম্ভেদ আমাক দিবলৈ চেষ্টা কৰে। তদুপৰি সংস্কাৰ, সৎকাৰ, অটব্য অৰণ্যৰ প্ৰাকৃতিক শোভাৰ বৰ্ণনাই স্থানীয় পৰিৱেশৰ কথা জানিবলৈ দিছে।

উপন্যাসখনৰ উপস্থাপন কৌশল ঃ

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখন পোন্ধৰটা চুটি-দীঘল আধ্যাত বিভক্ত এখন প্ৰেমমূলক উপন্যাস। উপন্যাসখনৰ পোনতে চকুত পৰা এটি কৌশল হ'ল, প্ৰতিটো আধ্যাৰ আৰম্ভণিতে কথাবস্তুৰ সৈতে সামঞ্জস্য ৰক্ষা কৰি ইংৰাজী উদ্ধৃতি আৰু অধ্যায়সমূহক একো একোটা সুকীয়া নামকৰণেৰে যথার্থ ৰূপত দাঙি ধৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে। চাৰ ওৱাল্টাৰ স্কটে এই কৌশল অৱলম্বন কৰিছিল। বেজবৰুৱাদেৱে চাৰ ওৱাল্টাৰ স্কটক অনুসৰণ কৰা যেন ভাব হয়।

'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনৰ ভাষা সাৱলীল, কাব্যিক উপমাযুক্ত, জতুৱা ঠাঁচ, প্ৰবচন, পটন্তৰ আদিৰে নিভাঁজ অসমীয়া। উপন্যাসখনৰ তৃতীয় আধ্যাটিত ঔপন্যাসিক পদুমৰ প্ৰতি সহানুভূতিৰে সিক্ত। উপন্যাসখনত আবেগ গভীৰ কাব্যিক উচ্ছাসপূৰ্ণ বৰ্ণনাই প্ৰেমৰ অনুভৱক গভীৰতৰ কৰি তুলিছে। উদাহৰণস্বৰূপে— "সূৰ্যকুমাৰ-পদুমৰ হৃদয় সৰোবৰ একেটি পদ্মৰ একোটি ভোমোৰা, সেই ভোমোৰাক এৰি পদুম কেনেকৈ থাকিব? সেই ভোমোৰাটিৰ অবিহনে পদুম শুকাই যাব যে? সেই ভোমোৰাটিক পদুমৰ পৰা নিষ্ঠুৰতা চৰণ কৰি তুমি আঁতৰ কৰা, তুমি ভোমোৰাকো হেৰুৱাবা, পদুমকো হেৰুৱাবা হায় .....।"

বেজবৰুৱাই 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনত হাস্যৰসক স্থান দিছে। উপন্যাসখনৰ চতুৰ্থ আধ্যাত নালীয়া-কেৰপাই আৰু সৈনিক দুজনৰ মাজত হোৱা কথোপকথনত হাস্যৰস দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে—

"নালীয়া ঃ 'এৰা এইখিনিতে এৰিছিলো। কিবা পাতনিৰ কথা ক'ব খুজিছিলা।'

কেৰপাই ঃ 'অ' হয়, পাতনিৰ কথা কৈছিলো। এৰা এহালিচা পাতনিত আমাৰ কি সকাম আছে? ঘাই কথা যিমান সোনকালে কোৱা যায় সিমান ভাল, কিয়নো...।'

বৰফুকন ঃ 'তই পাতনি নকৰোঁ বুলি দেখোন পাতনি কৰিয়েই হায়ৰাণ কৰিলি। ঘাই কথা ক, ঘাই কথা ক।"

বেজবৰুৱাই 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনৰ পঞ্চম আধ্যাত প্রেম সম্পর্কীয় ধাৰণা এনেধৰণে দাঙি ধৰিছে— "প্রেমে দেশ নামানে, কাল নামানে, পাত্র নামানে। প্রেমৰ স্থান-অস্থান, সময়-অসময়, উপযুক্ত-অনুপযুক্ত জ্ঞান নাই। অনুৰাগ কাঁড়ে যাৰ হৃদয় এবাৰ বিন্ধিলে তেওঁ আৰু অনুৰাগৰ সেই বস্তুটি নাপায় মানে সংসাৰত সুখ নাপায়।"

গতিকে ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা দেখা যায় যে, 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনৰ উপস্থাপন কৌশল হিচাপে ঠাই বিশেষে উৎকণ্ঠা, বর্ণনাৰ চাতুর্য আৰু পৰিৱেশ সৃষ্টি আদিয়ে উপন্যাসখন সুখকৰ কৰি তুলিছে।

সামৰণি ঃ

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'পদুম কুঁৱৰী' উপন্যাসখনত প্রেম-অনুৰাগ মিশ্রিত ত্রিপদী কাহিনীটোৱে কৰুণ পৰিণতিৰ পিনে আগবাঢ়ি যোৱাৰ বাবে ঐতিহাসিক ঘটনাটোৱে বেছি গুৰুত্ব লাভ নকৰিলে। উপন্যাসখনত ঔপন্যাসিকে চৰিত্র সৃষ্টি আৰু ঘটনাচক্রৰ বিকাশত বেছি গুৰুত্ব দিয়া দেখা নগ'ল। সেইবাবে হৰদত্ত, বীৰদত্তৰ শৌর্য-বীর্য, কলীয়া ভোমোৰা বৰফুকনৰ কূট-কৌশল, কামৰূপী প্রজাৰ বিপ্লৱৰ প্রস্তুতি সঠিকভাৱে চিত্রিত নহ'ল। তথাপিও বেজবৰুৱাদেৱে যি মহান উদ্দেশ্য সন্মুখত ৰাখি 'পদুম কুঁৱৰী' ৰচনা কৰিছিল, সেই উদ্দেশ্য সাধনত বেজবৰুৱা সার্থক হৈছিল। লগতে বুৰঞ্জীৰ ঘটনাৰ লগত প্রণয়মূলক ঘটনাটো অঙ্গাঙ্গীভাৱে জড়িত কৰি দিয়া বাবে বেজবৰুৱাৰ 'পদুম কুঁৱৰী' এখন সময়োপযোগী উপন্যাস বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি।

সহায়ক গ্রন্থ ঃ

১। শর্মা, সত্যেন্দ্র নাথ ঃ অসমীয়া উপন্যাসৰ ভূমিকা, সৌমাৰ প্রকাশ, প্রথম প্রকাশ, ১৯৬৫।

২। ভৰালী, শৈলেন ঃ অসমীয়া ঐতিহাসিক উপন্যাস, বাণী প্রকাশন, প্রথম প্রকাশ, ১৯৮৭।

৩। গোস্বামী, অশোক কুমাৰ আৰু দেৰ গোস্বামী, ৰঞ্জিত কুমাৰ (সাধাৰণ সম্পাদক আৰু সম্পাদক) ঃ অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (পঞ্চম খণ্ড), প্রকাশক ঃ সঞ্চালক, আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, প্রথম প্রকাশ, চেপ্তেম্বৰ, ২০১৫।

৪। কটকী, প্রফুল্ল ঃ সাহিত্যৰথী, জ্যোতি প্রকাশন, প্রথম প্রকাশ, ২০০৬।

৫। দাস, অমল চন্দ্র (সম্পাদনা) ঃ অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্রমা, বনলতা প্রকাশন, মে', ২০১২।

৬। শর্মা, হেমন্ত কুমাৰ ঃ সাহিত্যৰ জেউতি, অসম বুক ডিপো, প্রথম প্রকাশ, ১৯৯০।

প্ৰবন্ধ

মানৱ অধিকাৰৰ বাগধাৰাত খিলঞ্জীয়াৰ সাংস্কৃতিক অধিকাৰ - এক পৰ্যালোচনা

ড° প্ৰাণজিৎ শইকীয়া

সহকাৰী অধ্যাপক
ৰাজনীতি বিজ্ঞান বিভাগ
ডুমডুমা মহাবিদ্যালয
ম'বাইল ঃ ৯৭০৬৮১৩৮০৯
ই-মেল ঃ dr.pranjit1981@gmail.com

সংশিপ্তসাৰ ঃ

মানৱ অধিকাৰৰ বাগধাৰাত খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ সাংস্কৃতিক অধিকাৰ হৈছে গৱেষণাৰ এটা অত্যন্ত গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়। দ্বিতীয় বিশ্ব যুদ্ধোত্তৰ কালত সূচনা হোৱা গণতান্ত্ৰিকৰণ প্ৰক্ৰিয়া আৰু পৰবৰ্তী সময়ত ৰাষ্ট্ৰ সংঘৰ দ্বাৰা আত্ম-নিৰ্ধাৰণৰ অধিকাৰক স্বীকৃতি হোৱাৰ পিছত খিলঞ্জীয়া লোকৰ স্বকীয় সংস্কৃতি, পৰম্পৰা আৰু ভূমিৰ অধিকাৰৰ দাবীসমূহ অধিক শক্তিশালী হৈ পৰিছিল। বৰ্তমানৰ সময়ত খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ অধিকাৰৰ বিষয়টো সাৰ্বজনীন পৰিঘটনা হিচাপে বিবেচিত হৈ পৰিছে। সাম্প্ৰতিক কালত এনে কিছুমান আন্তৰ্জাতিক আৰু আঞ্চলিক পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰা হৈছে। এনে পদক্ষেপৰ অংশ হিচাপেই ২০০৭ চনত ৰাষ্ট্ৰ সংঘই খিলঞ্জীয়া লোকৰ অধিকাৰৰ ঘোষণাপত্ৰ গ্ৰহণ কৰি বিষয়টোৰ ওপৰত আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সম্প্ৰদায়ৰ সমৰ্থন আৰু দায়বদ্ধতা প্ৰকাশ কৰিছিল। গতিকে, এনে প্ৰেক্ষাপটত এই গৱেষণাপত্ৰৰ জড়িয়তে আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় আইনৰ প্ৰচলিত উৎসসমূহৰ উদ্ধৃতিৰে খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ সংস্কৃতি, আত্ম-নিৰ্ধাৰণ আৰু ভূমি অধিকাৰৰ বিষয়টো অধ্যয়ন কৰিব বিচৰা হৈছে। ইয়াৰোপৰি, খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ সাংস্কৃতিক অধিকাৰ সম্পৰ্কে অদ্যপি বৈ যোৱা প্ৰত্যাহ্বানসমূহৰ বিষয়েও আলোচনা কৰা হ'ব।

১.০ অৱতাৰণিকা ঃ

বৰ্তমান বিশ্বত খিলঞ্জীয়াৰ অধিকাৰ অন্যতম আলোচিত বিষয়। আধুনিক যুগত খিলঞ্জীয়া লোকসকলেও নিজৰ তেওঁলোকৰ নিজৰ অস্তিত্ব বজাই ৰাখিবলৈ যৎপৰোনাস্তি প্ৰচেষ্টা চলাই আহিছে। এই কথা সত্য যে, প্ৰতিটো খিলঞ্জীয়া জাতি-জনগোষ্ঠীৰে দাবী বা আশা-আকাংক্ষাসমূহ পৃথক। কিন্তু ইয়াৰ মাজতো এনে জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহৰ মাজত দুই প্ৰকাৰৰ সাদৃশ্য থকা দেখা পোৱা যায়। সেই সাদৃশ্যসূহ হ'ল (১) নিজৰ সংস্কৃতিক ঐতিহ্যৰ সংৰক্ষণ আৰু হাবিয়াস আৰু (২) এনে জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহে সততে নিজৰ পূৰ্বপুৰুষৰ ভূমিত আত্মিকভাবি জীয়াই থকাৰ পোষকতা কৰে। যিবোৰ জাতি-জনগোষ্ঠীৰ নিজৰ ভূমিৰ লগত

এনে বিশেষ সম্পর্ক থাকে সেই জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহ ক্ষমতা আৰু সম্পদৰ দ্বাৰা বিতাড়িত আন সমূহ বা গোটসমূহৰ পৰা পৃথক হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। তদুপৰি বিভিন্ন দেশ আৰু আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সম্প্ৰদায়ে বিভিন্ন আইন প্ৰণয়নৰ দ্বাৰা তেওঁলোকৰ এই আশা-আকাংক্ষা আৰু ঐতিহ্যক স্বীকৃতি প্ৰদান কৰাৰ লগতে সেইবোৰৰ সংৰক্ষণৰো পোষকতা কৰিছে। এই ক্ষেত্ৰত ৰাষ্ট্ৰসংঘই প্ৰণয়ন কৰা খিলঞ্জীয়া লোকৰ অধিকাৰৰ ঘোষণা পত্ৰখন মাইলৰ খুটি হিচাপে বিবেচিত হৈছে। খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ আশা-আকাংক্ষাসমূহক স্বীকৃতি প্ৰদানৰ বাবে বিশ্ব সম্প্ৰদায়ে তেওঁলোকে আগবঢ়োৱা দাবীসমূহক গভীৰভাবে অধ্যয়ন কৰিছে আৰু তাৰ কাৰণে প্ৰয়োজনীয় পদক্ষেপসমূহো গ্ৰহণ কৰিছে। সেই উদ্দেশ্যেই মানৰ অধিকাৰৰ পৰম্পৰাগত ধাৰণাক কিছু পৰিমাণে সংশোধনো কৰিব লগা হৈছে। উদাৰণস্বৰূপে, আত্ম-নিৰ্ধাৰণৰ বিষয়টোৰ লগত পূৰ্বে ৰাজনৈতিক ক্ষমতাৰ সম্পৰ্ক আছিল যদিও পৰবৰ্তি সময়ত সাংস্কৃতিক উপাদানসমূহৰ সংৰক্ষণ আৰু সংবৰ্ধনো এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ উপাদান হিচাপে গণ্য কৰা হৈছিল।[১]

একেদৰে যেতিয়ালৈকে ক্ষিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ মন-মগজুত তেওঁলোকে উত্তৰাধিকাৰ সূত্ৰে লাভ কৰা ঐতিহ্যৰ প্ৰতি ভাবুকিৰ সৃষ্টি নহ'ব, তেতিয়ালৈকে সাংস্কৃতিক আত্মনিৰ্ধাৰণে পৰিবৰ্তন বা অভিযোজনৰ ক্ষেত্ৰত, একত্ৰিকৰণ বা সমন্বয় স্থাপনৰ ক্ষেত্ৰতো কোনো ধৰণৰ বাধাৰ সৃষ্টি নকৰে। খিলঞ্জীয়া লোকসকলক তেওঁলোকৰ ঐতিহ্য আৰু পৰম্পৰা জীয়াই ৰখাৰ সুযোগ প্ৰদানৰ বাবে বিশ্ব সম্প্ৰদায়ে যোগাত্মক আৰু সৃষ্টিশীল পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰিব লাগিব। গতিকে, এনে প্ৰেক্ষাপটত এই গৱেষণাপত্ৰৰ জড়িয়তে আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় আইনৰ প্ৰচলিত উৎসসমূহৰ উদ্ধৃতিৰে খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ সংস্কৃতি, আত্ম-নিৰ্ধাৰণ আৰু ভূমি অধিকাৰৰ বিষয়টো অধ্যয়ন কৰিব বিচৰা হৈছে। ইয়াৰোপৰি, খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ সাংস্কৃতিক অধিকাৰ সম্পৰ্কে অদ্যপি বৈ যোৱা প্ৰত্যাহ্বানসমূহৰ বিষয়েও আলোচনা কৰা হ'ব। অৱশ্যে কোনো এটা জাতি কেনেকৈ জীয়াই থাকে বা আগবাঢ়ি যাব, এই সমগ্ৰ কথাবোৰ নিৰ্ভৰ কৰিব, সেই জাতিটোক প্ৰতিনিধিত্ব কৰা লোকসকলৰ ওপৰতো।

২.০ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

নিসন্দেহে খিলঞ্জীয়াৰ সাংস্কৃতিক অধিকাৰৰ বিষয়টো এটা সাৰ্বজনীন বিষয়। যদিও প্ৰতিটো জাতি-জনগোষ্ঠীৰে সাংস্কৃতিক অধিকাৰ এটা প্ৰকৃতিগত অধিকাৰ, তথাপিও ইয়াৰ ফলত বিভিন্ন সময়ত ইয়াৰ বাবে সৃষ্টি হোৱা সামাজিক জটিলতাসমূহে ব্যাপক জাতিগত সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰি আহিছে। বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহে নিজস্ব পৰিচয়ৰ স্বকীয়তা ৰক্ষা কৰি এক বৃহত্তৰ সমাজ গঠন প্ৰক্ৰিয়াত অংশগ্ৰহণ কৰাৰ প্ৰচেষ্টা চলাইছে যদিও পৰিতাপৰ কথা এয়ে যে, কিছুমান আধিপত্যবাদী জাতিয়ে এনে জাতিসমূহক প্ৰভাৱিত কৰাৰ প্ৰচেষ্টা চলোৱাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক পৰিবেশ বিনষ্ট হোৱাৰ বহুতো উদাহৰণ পোৱা যায়। গতিকে এই গৱেষণা পত্ৰৰ যোগেদি আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সম্প্ৰদায়ে এনে জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহৰ সাংস্কৃতিক পৰিচয় আৰু ঐতিহ্যক সুৰক্ষা প্ৰদানৰ বাবে যিসমূহ আইনগত ব্যৱস্থাৱলী গ্ৰহণ কৰিছ আৰু তাৰ ফলত এই জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহৰ ওপৰত কেনে ধৰণৰ প্ৰভাৱ পৰিছে, সেই বিষয়ে অধ্যয়ন কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

৩.০ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ আৰু পদ্ধতি ঃ

যিহেতু ইতিমধ্যেই উল্লেখ কৰা হৈছে যে খিলঞ্জীয়াৰ সাংস্কৃতিক অধিকাৰৰ বিষয়টো সাৰ্বজনীন বিষয়, গতিকে ইয়াক কোনো এক ভৌগলিক সীমাবদ্ধতাৰ মাজৰ সামৰি নথৈ গোলকীয় দৃষ্টিভঙ্গী (global perspective) ৰে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

ইয়াৰ যোগেদিয়ে সাম্প্ৰতিক বিশ্বত এই বিষয়টো সন্দৰ্ভত হোৱা আলোচনা বা বিতৰ্কসমূহৰ বিষয়ে আৱগত হোৱাৰ অৱকাশ থাকিব।

একেদৰে, এই বিষয়টোৰ সন্দৰ্ভত আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সম্প্ৰদায়ে গ্ৰহণ কৰা পদক্ষেপসমূহৰ জ্ঞাত হোৱাৰ সুযোগ থাকিব। এই অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি (Analytical method) আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি (Descriptive method) ব্যৱহাৰৰ যোগেদি গোটেই বিষয়টো ওপৰত আলোকপাত কৰিবলৈ প্ৰচেষ্টা চলোৱা হ'ব। এই গৱেষণা পত্ৰ প্ৰস্তুত কৰাৰ সময়ত প্ৰয়োজনীয় তথ্য, ডাটা আদিৰ বাবে গৌণ উৎস (Secondary sourcesৰ সহায় লোৱা হৈছে।

৪.০ অধিকাৰৰ বাগধাৰাত খিলঞ্জীয়া লোকসকল ঃ

যদিও UNDRIP আৰু অন্যান্য আন্তর্জাতিক চনদসমূহে ব্যক্তি আৰু সামূহিক - উভয় অধিকাৰকে ইয়াৰ ভিতৰত সন্নিবিষ্ট কৰিছে, কিন্তু খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ ক্ষেত্রত দেখা দিয়া আটাইতকৈ ডাঙৰ সমস্যাটো হ'ল যে, তেওঁলোকক প্রদান কৰা অধিকাৰসমূহ প্রধানত সামূহিক অধিকাৰহে, ইয়াত ব্যক্তি অধিকাৰৰ কথা কোৱা হোৱা নাছিল। গতিকে এই অধিকাৰসমূহৰ পৰম্পৰাগত মানৱ অধিকাৰৰ পৰা পৃথক আছিল। কাৰণ পৰম্পৰাগত মানৱ অধিকাৰবলমূহ ব্যক্তিগত অধিকাৰক কেন্দ্র কৰি গঢ়ি উঠিছিল।[২] অৱশ্যে যদিহে মানৱ অধিকাৰক কেৱল ব্যক্তি স্বতন্ত্রতা আৰু ব্যক্তি উপভোগ্যতালৈ সংকুচিত কৰি তোলা হয়, তেনেহ'লে ই নিশ্চিতভাৱে মানৱ প্রকৃতিৰ পৰিপন্থী বিষয় হিচাপে বিবেচিত হ'ব। তদুপৰি, মানব প্রজাতিৰ সামূহিক সম্ভাৱনীয়তাৰ সম্পূর্ণ বিকাশ সাধনৰ মানৱ অধিকাৰৰ যি লক্ষ্য, ই তাৰো পৰিপন্থী হৈ পৰিব।

এই কথা অনস্বীকার্য যে, যিকোনো মানৱ সম্প্রদায়ৰেই মনস্তাত্বিক বাস্তৱতা ভিন্নমুখী। তদুপৰি প্রতিটো ব্যক্তিসত্বাই যিকোনো এটা সম্প্রদায়ৰেই অংশ। এই ব্যক্তি সত্বাসমূহৰ প্রতিটোয়েই কোনো এটা নৃগোষ্ঠীয় লিংগ বা সামাজিক শ্রেণীত জন্ম গ্রহণ কৰে, কোনো এটা সামাজিক পৰিৱেশত ডাঙৰ দীঘল হয় আৰু তেওঁলোকৰ পছন্দ-অপছন্দই তেওঁলোকক ইয়াৰ অংশীদাৰ কৰি তোলে। গতিকে কোনো এটা সদস্যতা ব্যক্তি সত্বাৰ মৌলিক প্রয়োজনীয়তা। ইয়াৰ যোগেদিয়েই তেওঁলোকৰ যি আত্মোপলব্ধি গঢ়ি উঠিব, সেয়া মানুহৰ বাবে অত্যন্ত গুৰুত্বপূর্ণ।[৩] ব্যক্তি আৰু সামাজিক গোটসমূহৰ মাজত অবিৰত আন্তঃসম্বন্ধসমূহ ব্যক্তি সত্বাৰ দ্বাৰাই সৃষ্টি আৰু পৰিবর্তন হোৱাৰ সমান্তৰালভাবে সমাজৰ আচৰণ সমূহো পুনৰ গঠন আৰু সংশোধন হয়।[৪] ব্যক্তিৰ বাবে সমাজ হৈছে আত্ম প্রকাশৰ প্রধান উপাদান আৰু মানুহৰ পৰিচয়ৰ আটাইতকৈ গুৰুত্বপূর্ণ অংশ। গতিকে সমাজৰ অ্যান্যসকলৰ লগত পাৰস্পৰিক আদান-প্রদান আৰু নির্ভৰশীলতা হৈছে মানৱ অস্তিত্বৰ বাবে এটা প্রয়োজনীয় চর্ত।[৫]

এই ক্ষেত্রত যদিহে মানৱ অধিকাৰৰ দার্শনিক পৃষ্ঠভূমি পর্যালোচনা কৰি চোৱা যায় তেনেহলে দেখা পোৱা যাব যে, ইমানুৱেল কাণ্টৰ মানৱ অধিকাৰ সম্বন্ধীয় নীতিগত পদ্ধতিটো মর্যদাৰ অখণ্ডনীয় সিদ্ধান্তক কেন্দ্র কৰি গঢ়ি উঠিছে।[৬] নেইল মেক কর্মিকৰ মতে, ব্যক্তিৰ সন্মানৰ প্রতি থকা কাণ্টৰ আদর্শৰ অর্থ হ'ল, এজনে আনজনক কৰাৰ ক্ষেত্রত দায়বদ্ধতা প্রকাশ কৰা, যাৰ ওপৰত নির্ভৰ কৰি পৰবর্তি সময়ত নিজৰ ধাৰণা নিজেই গঢ়ি উঠে, সেয়োই হৈছে "সামাজিক সম্প্রদায়", যিটোক উপযুক্তভাবে প্রতিষ্ঠানিক সুৰক্ষা প্রদানৰ প্রয়োজনীয়তা আছে।[৮] একেদৰে উইল কিমলিকাই উল্লেখ কৰিছিল যে, গোট বা সমূহে মানুহৰ কর্ম নিৰূপন কৰিব পৰা বিকল্প পৃষ্ঠভূমি গঢ়ি তোলাৰ বাবে প্রয়োজনীয় সামাজিক পৰিকাঠামো সৃষ্টি কৰে [৯] আৰু ইয়াৰ সমান্তৰালভাবে তেওঁলোকৰ ওপৰত ব্যক্তিৰ উৎকর্ষ সাধনৰ বাবে প্রয়োজনীয় অধিকাৰসমূহো থকাটো প্রয়োজন।[১০] এই সন্দর্ভত অন্যান্য একাংশ বিশ্লেষকে যুক্তি আগবঢ়াইছে যে, গোট বা সমূহবোৰৰ নৈতিক মূল্যবোধৰ স্পষ্ট সামূহিক স্বার্থ থাকে, যিবোৰ ব্যক্তিসমূহৰ স্বার্থৰ সমকক্ষ হয়।[১১]

মনুহৰ প্রয়োজনীয়তা আৰু আশা-আকাংক্ষাসমূহৰ বিষয়ে ঐতিহাসিকভাবে পর্যালোচনা কৰিবৰ কাৰণে ব্যক্তি আৰু সমূহ উভয়ৰে গঠন আৰু তেওঁলোকে জন্ম গ্রহণ কৰা সম্প্রদায়সমূহৰ ভাগ্য বা পছন্দ সুৰক্ষিত কৰি ৰাখিবৰ বাবে আইন কার্যকৰী কৰাতো প্রয়োজন। গতিকে ব্যক্তি বা সম্প্রদায়সমূহৰ এনে সুৰক্ষিত ভৱিষ্যতৰ বাবেই মানৱ অধিকাৰৰ প্রয়োজনীয়তা আহি পৰিছিল। তদুপৰি, গোট বা সম্প্রদায়সমূহৰ অনিশ্চয়তা, বিশেষকৈ তেওঁলোকৰ সংস্কৃতিৰ সুৰক্ষাৰ বাবে এনে অধিকাৰ সমূহ জৰুৰী হৈ পৰিছিল। এনে প্রেক্ষাপটত মানৱ অধিকাৰৰ প্রাসংগিকতা সন্দর্ভত কেইটামান অন্যন্ত গুৰুত্বপূর্ণ আৰু জটিল প্রশ্ন উথাপিত হৈছে - মানুহৰ সামাজিক অধিকাৰসমূহ প্রভাৱশালী সামূহিক গোষ্ঠীসমূহৰ প্রেক্ষাপটত কিদৰে সুৰক্ষিত হৈ থাকিব? ঠিক একেদৰে, এই সন্দর্ভত উত্থাপিত হোৱা আন এটা প্রশ্ন হ'ল আন্তর্জাতিক আইনৰ দ্বাৰা ব্যক্তিসমূহক সুৰক্ষিত কৰিব পাৰিলেও ক্ষুদ্র ক্ষুদ্র জাতি সত্বাসমূহৰ যিবোৰ অধিকাৰ বা তেওঁলোকৰ অস্তিত্ব, সেয় বর্তমানৰ নব্য-উপনিবেশিকতাবাদী যুগত কিদৰে সুৰক্ষিত কৰিব পৰা যাব, সেয়াও বর্তমান সময়ৰ এটা আটাইতকৈ ডাঙৰ প্রশ্ন হিচাপে পৰিগণিত হৈ পৰিছে।

এই প্রশ্নসমূহৰ উত্তৰ পাবলৈ সমূহ বা গোটবোৰক

'জৈৱিক' আৰু 'অজৈৱিক' সমূহ বা গোট হিচাপে বিভক্ত কৰিব লাগিব।[১২] প্ৰথম ভাগটো মানুহৰ সামগ্ৰিকতাসমূহৰ দ্বাৰা পৰিৱেশিষ্ট হৈ থাকে, যাক 'জাতি' হিচাপে গণ্য কৰা হয়।[১৩] আপেষ্ট ৰেনানৰ মতে, ই সম্প্ৰদায় হিচাপে জীয়াই থকাৰ ইচ্ছা প্ৰকাশ কৰে।[১৪] একেদৰে, 'অজৈৱিক' সমূহবোৰক নাৰী, শিশু আনকি বহুতো ধৰ্মীয় সম্প্ৰদায়ক এই শ্ৰেণীত অন্তৰ্ভূক্ত কৰা হয়, যাৰ জীৱনৰ সকলো দিশতে একে স্বাৰ্থ নাথাকে।[১৫] নিজকে শাসিত শ্ৰেণীৰ পৰা সুৰক্ষিত কৰি ৰখাটোয়েই হৈছে এনে গোট বা সমূহবোৰৰ মূল লক্ষ্য বা উদ্দেশ্য। ইয়াৰ বিপৰীতে, 'জৈৱিক গোটসমূহৰ চূড়ান্ত সংহতি প্ৰকাশৰ মূল কাৰণ হ'ল তেওঁলোকৰ নিজৰ সাংস্কৃতিক, ৰাজনৈতিক আৰু অন্যান্য প্ৰকাৰৰ স্বায়ত্বতা লাভৰ হাবিয়াস, যিবোৰক আৰম্ভণিৰে পৰা পৃথকভাবে গণ্য কৰাটো তেওঁলোকে দাবী কৰে।"[১৬] কোনো জৈৱিকসমূহৰ প্ৰতি থকা অনিশ্চয়তা, সেইসমূহটোৰ পৰিচয়ৰ সংকট বা ভাবুকিৰ দ্বাৰা নিৰূপণ কৰা হয়। এই পৰিচয়ত গোট বা সমূহটোৰ সাংস্কৃতিক, ভাষিক, নৃগোষ্ঠীয়, ধৰ্মীয় বা আন সম্পৰ্কসমূহ অন্তৰ্ভূক্ত হৈ থাকে।[১৭] তেওঁলোকৰ আনৰ পৰা পৃথক হোৱাৰ সিদ্ধান্ত নিজেই গ্ৰহণ কৰা নিজৰ জীৱন নিজেই নিৰ্ধাৰণ কৰা, স্ব-শাসনৰ দাবীসমূহক অস্বীকাৰ কৰাৰ অৰ্থ হ'ল কোনো জৈৱিক গোট বা সমূহবোৰক তেওঁলোকৰ কিছুমান গুৰুত্বপূৰ্ণ মূল্যবোধৰ পৰা বঞ্চিত কৰা।

খিলঞ্জীয় লোকসকলকো জৈৱিক সমূহ হিচাপে সংজ্ঞায়িত কৰিব পাৰি। ইয়াৰ ফলত এই গোট বা সমূহবোৰে একত্ৰিতভাবে জীৱনৰ সকলো দিশ আনৰ লগত মিলাই লোৱাৰ আকাংক্ষা বা অভ্যাসৰ পোষকতা কৰে।[১৮] জৈৱিক সমূহবোৰৰ এনে শ্ৰেণীবদ্ধকৰণে কোনো এক বিশেষ অঞ্চলৰ খিলঞ্জীয়া সম্প্ৰদায়ৰ স্বতন্ত্ৰতাক অইনগত পৰিক্ষেত্ৰৰ ভিতৰত অন্তৰ্ভূক্ত কৰাৰ সমন্তৰালবাবে সেইবোৰ খিলঞ্জীয়া জনসাধাৰণকো অন্তৰ্ভূক্ত কৰিছে, যিসকলে ইতিমধ্যেই তেওঁলোকৰ মাটি-ভেটি হেৰুৱাই পেলাইছে। ইয়াৰ ফলত তেওঁলোকে ব্যাপকভাবে ব্যক্তিগত সংগঠন গঢ়ি তুলিছে। মানৱ অধিকাৰ অধ্যয়নৰ পৰিক্ষেত্ৰত এনে সামগ্ৰিক অধিকাৰৰ বিষয়সমূহ নিশ্চিতভাবে অন্তৰ্ভূক্ত হৈ থাকিব। সাংস্কৃতিক বৈচিত্ৰতাৰ সুৰক্ষাৰ বাবে এইবোৰ অত্যন্ত প্ৰজোয়নীয়। একেদৰে, খিলঞ্জীয়া লোক আৰু তেওঁলোকৰ জীৱন ধাৰণ পদ্ধতিৰ সুৰক্ষাৰ বাবেও ই এটা অবিচ্ছেদ্য উপাদান। এইবোৰ মানুহৰ জীয়াই থকাৰ চৰ্ত আৰু অনিশ্চয়তাসমূহৰ আইনগত সুৰক্ষাৰ সামগ্ৰিক প্ৰয়োজনীয়তাসমূহক সম্পূৰ্ণ কৰি তোলে।

৫.০ খিলঞ্জীয়া জনসাধাৰণৰ অধিকাৰৰ সৱলীকৰণ ঃ

খিলঞ্জীয়া লোকসকলেই জৈৱিকসমূহৰ মূল ভেটি গঢ়ি তোলে। সাধাৰণতে তেওঁলোকে জীৱনৰ সকলো দিশ সামৰি একে লগে বসবাস কৰাৰ পোষকতা কৰে। মানুহৰ বৈচিত্ৰপূৰ্ণভাবে সংজ্ঞায়িত সামূহিকতাসমূহ তেওঁলোকৰ মূল বৈশিষ্ট্য হোৱাৰ সমান্তৰালভাবে তেওঁলোক কোনো এক বিশেষ জীৱন পদ্ধতিৰ স্ব-নিৰ্ধাৰিত আৰু স্বতন্ত্ৰ সম্প্ৰদায়। তাৰোপৰি, তেওঁলোকে বসবাস কৰা মূল ভূমিৰ লগতে বহিঃবিশ্বৰ লগতো যথাৰ্থতে এক আত্মিক সম্পৰ্ক ৰক্ষা কৰি চলে।[১৯] সচৰাচৰ বহুতো আলোচকেই এই দৃষ্টিভঙ্গীক এক আদৰ্শবাদী দৃষ্টিভঙ্গী হিচাপে গণ্য কৰে। কিন্তু এক আদৰ্শবাদী দৃষ্টিভঙ্গীয়ে বহুতো গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ এৰাই চলে। মানৱ জীৱনে কেৱল অৰ্থনৈতিক প্ৰয়োজনীয়তাসমূহ পূৰণ কৰিবৰ বাবেই জীয়াই নাথাকে। তদুপৰি, জীয়াই থাকিবৰ বাবে প্ৰয়োজন হোৱা খাদ্য সামগ্ৰী আহৰণেই মানুহৰ জীৱনৰ মূল লক্ষ্য নহয়। যদিহে মানৱ প্ৰকৃতিৰ এক বিস্তৃত পৰ্যালোচনা কৰা হয়, তেনেহলে দেখা পোৱা যাব যে, ক্ষমতা আৰু সম্পদ আহৰণৰ উৰ্ধত গৈ তেওঁলোকৰ বাবে সন্মান, কল্যাণ সাধন, আনৰ পৰা স্নেহ আহৰণ, কৌশল আৰু জ্ঞান অৰ্জন আৰু সততা আৰু নৈতিকতা অৰ্জনৰ প্ৰয়াস চলায়।[২০] মানুহ ভেদে তেওঁলোকৰ ব্যক্তিগত আশা-আকাংক্ষাৰ প্ৰধান্যতা পৃথক হয় আৰু এনে আশা-আকাংক্ষাবোৰৰ ব্যৱহাৰিক ব্যাখ্যাত সেইবোৰৰ মাজৰ পদানুক্ৰমৰ কোনো ধৰণ ফুটি উঠা দেখা পোৱা নাযায়। গতিকে মানৱ অধিকাৰৰ আইনৰ বিভিন্ন দিশবোৰ এনেদৰে গঢ়ি তোলা উচিত যে এই আইনসমূহে সকলোবোৰ আশা-আকাংক্ষাৰ সমান গুৰুত্ব প্ৰদান কৰি মানৱীয় মূল্যবোধ গঢ়ি তোলাত সহায়ক হৈ উছে। এনে ধৰণৰ মানৱীয় মৰ্যদা অৰ্জনেই হৈছে সকলোৰে কাম্য।[২১]

এই খিলঞ্জীয়া লোকসকলেই তেওঁলোকে বসবাস কৰা সমাজখনৰ সামাজিক আৰু অৰ্থনৈতিক পৰিক্ষেত্ৰৰ

একেবাৰে তলৰ স্তৰত বসবাস কৰে।[২২] সেই কাৰণেই সচৰাচৰ এই লোকসকলে সামাজিক আৰু অধিকাৰ যেনে খাদ্য, স্বাস্থ্য আৰু বাসস্থান আদিৰ বাবে ব্যাপক ৰূপত দাবী উত্থাপন কৰিবলগীয়া পৰিস্থিতিৰ উদ্ভৱ হয়।[২৩] তদুপৰি ঐতিহাসিকভাৱে যদি তেওঁলোকৰ এই দাবীসমূহ চোৱা যায়, তেনেহ'লে দেখা পোৱা যায় বিভিন্ন সময়ত তেওঁলোকৰ বিপন্ন হৈ পৰা সংস্কৃতি, ভাষা, ভূমি আদি সুৰক্ষিত কৰি ৰখাৰ দাবী কৰি আহিছে।[২৪] গতিকে এনেকুৱা কিছুমান বিষয় যিবোৰ সাধাৰণতে বস্তুবাদী অবধাৰণাৰ ভিতৰত অন্তর্ভূক্ত কৰিব নোৱাৰি। অৱশ্যে ইয়াৰ উপৰিও এনে খিলঞ্জীয়া জাতি-জনগোষ্ঠীয়ে কিছুমান দাবীও উত্থাপন কৰি আহিছে।

আকৌ যদিহে আধ্যাত্মিক পৰিক্ষেত্রখন চোৱা হয়, তেনেহ'লে তাত আমি বিচাৰি পাম সেই খিলঞ্জীয়া জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহৰ অভ্যন্তৰৰ পৃথিৱীখনৰ বাস্তৱতা। অৱশ্যে কেতিয়াবা এই পৰিক্ষেত্রখনে আমাৰ আধুনিক মনবোৰৰ লগতে বিকাশৰ শক্তিশালী ধাৰাটোকো বাধাগ্রস্ত কৰি তোলে। কিন্তু এই ব্যাখ্যা এতিয়াও অপ্রমাণিত আৰু অৱাস্তৱ বুলিয়েই গণ্য কৰা হৈ আহিছে। কিন্তু ইমানৰ পিছতো এই ব্যাখ্যা এক শক্তিশালী ধাৰা হিচাপে পৰিগণিত হৈ পৰিছে, কাৰণ ইয়াৰ যোগেদিয়েই বস্তুবাদী অসমতাসমূহক নির্মূল কৰিব পৰা যাব বুলিয়েই সমগ্র বিশ্বৰে বিভিন্ন অঞ্চলৰ মানুহে বিশ্বাস কৰি আহিছে। এই ক্ষেত্রত উদাহৰণ হিচাপে উল্লেখ কৰিব পাৰি যে বিকাশ বা উন্নয়নৰ কাৰণে যেতিয়াই কোনো অঞ্চলৰ মানুহক উচ্ছেদ কৰাৰ পদক্ষেপ গ্রহণ কৰে, তেতিয়াই সেই উচ্ছেদিত লোকসকলে বিভিন্ন সময়ত ইয়াৰ ব্যাপক বিৰোধিতা কৰা দেখা পোৱা যায়। তেওঁলোক বসবাস কৰি থকা অঞ্চলটোৰ লগত এনেদৰে একাত্ম হৈ থাকে যে তাৰ উৰ্দ্ধত গৈ তেওঁলোকে নতুন জীৱন যাপন কৰাৰ কথা ভাবিব নোৱাৰে। এনে খিলঞ্জীয়া লোকসকলে এনেদৰে নিজৰ জীৱন ধাৰণৰ প্রণালী ব্যাহত হোৱাটো মুঠেও বাঞ্ছা নকৰে। গতিকে এনে প্রেক্ষাপটত এই খিলঞ্জীয়া লোকসকলে নিজৰ অঞ্চলত জীয়াই থকাৰ মর্যদা আৰু প্রয়োজনীয়তা সন্দর্ভত ব্যাপক দাবী উত্থাপন কৰি আহিছে।

যিবোৰ খিলঞ্জীয়া লোকে বা সম্প্রদায়ে এনে দৃষ্টিভঙ্গী গ্রহণ কৰিছে, সেয়া কোনো কৌশলগত বা তেওঁলোকৰ কৃত্রিম সচেতনতাৰ যোগেদি গঢ়ি উঠা নাই। অৱশ্যে কোনো খিলঞ্জীয়া লোক বা এনে কোনো সমূহৰ সদস্যই নিজৰ ন্যস্ত স্বার্থ সিদ্ধিৰ বাবে এনে পদক্ষেপ গ্রহণ কৰিব পাৰে। বহু সংস্কৃতিবাদী গোলকীয় সম্প্রদায়ত খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ মূল্যবোধ পদ্ধতি আৰু বহিঃবিশ্বৰ প্রতি থকা দৃষ্টিভঙ্গী গভীৰভাবে আধ্যাত্মিক চিন্তা-চেতনাৰ ওপৰত নির্ভৰশীল। গতিকে এনে দৃষ্টিভঙ্গীৰ মাজেৰেই তেওঁলোকে নিজস্ব দাবীসমূহ উত্থাপন কৰি আহিছে।[২৫] অধ্যাপক ৰেইজমেনে এই ক্ষেত্রত উল্লেখ কৰিছে যে অর্থনৈতিক আৰু ৰাজনৈতিক স্ব-নির্ধাৰণ গুৰুত্বপূর্ণ, কিন্তু এয়া তেওঁলোকৰ অভ্যন্তৰৰ সততা, তেওঁলোকৰ নৈতিক দৃঢ়তা আৰু তেওঁলোকৰ আধ্যাত্মিকতা নির্ধাৰণৰ ধাৰা বর্তাই ৰখা আৰু সেইবোৰ বিকাশ কৰিবলৈ সুযোগ কৰা নহয়, তেতিয়ালৈকে তেওঁলোকৰ মানৱীয়তাক স্বীকাৰ কৰি লোৱা নহয়।[২৬]

এনেদৰে ভিনে ডেল'ৰিয়া (কনিষ্ঠ) ই উল্লেখ কৰিছিল যে খিলঞ্জীয়া সাংস্কৃতিক অধিকাৰ সুৰক্ষিত আৰু সুনিশ্চিত কৰাৰ কাৰণে ৰাজনৈতিক ক্ষমতাই সদিচ্ছা প্রকাশ কৰাটো অত্যন্ত গুৰুত্বপূর্ণ। গতিকে, এখন ৰাজ্যৰ খিলঞ্জীয়া লোকসকলে সাংস্কৃতিক পৰিচয়ৰ চেতনা হেৰুৱাৰ লগে লগেই সেই ৰাষ্ট্রখনে নিজৰ সার্বভৌমত্ব হেৰুৱাই পেলায়।[২৭] আমেৰিকাৰ আন এজন নেতা কির্কে কিকিংবার্ডে সার্বভৌমত্বৰ সম্পর্কে বর্ণনা কৰি কৈছিল যে ইয়াক "জনসাধাৰণ বা তেওঁলোকৰ সংস্কৃতিৰ পৰা পৃথক কৰিব নোৱাৰি।[২৭] আমেৰিকাৰ আন এজন নেতা কির্কেংবার্ডে সার্বভৌমত্বৰ সম্পর্কে বর্ণনা কৰি কৈছিল যে ইয়াক "জনসাধাৰণ বা তেওঁলোকৰ সংস্কৃতিৰ পৰা পৃথক কৰিব নোৱাৰি।[২৮]

এই খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ ভূমিৰ প্রতি থকা সমূহীয়া আধ্যাত্মিক সম্পর্কই আন সমূহবোৰৰ পৰা তেওঁলোকক পৃথক কৰিবৰ বাবে সাধাৰণ মানৱ অধিকাৰৰ উর্ধত গৈ সার্বজনীন বা আঞ্চলিক ভিত্তিত কিছুমান বিশেষ আইন সৃষ্টি কৰাৰ প্রয়োজনীয়তা আহি পৰিছে। গতিকে মানৱ অধিকাৰ চনদৰ কিছুমান সাৰগ্রাহী ব্যাখ্যাৰ মাধ্যমেদি সংখ্যালঘু লোকসকলৰ কিছুমান পৰম্পৰা সুৰক্ষিত কৰাৰ প্রয়াস কৰা হোৱা নাই যদিও সেইবোৰৰ যোগেদিও খিলঞ্জীয়া জনসাধাৰণৰ আধিকাৰসমূহক সুৰক্ষা প্রদান

কৰাৰ প্ৰচেষ্টা জলোৱা হৈছে। খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ অধিকাৰ সুৰক্ষিত কৰি ৰখাৰ স্বাৰ্থত ২০০৭ চনৰ ১৩ ছেপ্তেম্বৰ তাৰিখে ৰাষ্ট্ৰ সংঘৰ খিলঞ্জীয়া লোকৰ অধিকাৰৰ ঘোষণাপত্ৰখনেই বৰমান সময়ৰ আটাইতকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ পদক্ষেপ হিচাপে বিবেচিত হৈছে।

এই ঘোষণাৰপত্ৰখন গৃহীত কৰাৰ সময়ত ১৪৩ খন ৰাষ্ট্ৰই ইয়াৰ সমৰ্থন কৰাৰ বিপৰীতে চাৰিখন ৰাষ্ট্ৰই ইয়াৰ বিৰোধিতা কৰিছিল। ইয়াৰ পৰিবৰ্তি সময়ত এই ৰাষ্ট্ৰসমূহে নিজৰ মত সলনি কৰিছিল আৰু ইয়াৰ ফলশ্ৰুতিত এই ৰাষ্ট্ৰকেইখনে ঘোষণাপত্ৰখন অনুমোদন কৰি স্বাক্ষৰ কৰিছিল। এইদৰেই এই ঘোষণাপত্ৰখনে সৰ্বজনীন ৰূপ লাভ কৰিছিল।[২৯]

এই ঘোষণাপত্ৰখনৰ প্ৰস্তাৱনাতে বিশ্ব সম্প্ৰদায়ে "খিলঞ্জীয়া লোকৰ অন্তৰ্নিহিত অধিকাৰসমূহৰ বিকাশ সাধন আৰু শক্তিসালীকৰণৰ তাৎক্ষণিক প্ৰয়োজনীয়তাৰ দ্বাৰা তেওঁলেকৰ ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক আৰু সামাজিক পৰিকাঠামো আৰু তেওঁলোকৰ সাংস্কৃতিক, আধ্যাত্মিক পৰম্পৰা, ইতিহাস আৰু দৰ্শন, বিশেষকৈ তেওঁলোকৰ ভূমি, ভৌগলিক অঞ্চল আৰু সম্পদসমূহ" সুৰক্ষিত কৰাৰ পোষকতা কৰিছিল।

৬.০ সামৰণি

খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ সংস্কৃতি বৰ্তাই ৰখাৰ প্ৰতি যি ভাবুকি, সেয়া নিৰাময় কৰিবৰ বাবেই ওপৰত উল্লেখ কৰা পদক্ষেপসমূহ গ্ৰহণ কৰা হৈছিল। এনে পদক্ষেপসমূহৰ জড়িয়তে খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ নিজৰ ভূমিত জীয়াই থকাৰ আকাংক্ষা, উত্তৰাধিকাৰসূত্ৰে লাভ কৰা জীৱন ধাৰণ পদ্ধতিক আগুৰাই নিয়া, স্ব-নিৰ্ধাৰণৰ অধিকাৰ প্ৰতিষ্ঠা আদি সু-নিশ্চিত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰিছিল। চৰকাৰে গ্ৰহণ কৰা দাবীসমূহৰ মূলতেই আছিল সংস্কৃতিৰ সংৰক্ষণ আৰু সংবৰ্ধন কৰা। সেই লক্ষ্যৰ কোনো ৰাজনৈতিক বা অৰ্থনৈতিক উদ্দেশ্য নাছিল ইয়াৰ বিপৰীতে ই যোগাত্মক আইন প্ৰণয়নৰ বাবেহে উদগণি যোগাইছিল। এনে বহুত্তৰ দৃষ্টিভঙ্গীৰে চালে দেখা যাব যে, খিলঞ্জীয়া লোকসকলৰ সকলো অধিকাৰেই সাংস্কৃতিক অধিকাৰ। এই অধিকাৰসমূহৰ বিশ্লেষণ আগবঢ়াওতে ... বা অন্যান্য চুক্তিসমূহৰ বিষয়ে নিশ্চিতভাবে মনত ৰখা প্ৰয়োজন। ❑

পাদটীকা

[১]Seigfried Wiessner, "The Cultural Rughts of Indigenous People: Achievements and Continuing Challenges", *The European Journal of Internal Law,* Vol. 22, no.1, 2011.

[২] Anaya and Wiessner, 'The UN Declaration on the Rights of Indigenous Peoples: Towards Re-empowerment', *JURIST Forum*, 3 Oct. 2007, available at: http://jurist.law.pitt.edu/forumy/2007/10/un-declaration-on-rights-of-indigenous.php.

[৩]F. Jennings, *The Invasion of America: Indians, Colonialism and the Cant of Conquest*, 1975

[৪]Cf. Eide, 'Economic, Social and Cultural Rights as Human Rights', in A. Eide *et al. (eds) Economic, Social and Cultural Rights: A Textbook*, 1995

[৫]G. H. Mead, *Mind, Self and Society: From Standpoint of a Social Behavioralist* (ed. C. Morris, 1934: G.H. Mead, On Social Psychology: Selected Papers.

[৬] Bay, 'From Contract to Community: Thoughts on Liberalism and Post-industrial Society', in F.R. Dallmayr (ed.), *From Contract to Community*, 1978

[৭]Wiessner, *op.cite.*, 2011, p. 124

[৮] N. MacCormick, *Legal Rights and Social Democracy: Essays in Legal and Political Philosophy*, 1982, p. 261.

[৯]*Ibid*

[১০] W. Kymlicka, *Liberalism, Community, and Culture*, 1989, at 167

[১১] *Ibid*

[১২]McDonald, 'Should Communities Have Rights? Reflections on Liberal Individualism', 4 *Canadian J L and Jurisprudence*, 1991.

[১৩]Wiessner, 'Faces of Vulnerability: Protecting Individuals in Organic and Non-organic Groups', in G. Alfredsson and P. Macalister-Smith (eds), *The Living Law of Nations*, 1996, p 218

[১৪] *Ibid.* p. 222

[১৫] *Ibid.* p. 221

[১৬] Wiessner, *op.cite*, 2011, p. 125

[১৭] Wiessner, *op.cite*, 2011, p. 125

[১৮]Wiessner, *op.cite*, 2011, p. 126

[১৯]Scheinin, 'The Rights of an Individual and a People: Towards a Nordic Sámi Convention', in M. Åhrén, M. Scheinin, and J. B. Henriksen (eds), *The Nordic Sami Convention: International Human Rights, Self-Determination and other Central Provisions*, 3 *J Indigenous Peoples' Rights*, 2007, p. 43ff,

[২০]H.D. Lasswell and M.S. McDougal, *Jurisprudence for a Free Society. Studies in Law, Science and Policy*, 1992

[২১]D. Kretzmer and E. Klein (eds), *The Concept of Human Dignity in Human Rights Discourse*, 2002

[২২] *Ibid*

[২৩]Wiessner, 'Indigenous Sovereignty: A Reassessment in Light of the UN Declaration on the Rights of Indigenous Peoples', 41 *Vanderbilt J Transnat'l L*, 2008, p. 1143

[২৪] Wiessner, *op. cite*., 2011, p. 128.

[২৫]F. Wilmer, *The Indigenous Voice in World Politics: Since Time Immemorial*, 1993, pp. 37, 54– 55

[২৬]Deloria, Jr., 'Self-Determination and the Concept of Sovereignty', in J.R. Wunder (ed.), *Native American Sovereignty*, 1996, p. 118

[২৭]K. Kickingbird *et al.*, *Indian Sovereignty*, 1977, p. 2.

[২৮]*Ibid*

[২৯]*Ibid*

গ্রন্থপঞ্জী

- K. Kickingbird *et al., Indian Sovereignty*, 1977
- Kretzmer, D. and E. Klein (eds), *The Concept of Human Dignity in Human Rights Discourse,* 2002.
- Kymlicka, W. *Liberalism, Community, and Culture*, 1989.
- Lasswell, H.D. and M.S. McDougal, *Jurisprudence for a Free Society. Studies in Law, Science and Policy*, 1992
- MacCormick, N. *Legal Rights and Social Democracy: Essays in Legal and Political Philosophy*, 1982
- Wiessner, Seigfried "The Cultural Rughts of Indigenous People: Achievements and Continuing Challenges", The European Journal of Internal Law, Vol. 22, no.1, 2011.

প্রবন্ধ

চর্যাপদত ব্যক্তিবাচক নির্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰ ঃ এক প্রসংগার্থবিজ্ঞানভিত্তিক আলোচনা

ভায়োলিনা ডেকা

গৱেষক ছাত্রী, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
ম'বাইল ঃ ৮৪৮৬৮৮২৮৯৫
ই-মেইলঃ dekaviolina1@gmail.com

আৰম্ভণিঃ

মানুহে ভাষা ব্যৱহাৰৰ জৰিয়তে যোগাযোগ সাধন কৰিবলৈ যাওঁতে ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্ব, বাক্যতত্ত্ব আৰু অর্থতত্ত্বৰ জ্ঞানে যথেষ্ট হোৱা দেখা নাযায়। বক্তাই কাৰ লগত, ক'ত, কেতিয়া কথা কৈছে এনে প্রশ্নৰ উত্তৰত নিহিত থকা প্রসংগৰ (context) জ্ঞানে যোগাযোগক প্রভাৱিত কৰিব পাৰে। প্রসংগ আৰু ব্যক্তিৰ ভাষা ব্যৱহাৰৰ মাজৰ সম্পর্কৰ অধ্যয়নক প্রসংগার্থবিজ্ঞানে (Pragmatics) সামৰি লয়। ষ্টীৱেল পিচ্চেইৰ (Stilwell Peccei) মতে 'অর্থতত্ত্বই ভাষিক জ্ঞানৰ পৰা প্রাপ্ত অর্থত মনোনিৱেশ কৰে, আনহাতে প্রসংগার্থবিজ্ঞানে অর্থৰ সেইবোৰ দিশত মনোনিৱেশ কৰে যাক কেৱল ভাষিক জ্ঞানৰ দ্বাৰা প্রাপ্ত কৰিব নোৱাৰি আৰু ভৌতিক আৰু সামাজিক জগতৰ জ্ঞানৰ দ্বাৰাহে বিবেচনা কৰিব পাৰি' (Peccei, p.5)। গতিকে প্রসংগ অনুযায়ী ভাষা ব্যৱহাৰৰ জৰিয়তে স্থান-কাল-পাত্রৰ নির্দেশনা দিব পৰা নির্দেশকৰ (Deixis) ধাৰণা প্রসংগার্থবিজ্ঞানৰ অধ্যয়নৰ অন্তর্গত। ইংৰাজীত Deixis শব্দটো গ্রীক ভাষাৰ পৰা অহা, ইয়াৰ অর্থ হৈছে নির্দিষ্ট কৰি দিয়া (to point out)। ভাষাৰ জৰিয়তে নির্দিষ্ট কৰি দেখুওৱা কার্যই হৈছে নির্দেশাত্মক প্রকাশভংগী (deictic expression) (Yule, p.9)। নির্দেশনাৰ ধৰণ অনুযায়ী নির্দেশক (Deixis) শব্দক প্রধানতঃ তিনিটা ভাগত ভগাব পৰা যায়। য়ুলেৰ মতে এই তিনিটা প্রকাশভংগী এনেধৰণ —

ব্যক্তিবাচক নির্দেশক (person deixis)
স্থানবাচক নির্দেশক (spatial deixis)
কালবাচক নির্দেশক (temporal deixis) (Yule, p.9)।

কথনত অংশগ্রহণকাৰী বক্তা-শ্রোতাৰ ভূমিকাক চিনাক্তকৰণৰ সৈতে ব্যক্তিবাচক নির্দেশক শব্দ জড়িত হৈ থাকে। যথা, অসমীয়াত 'মই', ইংৰাজীত 'I', বাংলাত 'আমি', হিন্দীত 'মে' প্রথম পুৰুষৰ জৰিয়তে বক্তাই নিজৰ অস্তিত্বক

নির্দেশনা দিব পাৰে। দ্বিতীয় পুৰুষ বুজাব পৰা 'তই', 'তুমি', 'আপুনি'; বাংলাত 'তুই', 'তুমি', 'আপ্‌নি'; উৰিয়াত 'তু', 'তুমে', 'আপণ'; ইংৰাজীত 'you' সর্বনামৰ জৰিয়তে শ্রোতাৰ নির্দেশনা দিব পৰা যায়। আনহাতে তৃতীয় পুৰুষ 'সি', 'তাই', 'তেওঁ', 'তেখেত'; ইংৰাজীত 'he' 'she'; হিন্দীত 'ৱহ', বাংলাত 'সে'ৰ জৰিয়তে কথোপথনত অংশগ্রহণ নকৰা তৃতীয় আন ব্যক্তিক বুজাব পৰা যায়। এইদৰে ব্যক্তিক নির্দেশ কৰিব পৰাকৈ ভিন্ন ভাষাত বিবিধ সর্বনামৰ প্রয়োগ আছে। এনে ব্যক্তি নির্দেশক শব্দই প্রসংগ (Context) অনুযায়ী ভিন্ন ব্যক্তিৰ নির্দেশনা দিব পাৰে। ভাষা ব্যৱহাৰকাৰীৰ অভিপ্রায়ৰ সৈতে সম্বন্ধযুক্ত ব্যক্তি নির্দেশক শব্দ প্রসংগার্থবিজ্ঞানৰ (Pragmatics) অধ্যয়নৰ অন্তর্গত। একেদৰে প্রত্যেক ভাষাতে স্থান আৰু কাল নির্দেশ কৰিব পৰাকৈও কিছুমান ব্যাকৰণিক শব্দ আছে। যথা- ইংৰাজীত 'here' 'there'; হিন্দীত 'য়হাঁ', 'ৱহাঁ'; অসমীয়া 'ইয়াত', 'তাত' আদিৰ প্রতীকী ব্যৱহাৰে বক্তাৰ পৰা নিকটৱর্তী আৰু দূৰৱর্তী স্থানৰ নির্দেশনা দিব পাৰে বাবে এইবোৰক স্থানবাচক নির্দেশক শব্দ আখ্যা দিব পাৰি। ইংৰাজীত 'now' 'then'; হিন্দীত 'অৱ', 'তৱ'; অসমীয়া 'এতিয়া', 'তেতিয়া' আদি কালবাচক ক্রিয়াবিশেষণৰ নির্দেশাত্মক ব্যৱহাৰে ভাষাবিশেষে কালবাচক নির্দেশাত্মক প্রকাশভংগী বহন কৰা দেখা যায়। মুঠতে পৃথিৱীৰ প্রায় প্রতিটো ভাষাৰ প্রতিটো স্তৰতে কম-বেছি পৰিমাণে নির্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰ হোৱা দেখা যায়। এনে দৃষ্টিভংগী আগত ৰাখি চর্যাপদত ব্যক্তি নির্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰ কেনেকুৱা তাক বিচাৰ কৰি চাব পৰা যায়। তামৰ ফলিৰ প্রত্নৰূপৰ পাছতে অসমীয়া ভাষাৰ প্রাচীনতম নিদর্শন হিচাপে চর্যাপদৰ ভাষাক ধৰা হয়। অষ্টম-দ্বাদশ শতিকাৰ ভিতৰত ৰচিত চর্যাপদৰ ভাষাত থকা ব্যক্তিবাচক নির্দেশক শব্দৰ স্বৰূপ স্বাভাৱিকতে সুকীয়া।

চর্যাপদত ব্যৱহৃত নির্দেশক শব্দৰ ধাৰণা ঃ

ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা দেখা যায় নির্দেশক হৈছে এনে এবিধ ভাষিক উপাদান যি সূচকীয় প্রকাশভংগীত ব্যৱহাৰ হয়। ভাষা ব্যৱহাৰকাৰীৰ সৈতে সম্বন্ধযুক্ত নির্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰ অসমীয়া ভাষাৰ প্রতিটো স্তৰতে দেখা যায়। আনকি নির্দেশকক এক প্রকাৰৰ সার্বজনীন ভাষিক সমল বুলি কোৱা হয়। কাৰণ কোনো ভাষাতে নির্দেশাত্মক প্রকাশভংগী অবিহনে যোগাযোগ প্রভাৱশালী আৰু উপযুক্ত নহয়' (Huang, p.169)। এনে স্থলত অসমীয়া ভাষাৰ আদি নিদর্শন স্বৰূপ চর্যাপদসমূহলৈ মন কৰিলে দেখা যায় অষ্টম-দ্বাদশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজখনতো স্থান-কাল-পাত্র নির্দেশক ভিন্ন শব্দৰ ব্যৱহাৰ আছিল। ভাষাৰ জৰিয়তে ব্যক্তিক নির্দেশ কৰিবলৈ ব্যক্তিবাচক নির্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰ হয়। চর্যাপদত ব্যক্তিবাচক নির্দেশকৰ স্বৰূপ বিস্তৃত আৰু তাৰ ব্যৱহাৰ ব্যাপক ৰূপত দেখিবলৈ পোৱা যায়। চর্যাপদত ব্যক্তি নির্দেশকৰ নব্য-প্রাচীন দুয়োটা ৰূপেই পোৱা যায়, যেনে—

তিনি ভুঅণ মই বাহিঅ হেলেঁ।
হাঁউ সুতেলি মহাসুহ লীলে।। (চর্যা ১৮)

চর্যাপদত দ্বিতীয় আৰু তৃতীয় পুৰুষৰ ক্ষেত্রতো নির্দেশনা দিবলৈ সমাজ নির্দেশিত কেইবাটাও ৰূপ পোৱা যায়। গতিকে চর্যাপদত ব্যক্তি নির্দেশক শব্দৰ প্রকাৰ আৰু তাৰ প্রকৃতি সম্পর্কে পৰৱর্তী ভাগত বহলাই আলোচনা কৰা হ'ব।

ভাষা ব্যৱহাৰকাৰীয়ে স্থানবাচক নির্দেশক শব্দৰ জৰিয়তে প্রসংগ অনুযায়ী নিজৰ বা শ্রোতা তথা নির্দেশিত ব্যক্তিৰ অৱস্থানক নির্দেশনা দিব পাৰে। চর্যাপদত 'তহিঁ' বা 'তঁহি' (< তাত) শব্দটোৱে ক'ৰবাত যদি গঙ্গা-যমুনাৰ মাজত চলা এখন নাওক কেন্দ্র কৰি স্থানৰ নির্দেশনা দিছে ক'ৰবাত আকৌ শৱৰক দাহ কৰিবলৈ তৈয়াৰ কৰা 'মৰ-শয্যা'ক বা শৱৰ বালিকাই বাস কৰা পর্বতলানিৰ অৱস্থানক নির্দেশনা দিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

(ক) গঙ্গা জউনা মাঝেঁৰে বহই নাই।
তহিঁ চুড়িলী মাতঙ্গি পোইআ লীলে পাৰ কৰেই।। (চর্যা ১৪)

(খ) চাৰি বাসে গড়িলা ৰেঁ দিআঁ চঞ্চালী।
তঁহি তোলি শৱৰো ডাহ কএলা কান্দশ সগুণ শিআলী।। (চর্যা ৫০)

(গ) উঞ্চা উঞ্চা পাবত তঁহি বসই সৱরী বালী। (চর্যা ২৮)

(ক) উদাহৰণত গঙ্গা-যমুনাৰ মাজত চলা নাও এখনৰ প্রসংগত আদ্যবৃত্তি হিচাপে 'তহিঁ' শব্দটো ব্যৱহাৰ হৈছে। ইয়াত তহিঁ শব্দটোৰ জৰিয়তে মাতঙ্গী ৰূপিণী নৈৰাত্মা-

ডোম্বীৰ অৱস্থানক বুজোৱা হৈছে। (খ) উদাহৰণত মৃত্যুৰ পিছত শৱৰৰ অৱস্থানক বুজাবলৈ চাৰিডাল বাঁহেৰে তৈয়াৰী মৰ-শয্যাৰ প্ৰসংগত 'তঁহি' নির্দেশক শব্দটো ব্যৱহাৰ হৈছে। একেদৰে (গ) উদাহৰণতো 'তঁহি' শব্দটোৰে শৱৰী বালিকাৰ অৱস্থানক বুজোৱা হৈছে। এইদৰে একেটা স্থানবাচক নির্দেশক শব্দই প্ৰসংগ অনুযায়ী ভিন্ন স্থানৰ নির্দেশনা দিব পাৰে।

'তহিঁ' বা 'তঁহি'ক দূৰত্বজ্ঞাপক স্থানবাচক নির্দেশক শব্দ বুলি ধৰিলে তাৰ বিপৰীতে 'এথু', 'এযা' (< ইয়াত) হৈছে নিকটৱৰ্তী স্থানবাচক নির্দেশক শব্দ। উদাহৰণস্বৰূপে—

(ঘ) খৱৰবি-কিৰণ সন্তাপে ৰে গঅণাঙ্গণ গই পইঠা।
ভণন্তি মহিত্তা মই এথু বুড়ন্তে কিম্পি ন দিঠা।।
(চর্যা ১৬)

(ঙ) এযা অঠ মহাসিদ্ধি সিঝএ উজুবাট জাঅন্তে।।
(চর্যা ১৫)

—ইয়াৰ প্ৰথমটো উদাহৰণত 'গঅণাঙ্গণ' < গগণৰ অঙ্গন, অর্থাৎ শূণ্যতাৰ প্ৰসংগত ৱ্যবহাৰ হোৱা 'এথু' স্থান নির্দেশকে বক্তা অর্থাৎ উক্ত চর্যাৰ ৰচক মহীধৰপাদৰ আধ্যাত্মিক স্বৰূপৰ অৱস্থানক বুজাইছে। ১৫ নং চর্যাত আকৌ নিকটৱৰ্তী শ্ৰোতাক জ্ঞান দিয়াৰ উদ্দেশ্যৰে সহজ পথৰ ধাৰণাক 'এযা' নির্দেশক শব্দৰে সূচাব বিচৰা হৈছে।

বক্তাৰ সময়ৰ নির্দেশনা দিবলৈ কালবাচক নির্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। গতিশীল পৃথিৱীৰ সৈতে সময়ো গতিশীল হোৱা বাবে নির্দেশিত সময়ৰ প্ৰাসংগিক অর্থ ভিন্ন হ'ব পাৰে। চর্যাপদত কালবাচক নির্দেশক শব্দৰো ভিন্ন ৰূপ পোৱা যায়, যথা- এৱেঁ (< এতিয়া), তব, তবেঁ (< তেতিয়া) আদি। উদাহৰণস্বৰূপে—

(চ) এৱেঁ মই বুঝিল সদ্‌গুৰু বোহেঁ।।
(চর্যা ৩৫)

(ছ) তব সে মুষা উঞ্চল পাঞ্চল।
সদ্‌গুৰু বোহে কৰিহ সো ণিচ্চল।।
জবেঁ মুষাএৰ চাৰ তুটঅ।
ভুসুক ভণঅ তবেঁ বান্ধন ফিটঅ।। (চর্যা ২১)

—ইয়াৰ প্ৰথমটো উদাহৰণত 'এৱেঁ' নির্দেশক শব্দই বক্তাই উক্তি কৰা নির্দিষ্ট সময়খিনিক নির্দিষ্ট কৰি দেখুৱাইছে। 'এৱেঁ' সময় নির্দেশকৰ বিপৰীতে 'তব' বা 'তবেঁ' শব্দই উক্তি কৰা সময়তকৈ আগৰ বা পিছৰ উভয় সময়কে বুজাব পাৰে। অর্থাৎ উক্তি কৰা সময়খিনিক বাদ দি ভিন্ন সময়ক 'তবেঁ' শব্দৰে নির্দেশনা দিয়া হৈছে। গতিকে 'এৱেঁ' কালবাচক নির্দেশকক আসন্ন প্ৰকাশভংগী আৰু 'তব / তবেঁ' নির্দেশকক কথনৰ সময়ৰ পৰা দূৰৱৰ্তী প্ৰকাশভংগী আখ্যা দিব পাৰি।

এইদৰে ভাষাৰ বিৱর্তন অনুযায়ী নির্দেশক শব্দৰ

স্বৰূপ যিয়েই নহওক ভাষা ব্যৱহাৰৰ প্ৰসংগৰ পৰাহে তাৰ অৰ্থ লাভ হয়। অৱশ্যে চৰ্যাপদত নিৰ্দেশক শব্দসমূহৰ এনে স্বৰূপ বিচাৰৰ পৰা তথাকথিত সময়ৰ সংশ্লিষ্ট সমাজখনত প্ৰচলিত ভাষাৰ স্বৰূপ কেনেকুৱা আছিল তাৰ এটা ধাৰণা পাব পৰা যায়।

চৰ্যাপদৰ ভাষাত ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰ ঃ

বক্তাৰ অভিপ্ৰায় জড়িত কথোপকথনত ব্যক্তিৰ চিনাক্তকৰণৰ সৈতে ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশক শব্দ জড়িত হৈ থাকে। কোনে, কাক, কাৰ কথা কৈছে এনে প্ৰসংগৰ সৈতে সংগতি ৰাখি চৰ্যাপদৰ ভাষাত ব্যক্তি নিৰ্দেশকৰ ভিন্ন ৰূপ পোৱা যায়। 'ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশকে স্পষ্টভাৱে প্ৰথম পুৰুষ, দ্বিতীয় পুৰুষ আৰু তৃতীয় পুৰুষবাচক সৰ্বনামৰ এই তিনিটা মৌলিক বিভাজন অনুসৰি ক্ৰিয়া কৰে' (Yule, p.10)। অৰ্থাৎ ব্যক্তিবাচক নিৰ্দেশাত্মক প্ৰকাশভংগীয়ে ব্যক্তিবাচক সৰ্বনামসমূহ কি প্ৰসংগত কাৰ্যকৰী হয় তাৰ মাজৰ সম্পৰ্কৰ সৈতে পোনপটীয়াকৈ জড়িত হৈ থাকে। লেভিনচনৰ ভাষাত 'first person is the grammaticalization of the speaker's reference to himself' (Levinson, p.10)। চৰ্যাপদৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰথম পুৰুষ বুজাব পৰা 'ম' বা 'মহ' বা 'মই' নিৰ্দেশকৰ দ্বাৰা নিৰ্দেশিত বক্তা হৈছে একো একোজন চৰ্যাকাৰ। এনেসমূহ নিৰ্দেশাত্মক প্ৰকাশভংগীৰে চৰ্যাকাৰসকলে নিজকে নিৰ্দেশনা দি বক্তাৰ ভূমিকাক স্পষ্টকৈ প্ৰকাশ কৰা দেখা গৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

(ক) ভাদে ভণই অভাগে লইআ।
চিঅৰাঅ মই অহাৰ কএলা।। (চৰ্যা ৩৫)

(খ) তিনি ভুঅণ মই বাহিঅ হেলেঁ।
হাঁউ সুতেলি মহাসুহ লীলে।। (চৰ্যা ১৮)

(গ) আলো ডোম্বি তোএ সম কৰিবে ম সাঙ্গ। (চৰ্যা ১০)

—ইয়াৰ প্ৰথম দুটা উদাহৰণত 'মই' একেটা ব্যক্তি নিৰ্দেশক শব্দ। মন কৰিলে দেখা যায় একেটা 'মই' শব্দৰে দুজন ভিন্ন ব্যক্তিক সূচোৱা হৈছে। ৩৫ নং চৰ্যাত 'মই' শব্দটোৱে চৰ্যাকাৰ ভাদেপাদানামৰ অস্তিত্বৰ নিৰ্দেশনা দিছে। ১৮ নং চৰ্যাত আকৌ 'মই' নিৰ্দেশকৰ দ্বাৰা কৃষ্ণবজ্ৰপাদে নিজৰ অস্তিত্বক সূচাইছে। এইদৰে একেটা 'মই' শব্দইপ্ৰসংগ বিশেষে দুজন ভিন্ন ব্যক্তিৰ অস্তিত্বৰ ধাৰণা দিব পৰা কাৰ্যৰ বাবেই প্ৰসংগাৰ্থবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে ই এক নিৰ্দেশক শব্দ। আনহাতে (গ) উদাহাৰণত একে অৰ্থযুক্ত 'ম' (< মই) নিৰ্দেশকে ১০ নং চৰ্যাৰ ৰচক কাহ্নুপাদৰ অস্তিত্বক সূচাইছে। একেটা বাক্যতে শ্ৰোতাৰ ভূমিকাত অৱতীৰ্ণ ডোম্বিক 'তোএ' নিৰ্দেশকৰ দ্বাৰা নিৰ্দেশ দিয়া হৈছে। (খ) উদাহৰণত উল্লিখিত হাঁউ (< মই) শব্দটোৰ দ্বাৰাও চৰ্যাপদৰ ভাষাত প্ৰথম পুৰুষৰ নিৰ্দেশনা দিয়া দেখা গৈছে।

চৰ্যাপদত প্ৰথম পুৰুষ 'মই/ ম/ মহ/ হাঁউ' নিৰ্দেশকৰ বহুবচনাত্মক ৰূপ 'অম্হে' বা 'অহ্মে' (<আমি) একবচনৰ ৰূপতো ব্যৱহাৰ হোৱা দেখা গৈছে। যেনে—

(ঘ) মিছেঁ লোঅ বন্ধাৱএ অপণা।।
অম্হে নজানহুঁ অচিন্ত জোই। (চৰ্যা ২২)

(ঙ) ভণই গুড্ডৰী অহ্মে কুন্দুৰে বীৰা। (চৰ্যা ৪)

প্ৰথমটোত বক্তাই নিজৰ লগতে অচিন্ত বা নিগূঢ় যোগীৰ কথা নাজানা শ্ৰোতাকো সাঙুৰি 'অম্হে' শব্দৰে এটা গোটক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছে। ই এক প্ৰকাৰৰ বহুবচনাত্মক প্ৰকাশভংগী। আনহাতে দ্বিতীয়টো উদাহৰণত একে অৰ্থযুক্ত অহ্মে বুলি বক্তা তথা চৰ্যাকাৰ গুণ্ডৰীপাদে একমাত্ৰ নিজকে বুজাইছে। ইয়াত শ্ৰোতা বা আন তৃতীয় ব্যক্তি অন্তৰ্ভুক্ত হোৱা নাই। গতিকে অহ্মে বহুবচনাত্মক ৰূপ হৈও একবচনৰ ৰূপত ব্যৱহাৰ হোৱা দেখা গৈছে।

চৰ্যাপদৰ ভাষাত নব্য ভাৰতীয় অসমীয়া, বাংলা, উৰিয়া আৰু হিন্দী ভাষাত থকাৰ দৰে দ্বিতীয় পুৰুষৰ নিৰ্দেশনা দিবলৈ সমাজ নিৰ্দেশিত কেইবাটাও ৰূপ পোৱা যায়। শ্ৰোতাক নিৰ্দেশনা দিব পৰা দ্বিতীয় পুৰুষবাচক নিৰ্দেশক শব্দসমূহক তুচ্ছ আৰু মান্য এই দুটা ৰূপত ভাগ কৰি চাব পাৰি। যেনেঃ

তুচ্ছ	মান্য
তই /তঁই	তুম্হে
তু	তোৰা
তো	তোহোৰ/তোহোৰি/তোহৌৰী ইত্যাদি।

দ্বিতীয় পুৰুষে সাধাৰণতে বক্তাৰ সন্মুখত থকা শ্ৰোতাক নিৰ্দেশ কৰিব পাৰে। উদাহৰণস্বৰূপে—

(চ) তু লো ডোম্বী হাউ কপালী।
তোহোৰ অন্তৰে মোএ ঘলিলি হাড়েৰি মালী।।
(চর্যা ১০)

(ছ) যোইণি তঁই বিণু খনহিঁ ন জীৱমি। (চর্যা ৪)

(জ) তঁই লো ডোম্বী সঅল বিটলিউ। (চর্যা ২৩)

—ইয়াৰ (চ) উদাহৰণত একেটা প্রসংগতে দ্বিতীয় পুৰুষ নির্দেশক 'তু', 'তোহোৰ' এই দুটা ভিন্ন শব্দৰ প্রয়োগ হৈছে। 'ডোম্বী' হৈছে উল্লেখক (reference)। নির্দেশকে এনে উল্লেখকৰণৰ প্রসংগক ধৰি ৰাখিব পাৰে। (ছ) উদাহৰণৰ ৪ নং চর্যাৰ চর্যাকাৰে যোগিনীক উদ্দেশ্য কৰি 'তঁই' নির্দেশকৰ প্রয়োগ কৰিছে।

একেদৰে ২৩ নং চর্যাকাৰে ডোম্বীক উদ্দেশ্য কৰিহে 'তঁই' নির্দেশকৰ প্রয়োগ কৰিছে। গতিকে (ছ) আৰু (জ) উদাহৰণলৈ মন কৰিলে দেখা যায় একেটা 'তঁই' নির্দেশকে প্রসংগ অনুযায়ী ভিন্ন ব্যক্তিৰ অস্তিত্বক বুজাইছে। উল্লেখকৰণৰ প্রসংগই নির্দেশক বোধগম্যতাত ক্রিয়া কৰা দেখা গৈছে।

আনহাতে চর্যাপদৰ ভাষাত দ্বিতীয় পুৰুষবাচক নির্দেশকৰ ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ যাওঁতে ক'ৰবাত আকৌ বক্তাই শ্রোতাৰ ভূমিকাত অৱতীর্ণ হৈছে। যথা- ২৩ নং চর্যাত চর্যাকাৰ ভুসুকপাদে 'তুম্হে' (< তুমি) বুলি নিজকে শ্রোতাৰ শাৰীৰ ৰখা দেখা গৈছে এইদৰে—

জই তুম্হে ভুসুক অহেৰি জাইবেঁ মাৰিহ সে পঞ্চজণা।। (চর্যা ২৩)

— এনে নির্দেশাত্মক প্রকাশভংগীৰ ব্যৱহাৰিক সত্যতা পৰিবেশ-প্রসংগৰ ওপৰত নির্ভৰশীল। এইদৰে আধুনিক অসমীয়া ভাষাৰ দ্বিতীয় পুৰুষবাচক 'তই', 'তুমি'ৰ কেইবাটাও ৰূপ চর্যাপদৰ ভাষাত সংৰক্ষিত হৈ আছে। এনে দিশ চর্যাপদৰ ভাষাৰ এক বৈশিষ্ট্য স্বৰূপ।

চর্যাপদৰ ভাষাত তৃতীয় পুৰুষ নির্দেশক 'সো', 'সে', 'তে', 'তাহেৰ', 'তসু' বা 'তাসু' আদি কেইবাটাও প্রকাশভংগী পোৱা যায়। তৃতীয় পুৰুষ নির্দেশক প্রকাশভংগীৰ প্রসংগত লেভিনচনে কৈছে "third person the encoding of reference to persons and entities which are neither speakers nor addressees of the utterance in question." (Levinson, p.62)। গতিকে বক্তা বা শ্রোতাৰ ভূমিকাত অৱতীর্ণ নোহোৱা কিন্তু নীৰৱ দর্শকৰ ভূমিকাত অৱতীর্ণ তৃতীয় পুৰুষ নির্দেশক প্রকাশভংগীয়েও চর্যাপদৰ ভাষাৰ স্বকীয়তাক প্রতিপন্ন কৰিব পাৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

(ক) জো এথু বুঝএ সো এথু বীৰা।। (চর্যা ১০)

(খ) জে সচৰাচৰ তিঅস ভমন্তি।
তে অজৰামৰ কিম্পি নহোন্তি।। (চর্যা ২২)

(গ) জাসু ণাহি অপ্পা তাসু পৰেলা কাহি।
(চর্যা ৪৩)

প্রথমটো উদাহাৰণত তৃতীয় পুৰুষ নির্দেশক 'সো' (<তেওঁলোক) শব্দটোৱে বোধিচিত্তৰ জ্ঞান হোৱা বীৰা অর্থাৎ মহাসিদ্ধসকলৰ নির্দেশনা দিছে। দ্বিতীয়তে 'তে' (<তেওঁ) নির্দেশাত্মক প্রকাশভংগীয়ে ইয়াত ত্রিদশ দেৱতাক পাই অমৰত্ব পাব বিচৰা জনৰ ধাৰণাক নির্দিষ্ট কৰি দেখুৱাইছে। একেদৰে (গ) উদাহাৰণতো আপোন-পৰ সম্বন্ধীয় ভাব নোহোৱা জনৰ প্রসংগত 'তাসু' (<তেওঁৰ) শব্দটো ব্যৱহাৰ হৈছে। এইদৰে তৃতীয় পুৰুষ নির্দেশকে সদায় দূৰৱর্তী প্রকাশভংগীক সূচায়।

আকৌ দ্বিতীয় পুৰুষৰ ক্ষেত্রত বক্তা তথা চর্যাকাৰে যিদৰে শ্রোতাৰ ভূমিকাত অৱতীর্ণ হৈছে সেইদৰে বক্তাই নিজকে তৃতীয় পুৰুষৰ নির্দেশনাৰে দর্শকৰ ভূমিকাতো অৱতীর্ণ হোৱা দেখা গৈছে। যেনে—

লূই ভণই (মই) ভাইব কীষ।
জা লই অচ্ছম তাহেৰ উহ ণ দিস।। (চর্যা ২৯)

—ইয়াত 'লূই' অর্থাৎ লুইপাদ হৈছে উল্লেখকৰণ, যি উদ্ধৃত বাক্য দুশাৰীৰ বক্তা। তৃতীয় পুৰুষ বুজাব পৰা 'তাহেৰ' নির্দেশকৰ দ্বাৰা বক্তাই এনে উল্লেখকৰণৰ প্রসংগক নির্দিষ্ট কৰি দেখুৱাইছে। ব্যক্তি নির্দেশকৰ এনে প্রকাশভংগী চর্যাপদৰ ভাষাৰ বৈশিষ্ট স্বৰূপ।

সামৰণি ঃ

এইদৰে চর্যাপদৰ ভাষাত ব্যক্তি নির্দেশক শব্দৰ ব্যৱহাৰৰ আলোচনাৰ পৰা সমসাময়িক সমাজৰ পৰিবেশ-প্রসংগ অনুসৰি ব্যক্তি নির্দেশক শব্দসমূহ কিদৰে ক্রিয়াশীল হয় তাৰ এক ধাৰণা পাব পৰা যায়। অসমীয়া, বাংলা, উৰিয়া, মৈথিলী আদি নব্য ভাৰতীয় আর্য ভাষাৰ প্রাচীনতম ৰূপ হিচাপে চর্যাপদত ব্যক্তি নির্দেশক শব্দৰ

ব্যৱহাৰৰ মাজেৰে তাৰ সংৰক্ষিত ৰূপ দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। সেই গতিকে অসমীয়া ভাষাৰ তুলনাত চর্যাপদত ব্যৱহৃত ব্যক্তি নির্দেশক শব্দৰ প্রকৃতি স্বাভাৱিকতে বৈচিত্র্যময় হোৱা দেখা যায়। কিন্তু মান্য বা তুচ্ছ ৰূপৰ ব্যৱহাৰত চর্যাকাৰসকল সচেতন নাছিল। অৱশ্যে ইয়ে চর্যাপদৰ ভাষাত বিশিষ্টতাও প্রদান কৰিছে। ❑

প্রসংগ টোকা ঃ

আলোচনা পত্রখনত চর্যাপদৰ উদ্ধৃতিসমূহ পৰীক্ষিত হাজৰিকাৰ 'চর্যাপদ' শীর্ষক পুথিৰ পৰা লোৱা হৈছে।

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী ঃ

মুখ্য উৎস ঃ

হাজৰিকা, পৰীক্ষিত। চর্যাপদ। ডালিমী প্রকাশন, গুৱাহাটী, দ্বাদশ তাঙৰণ, ছেপ্তেম্বৰ, ২০১৪

গৌণ উৎস ঃ

ডেকা, প্রণৱজ্যোতি। চর্যাগীত আৰু বৌদ্ধ-তন্ত্র। বান্ধৱ, গুৱাহাটী, ২০১১

শর্মা, সতেন্দ্রনাথ। অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত। সৌমাৰ প্রকাশ, গুৱাহাটী, দশম সংস্কৰণ পুনৰ মুদ্রণ, জুন, ২০১১

হাজৰিকা, বিশ্বেশ্বৰ (সম্পা.)। অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (প্রথম খণ্ড)। আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, উত্তৰ গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, ডিচেম্বৰ, ২০০৩

ইংৰাজী

Fillmore, Charles J. Lectures on Deixis. CSLI Publications, Standford, 1997.

Huang, Yan. Pragmatics, Second edition. Oxford University press, Oxford, First published: 2014.

Levinson, Stephen C. Pragmatics. Cambridge University Press, Cambridge, First published: 1983.

Peccei, Jean Stiwell. Pragmatics. Routledge Publisher, New York, First published: 1999.

Yule, George. Pragmatics. Oxford University Press, New York, First published: 1996.

প্ৰবন্ধ

দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ হিন্দু ইতিহাসৰ দস্তাবেজ ঃ একঐতিহাসিক তথা গ্ৰন্থাগাৰিকৰ অৱলোকন

দুর্লভৰাজ টাইড

সহকাৰী অধ্যাপক, ইতিহাস বিভাগ
লক্ষীমপুৰ বালিকা মহাবিদ্যালয়
ম'বাইল ঃ ৬৯০১০২৪৮৮৪
ই-মেল ঃ durlavtaid@gmail.com

দীপাঙ্কৰ শইকীয়া

গ্ৰন্থাগাৰিক, লক্ষীমপুৰ বালিকা মহাবিদ্যালয়
ম'বাইল ঃ 9101989560
e-mail : dipankarsaikia09@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

ভাৰত আৰু দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ সমন্ধ অতি প্ৰাচীন। ভাৰতীয় ব্ৰাহ্মণ্যবাদে দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ আধ্যাত্মিক, সাহিত্যিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিৰ তথা কলা প্ৰভৃতি সকলো দিশকে প্ৰভাৱিত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ ইতিহাসৰ এক বৃহৎ অংশ পৰোক্ষভাৱে বিস্তৃত ভাৰতৰ ইতিহাস। দুর্ভাগ্যবশতঃ ভাৰতীয় ঔপনিৱেশক ধাৰাৰ ইতিহাসত দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ হৈতে ভাৰতৰ সম্বন্ধক কেতিয়াও গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা নহ'ল। ব্ৰাহ্মণ্য ধৰ্ম আৰু সংস্কৃত ভাষাই কিদৰে বালি, কম্বোজ, সুমাত্ৰা ইত্যাদি অঞ্চলক সংপৃক্ত কৰিছিল তাৰ ওপৰত অৱলোকন কৰাৰ প্ৰয়োজনতা আহি পৰিছে। দৰাচলতে দক্ষিণ-পূব এছিয়াক অন্তৰ্ভুক্ত নকৰাকৈ প্ৰাচীন ভাৰতীয় ইতিহাসৰ চৰ্চা সম্পূৰ্ণ হ'ব নোৱাৰে। এই দিশত তথ্যগত অধ্যয়নৰ বাবে ব্যৱহিত গ্ৰন্থপঞ্জিৰ প্ৰয়োজনতা অত্যাধিক। মূলত গ্ৰন্থাগাৰসমূহে এই ক্ষেত্ৰত উৎকৃষ্ট ব্যৱস্থা গ্ৰহণ কৰিবৰ সময় আহি পৰিছে।

সূচক শব্দ—ভাৰত, দক্ষিণ-পূব এছিয়া, ইতিহাস, অৱলোকন, সূচক, গ্ৰন্থপঞ্জি, গ্ৰন্থাগাৰ।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

দক্ষিণ-পূব এছিয়াত বিদ্যমান হিন্দু সংস্কৃতি আৰু সংস্কৃত ভাষাৰ প্ৰভাৱৰ বাবে 'বৃহত্তৰ ভাৰতবৰ্ষ' ধাৰণাটোৰ সৃষ্টি হৈছিল। হিন্দুত্বৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত খাচ্ দক্ষিণ-পূবীয় এই অঞ্চলসমূহক বহু সময়ত 'দূ�ৰণীৰ ভাৰতবৰ্ষ' ইত্যাদি বিভিন্ন উপমাৰে সম্বোধন কৰা পৰিলক্ষিত হয়। আনকি গাঢ় সংস্কৃতিবাহক দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ অঞ্চলসমূহক 'ইন্দু-চীন' (অর্থাৎ ভাৰতীয় চীন) বুলিও উল্লেখ কৰা হয়। এই ধৰণৰ সম্বোধন তথা নামাকৰণৰ আৰত দৰাচলতে শ-হাজাৰ বছৰীয়া ইতিহাস লুকাই আছে। এই ইতিহাস ভাৰতৰ সৈতে দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ সাংস্কৃতিক, আধ্যাত্মিক আৰু মনঃতাত্বিক সম্বন্ধৰ প্ৰকাশক।

দুর্ভাগ্যবশতঃ হিন্দু ইতিহাসৰ এই গৌৰৱময় গাঠাক ঔপনিৱেশিক ইতিহাসৰ ধাৰাই ম্লান পেলাই থৈ গৈছে। এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে ভাৰতীয় প্রাচীন ইতিহাসৰ হেৰাই যাবলৈ লোৱা দিশটোৰ দৃষ্টিপাত কৰাৰ প্রয়াস কৰা হৈছে।

অধ্যয়ন পদ্ধতি ঃ এই গৱেষণা-পত্র যুগুতোৱাৰ ক্ষেত্রত প্রাচীন ভাৰতীয় ঐতিহাসিক তথ্যসমূহৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়া হৈছে। বিশেষকৈ প্রাচীন ভাৰতীয় ধার্মিক সাহিত্যসমূহ গুৰুত্ব সহকাৰে লৈ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যক প্রতিষ্ঠা কৰাৰ বাবে চেষ্টা চলোৱা হৈছে। আধুনীক ইতিহাসবিদসকলৰ দৃষ্টিকোণসমূহক বহুলভাৱে বিবেচনা কৰা হৈছে। মুঠৰ ওপৰত বিষয়বস্তুটোৰ সৈতে জড়িত উপলব্ধ সকলো মুখ্য উৎস আৰু গৌণ উৎসক বিবেচনাৰ আওতালৈ অনা হৈছে।

অৱতৰণিকা ঃ ভাৰত মহাসাগৰ আৰু দক্ষিণ চীনৰ সাগৰীয় অঞ্চলটোত থকা ছয় হাজাৰ দ্বীপপুঞ্জক আন্তঃৰাষ্ট্রীয়ভাৱে 'ভাৰতীয় দ্বীপপুঞ্জ' বুলি সম্বোধন কৰা হয়। প্রাচীন ভাৰতীয় সাহিত্যসমূহৰ, বিশেষকৈ পুৰাণসমূহত মূল ভাৰত ভূমীক 'জম্বুদ্বীপ' বুলি উল্লেখ কৰা হৈছে। পুৰাণত ভাৰতৰ পূবলৈ আঠখন দ্বীপৰ বিষয়ে সঘনাই উল্লেখ পোৱা যায়। সেই আঠখন দ্বীপক একত্রিত ভাৱে 'সুবর্ণ দ্বীপ' বুলি চিহ্নিত কৰা হৈছিল। দৰাচলতে প্রাচীন কালত 'ভাৰতবর্ষ' বুলিলে সুবর্ণ দ্বীপ আৰু জম্বুদ্বীপক একত্রিতভাৱে বুজোৱা হৈছিল। এই ধৰণৰ নামাকৰণে প্রাচীন ভাৰতত সাগৰৰ আনটো টীৰত থকা জম্বুদ্বীপক (অর্থাৎ সুবর্ণভূমীত) আৰু মূল ভূখণ্ডত (অর্থাৎ জম্বুদ্বীপত) থকা হিন্দু সকলৰ মাজৰ নিবিড় সম্বন্ধক প্রতিপন্ন কৰে। আজিৰ তাৰিখত এই সম্বন্ধক জনাৰ সহজ উপায় হ'ল ইন্দু-চীন আৰু ইণ্ডুনেচীয়াৰ হিন্দুধর্ম প্রভাৱী সময় কালৰ ইতিহাসক অধ্যয়ন কৰা। বহু শ-কাল এই অঞ্চলসমূহত ব্রাহ্মণ্য বাদে 'শৈৱমাতা' বা 'বৈষ্ণৱমাতা' নামেৰে প্রচাৰ লাভ কৰিছিল। ব্রাহ্মণ্য বাদৰ অনবদ্য অংগস্বৰূপ মনোসংহিতাই ব্রহ্মদেশ, থাইলেণ্ড, মলয় উপকূল, ইণ্ডোনেছীয়া, কম্বোজ, দক্ষিণ ভিয়েটনামৰ হিন্দুধর্ম প্রভাৱী প্রাচীন কালত সমাদৰ লাভ কৰিছিল। খ্রীষ্টাব্দ ১৬৫০ লৈকে কে'দাহ অঞ্চলৰ সম্রাট চন্দ্রগুপ্তৰ সময়ত প্রচলিত কৌটিল্যৰ অর্থশাস্ত্রৰ নীতিসমূহ প্রশাসনৰ বাবে প্রয়োগ কৰা হৈছিল। আনকি খ্রীষ্টপূর্ব দুশ বছৰৰ আগলৈকে চীনত সংস্কৃত ভাষাৰ ব্যৱহাৰৰ প্রমাণ পোৱা যায়। চাৱ্ অ' উৱেল ষ্টেইনৰ তত্বাৱধানৰ চলোৱা খনন কার্যই এই কথা সু-স্পষ্ট কৰি দিয়ে যে খ্রীষ্টাব্দ আঠশ শতিকাত য়াৰকাণ্ড, ক'টান, কার্চগাৰ ইত্যাদি মধ্য এছিয়াৰ অঞ্চলসমূহত ৰাজকীয় দস্তাৱেজসমূহ সংৰক্ষণৰ বাবে সংস্কৃত ভাষাৰ ব্যৱহাৰ হৈছিল। ১৯০৭ চনত মেছ'পটামিয়াত (Prototype) এক প্রকাৰৰ সংস্কৃতত লিখা পুথিৰ পাণ্ডুলিপি উদ্ধাৰ হৈছিল। ১৪০০ খ্রীষ্টপূর্বত মে'ছ পটামিয়াত হিটিটাইট ৰজাসকলৰ শাসক কালৰ ইন্দ্র, বৰুণ আৰু অশ্বিনী ইত্যাদি বৈদিক দেৱতাসকলক সম্বোধিত প্রার্থনাৰ প্রমাণ পোৱা যায়।

গ্রন্থাগাৰিক তথ্য আৰু ঐতিহাসিক সমল ঃ দক্ষিণ-পূব এছিয়ালৈ যোৱা হিন্দু প্রবজনৰ যি ইতিহাস সেই সন্দর্ভত অধ্যয়নৰ ক্ষেত্রত ভাৰতীয় সাহিত্যিক সমলসমূহ প্রত্যক্ষভাৱে সহায়ক প্রমাণিত নহয়। পুৰাণসমূহেও হিন্দু প্রবজনৰ এই দিশটোক বিশেষ আলোকপাত কৰা নাই। তৎসত্বেও ৰামায়ণ আৰু মহাভাৰতত তথা ধর্ম নিৰপেক্ষ পালি আৰু সংস্কৃত সাহিত্যসমূহত বিক্ষিপ্ত ৰূপৰ সংকীর্ণ কিছু তথ্য পোৱা যায়। ৰামায়ণৰ 'কিষ্কিন্ধ্যা কাণ্ড'ত বানৰ ৰজা সুগ্রীবে তেওঁৰ গুপ্তচৰ বাহিনীক দেৱী সীতাৰ সন্ধানত সাতখন দ্বীপৰ মাজত অৱস্থিত যৱদ্বীপলৈ প্রেৰণ কৰা কথা উল্লেখ আছে। ৰামায়ণত 'তিমিৰা' নামেৰে আৰু এটা অঞ্চলৰ বিষয়ে উল্লেখ পোৱা যায়। তিমিৰা অঞ্চলটোক পৰৱর্তি কালত 'তামালা' নামাকৰণ কৰা হৈছিল। এই অঞ্চলটো বর্তমান উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ ব্রহ্মদেশৰ সীমাবর্তি অঞ্চলত অৱস্থিত। ৰামায়ণত উল্লেখিত 'মণ্ডৰগিৰি পর্বত' বর্তমানৰ ব্রহ্মদেশৰ 'আৰাকান-য'ম' তথা ইৰাৱতী নদীৰ কাষৰীয়া অঞ্চলসমূহ বুলি চিহ্নিত কৰা হৈছে। মহাভাৰতৰ ভীষ্মপর্বত উল্লেখিত সমিৰত উজনি ব্রহ্মৰ

লগত জৰিতহৈ আছে বুলি গণ্য কৰা হয়। সমিৰতৰ হিন্দুসকলে চীন দেশৰ পৰা ৰেচম পলু ভাৰতলৈ আমদানি কৰিছিল।

গ্ৰন্থাগাৰিকৰ তথ্যৰ অৰ্ন্তগত আন এক উৎস হ'ল বিষ্ণুপুৰাণ। বিষ্ণুপুৰাণৰ প্ৰকৃত প্ৰতিলিপিখন বৰ্তমান লণ্ডনৰ ব্ৰিটিছ সংগ্ৰহালয়ত আছে। বিষ্ণুপুৰাণত গংগা উপত্যকা বাহিৰৰ অঞ্চলসমূহক ইন্দ্ৰদ্বীপ বুলি উল্লেখ কৰা হৈছে। ইন্দ্ৰদ্বীপ অঞ্চলটোৱে আৰকান অঞ্চলটোক বাদ দি ব্ৰহ্মদেশৰ অন্য অঞ্চলসমূহক সূচাইছিল। বিষ্ণুপুৰাণৰ উল্লেখিত 'শকদ্বীপ' কম্বোজ আৰু শ্যাম অঞ্চলটোক সূচাইছিল। ঠিক একেদৰে কুৰ্মপুৰাণত ফুনান অঞ্চলটোক কাশ্যপদ্বীপ বুলি উল্লেখ পোৱা যায়। ভাগৱত পুৰাণত 'ইশানপৰ্বত' সম্পৰ্কে উল্লেখ পোৱা যায়। ৬১০-৬৩৫ খ্ৰীষ্টাব্দৰ কম্বোজৰ ৰজা ইশানবৰ্মনৰ নাম অনুসৰি কম্‌পন্‌ তথং, পাহাৰক ইশান পৰ্বত নামেৰে সৈতে নামাকৰণ কৰা হৈছিল।

দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ স্থানীয় সমলসমূহ ঃ স্থানীয়ভাৱে উপলব্ধ সাহিত্যিক সমলসমূহৰ ভিতৰত সংস্কৃত, পালি, চ'ম আৰু খ'মাৰ লিপিসমূহেই গুৰুত্বপূৰ্ণ। ৰাজকীয়ভাৱে মান্যতা লাভ কৰা সংস্কৃত ভাষাৰ লিপিসমূহৰ পয়োভৰ পৰিলক্ষিত হয়। এই সংস্কৃতৰ লিপিসমূহ অকৌৰভাট, বায়ন, বৰবদুৰ, চান্দি কালচান ইত্যাদি অঞ্চলত উদ্ধাৰ হৈছে। বালিত এখন পুঠি 'কৃতৰজস' উদ্ধাৰ হৈছে। পুথিখনৰ লিখকৰ নাম প্ৰপঞ্চ। যদিও পুথিখনত ব্যৱহৃত ভাষা বালিত উদ্ধাৰ হোৱা এখন প্ৰাচীন পুথি হ'ল 'কৃতৰজস' ব্যৱহৃত শুদ্ধ সংস্কৃত নহয়, কিন্তু সৰহ সংখ্যক শব্দ সংস্কৃতৰ পৰা লোৱা। এই পুথিখনে খ্ৰীষ্টিয় ১০০০ ৰপৰা ১৫০০ লৈকে বিশদ বিৱৰণি আগবঢ়ায়। পুথিখনৰ বিষয়বস্তু জাভাৰ পূব অঞ্চলৰ ইতিহাস। 'কৃতৰজস'এ প্ৰমাণ কৰি দিয়ে যে ভাৰতৰ সমান্তৰালভাৱে সংস্কৃতৰ চৰ্চা দক্ষিণ-পূব এছিয়াটো হৈছিল। কম্বোজত উদ্ধাৰ হোৱা সংস্কৃত লিপিসমূহৰ মানদণ্ড ভাৰতীয় লিপিতকৈ কোনো গুণে কম নাছিল। এই লিপিসমূহৰ বুজন অংশ বিষয় বস্তু ব্যক্তিগত ভূ-দান সম্পৰ্কীয়। ব্ৰাহ্মণ্য পৰম্পৰা অনুসৰণ কৰি লিপিসমূহক পূজ্য ইষ্ট দেৱতাজনৰ গুণানু কীৰ্তন কৰা দেখা যায়।

বিশ্লেষণ ঃ সংস্কৃত ভাষাই কম্বোজত শীৰ্ষত উপনীত হ'বলৈ সক্ষম হৈছিল। আধুনীক দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ লিপি আৰু ব্যাকৰণত যে সংস্কৃতৰ প্ৰভাৱ আছে সেয়া স্পষ্ট। এয়া ধুৰূপ যে প্ৰাচীন হিন্দু পৰম্পৰাই ভাৰতৰ বাহিৰতো প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। সম্ভৱতঃ মহাভাৰতৰ কাললৈকে(১০০০ খ্ৰীঃপূঃ) পশ্চিমলৈ সম্পূৰ্ণ বিস্তাৰণৰ পাছত হিন্দু পৰম্পৰাই পূৰ্বলৈ বিস্তাৰিত হ'বলৈ আৰম্ভ কৰে। দক্ষিণ পূব এছিয়াত উদ্ধাৰিত হোৱা শিলালিপি সমূহে প্ৰমাণ কৰে যে ১৫০০ খ্ৰীষ্টাব্দত অঞ্চলটোত ৰাজকীয় ভাষাৰ মৰ্যাদা লাভ কৰিছিল। দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ এই অঞ্চলবোৰৰ ভিতৰত কম্বোজ বিশেষভাৱে উল্লেখনীয়।

সম্ৰাট অশোক, সম্ৰাট কনিষ্ক অথবা বঙ্গৰ পাল ৰাজবংশৰ পৃষ্ঠপোষকতাত যদিও বুদ্ধধৰ্মই আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় মৰ্যাদা লাভ কৰিছিল কিন্তু তাৰ বহু পূৰ্বেই ব্ৰাহ্মণ্য বাদে শৈৱমত অথবা বৈষ্ণৱম'ত নামেৰে দক্ষিণ-পূব এছিয়াত থিতাপি ল'বলৈ সক্ষম হৈছিল। ব্ৰাহ্মণ্যবাদে ক্ৰমে ১১ শ শতিকাত ব্ৰহ্মদেশত, ১৪ শ শতিকালৈ থাইলেণ্ডত, ১৫ শ শতিকালৈ কম্বোজত আৰু ভিয়েটনামত, ১৬ শ শতিকালৈ মলয় আৰু ইণ্ডোনেছিয়াত সুদৃঢ় হ'বলৈ সক্ষম হৈছিল।

১৮৩০ চনত চা�ৰ থমাচ্‌ ষ্টেমফৰ্ড ৰেফল্‌চ এ ইণ্ডোনেছিয়াত হিন্দু মন্দিৰৰ ভগ্নাৱেশ উদ্ধাৰ কৰিছিল। কিন্তু আটাইতকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ আছিল ১৮৬৫ ত হেনৰি মহুট এ কম্বোডিয়াৰ অঙ্কোৰ অঞ্চলত উদ্ধাৰ কৰা 'পৰ্বত সদৃহ' হিন্দু পুৰাতাত্বিক সমলসমূহ। এই 'পৰ্বত সদৃশ' সমল কোনো গ্ৰীক অথবা ৰোমান বস্তু কলাৰ দ্বাৰা প্ৰভাবী নাছিল। এই সমল প্ৰকৃততে কম্বোজৰ ৰজা সূৰ্যবৰ্মন দ্বিতীয়ৰ (১১১৩-১১৫৩ খ্ৰীষ্টাব্দ) দ্বাৰা নিৰ্মিত এক বিষ্ণু মন্দিৰ আছিল। এই মন্দিৰটোত ৰামায়ণ আৰু মহাভাৰতৰ ঘটনাৱলীৰ দৃশ্যসমূহৰ সজীৱ অংকনৰ লগতে সংস্কৃতত বহুটো লিপি খোদিত কৰা

আছে। দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ আজিপর্যন্ত উদ্ধাৰ হোৱা ৯০০ সংস্কৃত লিপিৰ ২০০ খন কেৱল কম্বোজত উদ্ধাৰ হৈছে। এই লিপিসমূহ সৱহ ভাগত ব্রাহ্মণ্য ধর্মৰ ৰীতিসমূহৰ বিষয়ে উল্লেখ পোৱা যায়। থাই ইতিহাসবিদ ডঃ দাৱিৱাৰমৰৰ মতে— "From Burma to Champa as well as in Java, Sumatra, Bali, Brahmans are often mentioned in all religious ceremonies of the court, no matter whether the religion of the ruler was Buddhism or Brahmanism."

ডঃ ডাৱিৱাৰমৰৰ দৃষ্টিকোণ দক্ষিণ-পূব এছিয়াৰ ব্রাহ্মণ্যবাদ আৰু বৌদ্ধধর্মৰ ওপৰত অত্যন্ত গুৰুত্বপূর্ণ। তেখেতৰ মতে অতীতত ব্রাহ্মণ্যবাদ আৰু বৌদ্ধধর্ম লাওচত ইমানেই সুদুৰ প্রসাৰী আছিল যে আজিও অঞ্চলটোৰ জনজীৱনৰ ওপৰত তাৰ চাপ দেখা যায়। আনকি যিসকলে ইছলাম ধর্ম গ্রহণ কৰিলে তেওঁলোকেও হিন্দু ৰীতিৰেই জীৱন নির্বাস কৰা পৰিলক্ষিত হয়। প্রকাৰন্তৰে 'ঔ' উচ্চাৰণ অথবা বিগ্রহ পূজাৰ পৰা তেওঁলোক আঁতৰি আহিব পৰা নাই। যদিও ইছলামৰ পৰিপন্থি কিন্তু ইন্দ্র, বিষ্ণু, শিৱ ইত্যাদি দেৱতা প্রকৃতিৰ মন্দিৰ দর্শনৰ পৰা আজিও তেওঁলোক বিৰত নহয়।

কেৱল ধর্মীয় দিশটোৱেই নহয়, অন্যান্য ক্ষেত্রতো ভাৰতীয় প্রভাৱ দক্ষিণ-পূব এছিয়াত দেখা যায়। আধুনীক ইণ্ডোনেছিয়া ভাষা 'বাহাচা'ৰ জনক কভিয়ে দক্ষিণ ভাৰতৰ পৰা দক্ষিণ-পূব এছিয়ালৈ গৈছিল। কাভিৰ সম্পর্কত খ্রীষ্টাব্দ ১০০০ ৰপৰা উল্লেখ পোৱা যায়। গুপ্ত সাম্রাজ্যৰ পটনৰ পাছত পল্লৱসকলৰ শাসনকালত বহুতো তামিলভাষী লোকৰ ইণ্ডোনেছিয়া আৰু মলয় অঞ্চললৈ প্রবজন ঘটিছিল। কেৱেলাপুত্র আৰু উত্তৰ ভাৰতীয়সকলৰ আগমনৰ ফলত চম্পা আৰু কম্বোজ অঞ্চলৰ প্রায় পাঁচশ বছৰকাল (১৫০০ খ্রীষ্টাব্দলৈকে) সংস্কৃত ভাষাৰ গুৰুত্ব অটুট আছিল।

প্রাচীন ইণ্ডোচীন আৰু ইণ্ডোনেছিয়াত ব্রাহ্মণ্যবাদৰ প্রভাৱক প্রমাণ কৰাৰ ক্ষেত্রত ফৰাচী পণ্ডিত আই্-মনিয়েৰ্ পামেন্টিয়েৰ, বার্থ, জর্জ কডিচৰ অৱদান অপৰিসীম। ভাৰতীয় ইতিহাসবিদ ডঃ ৰমেশ চন্দ্র মজুমদাৰৰ গুৰুত্ব এই ক্ষেত্রত কোনো গুণে কম নহয়। ডঃ মজুমদাৰৰ দ্বাৰা উদ্ধাৰিত দেৱনাগৰি লিপিত খুদিত সংস্কৃতিৰ লিপিসমূহে দক্ষিণ-পূব এছিয়াত হিন্দু সংস্কৃতি প্রভাৱৰ প্রমাণ-পত্র স্বৰূপ।

কেৱল সংস্কৃত ভাষাৰ এনাজৰী দালৰ বাবেই ফুনান বা কাশ্যপদ্বীপ আৰু কম্বোজত ভাৰতীয় প্রবজনকাৰীসকলে একত্রিত হৈ থাকিব পাৰিছিল। ইণ্ডোচীন দক্ষীণ আৰু উত্তৰ ভাৰতীয়সকলৰ সংগম স্থলী স্বৰূপ হৈ পৰিছিল। ভাৰতৰ কেৱেলাৰ পৰা হোৱা বুজন পৰিমাণৰ প্রবজনৰ বাবেই প্রাচীন ফুনান বা কাশ্যপদ্বীপ কোচিন চীন বুলি পৰৱর্তি কালত নামাকৰণ কৰা হৈছিল। হিন্দু শাসন কালত কোচিন অঞ্চলৰ প্রচলিত শুদ্ধ ভাষা আছিল সংস্কৃত। কম্বোজ আৰু চম্পা অঞ্চলত কেৱেলা মূলীয় লোকৰ বসতি সর্ম্পকত সমকালীন লিখনিসমূহতো পোৱা যায়। আলবেৰুণীয়ে ১০৩০ খ্রীষ্টাব্দত উল্লেখ কৰিছে যে হিন্দুসকলে কলাৰ ক্ষেত্রত ইমাননেই আগবঢ়া যে মুছলমান সকলে সেইবোৰ দেখি হতবাক হৈ পৰিছিল। কম্বোজৰ ৰাজকীয় ব্যৱহাৰতো দক্ষিণ ভাৰতৰ প্রভাৱ স্পষ্ট পৰিলক্ষিত হয়। কম্বোজত প্রচলিত এক প্রথা য'ত সিংহাসনৰ উত্তৰাধিকাৰী বায়েকৰ পুতেকক দিয়াৰ ব্যৱস্থা আছিল সেয়া প্রকৃততে আছিল কোচিনৰ ৰাজকীয় পৰিয়ালৰ এক ৰীতি। স্পষ্ট যে কোচিনৰ মাতৃ তান্ত্রিক ধ্যান-ধাৰণা প্রবজনৰ মাধ্যমেদি কম্বোজতো প্রৱেশ কৰিছিল।

উপসংহাৰ ঃ সকলো ইতিহাসবিদ এইক্ষেত্রত একমত যে ভাৰতৰ পৰা হোৱা এনে প্রব্রজন কোনো ৰাজনৈতিক কাৰণত হোৱা নাছিল। জম্বুদীপৰ পৰা সুর্ৱণভূমীলৈ হোৱা এই প্রব্রজন, শান্তিপূর্ণভাৱে ভূমীপুত্রসকলৰ অনুমতি মর্মে হোৱা ঔপনিৱেশিক সম্প্রসাৰণ। এই হিন্দু উপনিবেশিকসকলে মুকলিভাৱে স্থানীয় বাসিন্দাসকলৰ লগত বৈবাহিক সম্বন্ধ স্থাপন কৰিছিল।

১০১৫ খ্রীষ্টাব্দত ৰাজেন্দ্রচোল আৰু ১০৬৮

খ্ৰীষ্টাব্দত ৰাজা চোলৰ সুবৰ্ণ ভূমীৰ শৈলেন্দ্ৰ সাম্ৰাজ্যৰ বিৰুদ্ধে যি অভিযান সেয়াও কোনো সাম্ৰাজ্য বিস্তাৰৰ বাবে নাছিল। শৈলেন্দ্ৰ সম্ৰাটে ভাৰতীয় বণিক জাহাজ সমূহক চিংগাপুৰ আৰু সুন্দ প্ৰণালী অতিক্ৰম কৰি চীনলৈ যাবলৈ যি অনুৰোধ সৃষ্টি কৰিছিল তাৰ বাবেহে সেই অভিযান চলিছিল। বিখ্যাত ফৰাচী লিখক—চিনভিয়েন লেভিয়ে এই সম্পৰ্কত এইবুলি মতামত দিয়ে—“India sent for centuries many of her best men to carry away her artsher science, her philosophy, the magnificant production of the creative genius, she brougth nothing home asa compensation.” ❑

9101989560

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

1. Basham, A. L. (1977). The Wonder That was India (3rd Edition ed.). United Kingdom: Sidgwick & Jackson.
2. Jean, P. (1934). Indian Colonization in Sumatra Before the Seventh Century.
3. Majumder, D. R. (1941). Ancient India Colonies in the Far East. New Delhi: Gyan Publishing House .
4. Majumder, D. R. (1944). Hindu Colonies In the Far East. Calcutta : General Printers & Publishers Limited .
5. Majumder, D. R. (2018). Suvarnadvipa:Ancient India Colonies in the Far East (Vol. II). Delhi.
6. Mookerji, D. R. (2020). Story of Shipping and Maritime A ctivity from the Earliest Time. New Delhi: Munchiram Manoharlal Pvt. Ltd.
7. Sadananda, S. (1949). Hindu Culture in Greater India. New Delhi: All India Arya(Hindu)Dharma Sewa Sangha.
8. Winstedt, R. O. (1969). Malaya and Its History.
9. Wurtzburg, C. (1984). Reffles of the Eastern Isles. England: Oxford University Press.

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 4000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का पालन करना चाहिए।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल हो सकते हैं।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना चाहिए।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : .....

पदनाम : .....

पूरा पता : .....

: .....

ई-मेल : ..... मोबाइल : .....

RTGS का विवरण : .....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 50/-	प्रति अंक	: रु. 100/-
वार्षिक	: रु. 550/-	वार्षिक	: रु. 1,000/-
दो वर्षों के लिए	: रु. 1,000/-	दो वर्षों के लिए	: रु. 2,000/-
पाँच वर्षों के लिए	: रु. 2,500/-	पाँच वर्षों के लिए	: रु. 4,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 0853010182614
Name of Bank & Branch : Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code : PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2022-24 ❖ Date of Publication : 31st January, 2023 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

मो. 9101541395 / 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com